

प्रकाशक श्रीकल्या विद्याभवन वाराणसी
 मुद्रक विद्याभिलाल शैल वाराणसी
 संस्करण प्रथम, वि. संवत् १९९१
 मूल्य २

(पुस्तकालय लैब्रेरियस प्रकाशक)
 The Chowkhanba Vidya Bhawan
 Chowk Varanasi-1 (INDIA)
 1981

Price 20/75

विष्णुप्रिया के वरद पुत्र

तथा

वीणापाणि के श्रद्धालु सेवक

श्री पुरुषोत्तमदास टंडन 'राजामुनुआ'

को

सविनय

विषय-सूची

पृष्ठसंख्या

भूमिका उपक्रम, ग्रंथ परिचय, गायक लोग, उपवन, रचयिता, रचनाकाल, पाठभेद, प्रमर्श, टीकाएँ, गायक सम्प्रदायों के नमि, निरूपण, प्रथम प्रकाशन, भारतीय सम्प्रदाय, भाषा, छन्द, टीकाहार	१-२३
प्रथम शतक	१
द्वितीय शतक	२५
तृतीय शतक	४६
चतुर्थ शतक	७३
पञ्चम शतक .	८७
षष्ठ शतक	१२१
सप्तम शतक	१४५
परिशिष्ट (अ) गायानुक्रमिकादि	१६६
(ब) कवि एवं कवयित्री	१७६
(ग) प्रमुख प्राकृत शब्द-सूची	१८६



आभार-प्रदर्शन

‘हिन्दी गाथा सतशती’ का प्रकाशन मेरे लिए एक साहनपूर्ण काम है, इसे मैं मनोभाँति जानता हूँ। परन्तु यदि उद्देश्य महान् है तो साहस में काम लेना ही चाहिए। लक्ष्य-मार्ग की बाधा अथवा कठिनाई को मोच कर कदम न उठा बैठ रहना न तो उपयोगी है, न वाछनीय। इसे इसी प्रेरणा का परिणाम समझना चाहिए। फिर मेरी अकेली शक्ति एव सामर्थ्य की यह दन नहीं है। पूर्ववर्ती लेखकों की प्रायः समस्त कृतियों ने किसी न किसी रूप में मुझे यथेष्ट सहायता पहुँचायी है। अतएव मैं उन सभी लेखकों अथवा टीकाकारों से उपकृत हूँ। पाठाय की पाण्डुलिपि तैयार करने में चि० विनोद तथा चि० नित्यानन्द तिवारी ने अपना यत्किञ्चित् सहयोग दिया है जिसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

डॉ० देवीप्रसन्न मैथ तथा उनके परिवार ने नमय-समय पर जिस आत्मीयता के साथ मुझे निरापद स्थान में काम करने की सुविधा प्रदान की है उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ। परन्तु स्नेहमयी ‘ज्वालामुखी’ का सक्रिय सहयोग यदि न मिला करे तो मेरे सभी ऐसे सकल्प मन के मन में ही रह जाया करें। अतएव जो सुख-दुःख का साक्षी एव भागीदार है उसे कैसे भुलाया जा सकता है।

अन्त में मैं चि० मोहनदान एव चि० विट्ठलदास के प्रति अपना आभार मानता हूँ जिन्होंने धैर्य तथा उत्साह के साथ इसे प्रकाशित किया है। मुद्रण सम्बन्धी भूलों के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

९८/४ ए पुष्पोत्तमनगर,
इलाहाबाद
१ जनवरी १९६१

—नर्मदेश्वर चतुर्वेदी

भूमिका

उपक्रम

प्राचीन भारतीय वाङ्मय अपने कलेवर में जितना ही विशाल एवं विविध है, अतरंग दृष्टि से वह उतना ही गहन तथा गभीर है। मन्त्रद्रष्टा अथवा क्रान्तदर्शी ऋषियों की अतर-दृष्टि तत्त्व विश्लेषण से अधिक तत्त्व-चिन्तन पर ही केन्द्रित रही है। उनके चिन्तन का विषय चारों पुरुषार्थों में से अधिकतर 'धर्म एवं मोक्ष' ही रहा है। यद्यपि लौकिक जीवन का सम्बन्ध-सूत्र प्रायः 'अर्थ तथा काम' द्वारा ही संचालित होता है। फिर भी वहाँ पर धार्मिक अथवा आध्यात्मिक स्वर जितना मुखर है, उतना अन्यान्य नहीं। सामाजिक स्तर पर उसका अधिकांश एकांगी तथा एकदेशीय है। यदि कहीं पर दृष्टि-प्रसार लक्षित होता भी है तो वह कीर्तिधवल उत्तुंग शैल-शिखरों पर ही अधिक टिका है, जन सकुल तमसाश्रुत उपत्यकाओं में कम ही रम सका है जिस कारण, उनके आधार पर सम्पूर्ण सामाजिक जीवन का विशद चित्र नहीं उभड़ पाता है। लौकिक जीवन का स्पष्ट परिचय हमें वहाँ पर नहीं मिल पाता, केवल इतस्ततः उसका आभास मात्र मिलता है। उसमें से ऋषि तथा देव वर्ग के अतिरिक्त मनुष्य का जो रूप झलकता है वह अधिकतर व्यक्ति का न होकर विभूति का है जन-साधारण से भिन्न 'कुलीन एव सभ्रान्त' वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। जेप दस्यु, दैत्य तथा म्लेच्छादि कोटि के कहला कर हेय अथवा तिरस्कृत ठहराये जाते हैं। यही नहीं, सभी युगों में 'दास-प्रथा' भी किमी न किसी रूप में प्रचलित रही है।

ऐसे ग्रन्थ जो लौकिक जीवन के अधिक निरुद्ध हैं बहुत थोड़ी संख्या में सुलभ हैं। उनमें 'गाथा सप्तशती' का स्थान महत्त्वपूर्ण है, जहाँ मूलतः लोक जीवन का सहज हास-विलास, आह्लाद-विषाद तथा

गाथा कोश

दण्डी ने सर्गबद्ध अथवा महाकाव्य के अगीभूत जिन पद्य प्रयोगों का उल्लेख किया है उनमें कोश-प्रथ अद्वितीय है। उनके परवर्ती विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' के छठे अध्याय में कोशप्रथ का लक्षण इस प्रकार दिया है "कोशः श्लोक समूहस्तु स्यादन्योन्यानपेक्षकः" अर्थात् कोश-काव्य के श्लोक परस्पर निरपेक्ष होते हैं।

उपर्युक्त 'कोश' के सन्दर्भ में हमारा ध्यान सर्वप्रथम कोटि गाथाओं वाले 'गाथाकोश' की ओर आकर्षित हो जाता है जिसका उल्लेख संस्कृत साहित्य तथा प्राकृत सुभाषितों में यत्र-तत्र पाया जाता है। वहाँ पर कवि एवं कोशकार के रूप में 'हाल' की स्पष्ट चर्चा है। बाणभट्ट^१, उद्योतन सूरि^२, अभिनन्द^३, राजशेखर^४, हेमचन्द्र^५, जिनप्रभ सूरि^६, मेरुग^७ सोड्डल^८ और राजशेखर सूरि^९ ने अपनी-अपनी रचनाओं में विशालकाय प्रथ 'गाथाकोश' की ओर इंगित किया है। इनकी रचनाएँ ईसा की सातवीं शताब्दी से लेकर चौदहवीं शताब्दी के बीच की हैं। इस प्रसंग में यह सोचने का अवसर मिल जाता है कि 'गाथाकोश' अथवा 'गाथा सप्तशती' एक की न होकर दो विभिन्न रचनाओं की सजाएँ हैं। कारण, 'गाथा सप्तशती' की गाथाओं की संख्या सात सौ निर्धारित है, जबकि विशालकाय 'गाथाकोश' की गाथाएँ करोड़ की संख्या में हैं। उद्योतन सूरि द्वारा उल्लिखित 'गाथा कोश' और राजशेखर द्वारा वर्णित 'गाथा सप्तशती' अभिन्न प्रतीत होते हैं। मेरुग ने 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में जिस 'गाथा कोश' की चर्चा की है वह विचारणीय

१ अविनाशिनमग्राभ्यमकरोत् सातवाहन ।

विशुद्धजातिभिः कोपरत्नैरिव सुभाषितैः ॥ (हर्षचरित)

२ दुलाल काव्य मीमामा, सम्पादकीय टिप्पणी, पृ० १२ ।

३ वही ।

४ रामचरित ६।९६ एवं २२।१०० ।

५ कर्पूर मजरी एवं सूक्ति मुक्तावली ।

६ अभिधान रत्नमाला, देसीनाम माला, वर्ग ८, गाथा ६१ ।

७ कल्प प्रदीप ।

८ उदय सुन्दरी ।

९ प्रबन्ध चिन्तामणि, अथ सातवाहन प्रबन्ध, पृ० १०-११ ।

है।' सत्यवाहन ने चार बाक स्वर्ण मुद्राओं द्वारा 'ग्रन्था चतुष्टय को लेकर जिस 'सप्तशती गाथा प्रमाण का 'संग्रह गाथा कोश' का नाम देकर कराया वह निश्चित रूप से 'चार गाथाओं का संग्रह मात्र न होकर चार भागों वाला 'ग्रन्था कोश' हो सकता है जिसका सम्बर्धन त्रिन्-मय सूरि की इस कवि द्वारा हो जाना है कि 'गाथा कोश' चार भागों में बँटा था। परन्तु अभी तक किसी ऐसे संग्रह की प्राप्ति नहीं हो सकी है जिसका अभाव में प्रसंगश 'गाथा सप्तशती को ही 'गाथा कोश' मान लेने की परम्परा चल रही है। कृति एवं कृतिवार में नाम साम्य होने के कारण वह ज्ञान्य पारया उच्च रूप में स्वीकार कर ली गई है जिसकी अपेक्षा में बड़े-बड़े टीकाकार तथा इतिहासकार तक आ गए हैं और इसी को परवर्ती कालों तक ने सुरक्षित रखा है।

संक्षेप

कव्यस्वरूप 'गाथा सप्तशती सत्यवाहन (प्रथम शताब्दी) की रचना मान ली गई है और इसके संवसगत खोजों को उत्प्रेरणा प्रदान करने लगा है। कतिपय विद्वानों ने अन्तर्द्वेष के आधार पर शंका प्रकट करते हुए बाह्य-निर्धारण सम्बन्धी भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं। कीच^१ ने यदि इस दूसरी से चौथी शताब्दी के बीच का बयान है तो चार में तीसरी तथा सातवीं शताब्दी के मध्य का। इसी प्रकार माण्डाकर^२ ने यदि इसे छठी शताब्दी का पद्य है तो मिश्रजी ने पंद्रही से आठवीं शताब्दी तक का होने का अनुमान रखा है और नीलकण्ठ शर्मा^३ ने दूसरी-तीसरी शताब्दी के पद्य में अपना

१ चतुर्विंशति पत्रिका अ. ११ पृ. १०० काका सं. १

२ इ. १३५।

३ कीच संस्कृत साहित्य का इतिहास, इ. २१०।

४ वेबर Das Saptasatnam Des Hala (1881) I. Introduction, p. 11
माण्डाकर की कार विजय लकर, माण्डाकर स्मारक ग्रंथ
इ. १९१।

५ इतिहास विश्वोपनिषद् कर्तव्यी विमल १९३० सं. २३, इ. ३-४।

६ नीलकण्ठशर्मा के १-५ विष्णु ग्रंथ काव्य इतिहास, ऑक्सफोर्ड
यूनिवर्सिटी प्रेस, इ. १९५३।

मत व्यक्त किया है। परन्तु किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व और अधिक ऊहापोह कर लेना अभीष्ट है।

रचयिता

‘गाथा सप्तशती’ के रचयिता पर विचार करते समय जब हम कोशकार सातवाहन की विशेषताओं पर ध्यान देते हैं तो कुछ स्पष्ट भेद लक्षित होने लगते हैं। कोशकार हाल का जैनमतावलम्बी होना प्रसिद्ध है, यद्यपि इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है, केवल जैन ग्रंथों में उनका उल्लेख मात्र है, जबकि ‘गाथा सप्तशती’ का रचयिता शैव है और यह बात भगलाचरण वाली गाथा से ही स्पष्ट होते देर नहीं लगती।^१ कोशकार हाल का उल्लेख जैन प्रबन्धों में तो पाया ही जाता है इसके अतिरिक्त वह कई जैन तीर्थों का उद्धारक तथा प्रतिपालक कहा गया है। सस्कृत एवं प्राकृत साहित्य में ऐसे सन्दर्भ आते हैं जिनसे कोशकार सातवाहन दानी, धर्मात्मा, पराक्रमी, लोकहितैषी एवं विद्या-नुरागी जान पड़ता है। उसकी तुलना भोज और मुज आदि से की गई है। बाणभट्ट ने तो उसे ‘त्रिममुद्राधिपति’ की सजा से विभूषित किया है। हेमचन्द्र और मेरुतुंग ने उसे नागार्जुन का शिष्य बतलाया है जो उसका समकालीन था। इसके विपरीत ‘गाथा सप्तशती’ का रचयिता हाल पिलासी रुचिवाला और प्राकृत प्रेमी श्रृंगारी कवियों का आश्रयदाता है। इसके अतिरिक्त ‘गाथा सप्तशती’ में जो रचनाएँ संकलित हैं उनका रचना-काल भी विचारणीय है।

रचना-काल

ग्रन्थ-रचना-काल निर्धारित करते समय जब हमारा ध्यान तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति की ओर जाता है तो हमें यह देख कर आश्चर्य होता है कि ग्रन्थ में बौद्धधर्म को यथेष्ट महत्त्व नहीं दिया गया है। इसके विपरीत यदि उसका कहीं उल्लेख हुआ भी है तो

१ पसुवह्णो रोसारणपडिमासकत गोरीमुहमन्द ।

वर सम्मान-सूचक कदापि नहीं है^१ जबकि बौद्धधर्म के लिए प्रथम राजाधी रत्न-प-नाक छत्राद्य का संख्या है। बौद्ध का राजा-नाक बौद्धधर्म के प्रचार एवं प्रसार का युग रहा है ऐसे समय की रचना में उक्त धर्म का इस प्रकार का सम्बोध होना स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता है। इसमें विपरीत वहाँ पर राधा कुण्ड हर गीरी, गणेश वामन अक्षिता मरस्वती नीर सुवर्णीय-उपपन्न आदि की अधिक वर्णना है। वहाँ पर पौराणिक देवी-देवताओं का ही प्राधान्य है या उस युग की प्रकृति के अनुरूप नहीं है। ऐसी रचना में यह अनुमान करने का आधार मिल जाता है कि 'गङ्गा समरानी' गुप्तकाल अथवा उसके बाद का संप्रदाय है जैसा कि श्री मधुसूदन रायजी ने भी अपनी मूर्धिका में दर्ज किया है।

वहिसाक्ष के आधार पर यह विचारणीय है कि प्राचीन कालों काय जहाँ-कहीं 'गङ्गाधरा' का उल्लेख हुआ है वहाँ पर 'गङ्गा-मयरात्री' का नाम नहीं आया है। इसी प्रकार संस्कृत गङ्गाओं की नाम भी संक्षेप का इनमें नहीं सम्मिल नहीं मिलता है। हमारी गङ्गात्री के प्रारम्भ तक बनी स्थिति है। हेमचन्द्र त्रिनयन सूरि और राजगुरु सूरि आदि न भी 'गङ्गाधरा' का ही नाम किया है। बादही गङ्गात्री के मेरुग ही संक्षेप संक्षेप हैं जिन्होंने 'गङ्गा मयरात्री' का मायोपयोग किया है। ऐसा लगता है कि 'गङ्गा समरानी' का वही संक्षेप संक्षेप 'गङ्गाधरा' कहाने की मूल प्रारम्भ हुई है। मेरुग में जिस 'गङ्गा अनुवह' का उल्लेख किया है उससे 'गङ्गा मयरात्री' की संगति नहीं बैठती है। 'गङ्गा समरानी' को प्रथम राजाधी का संभव मानने में एक अन्य बाधा भी है वह यह कि उसके बाद गङ्गाधर की 'गङ्गा समरानी' के रत्न-प-नाक बादही गङ्गात्री तक किसी अन्य मयरात्री का पता नहीं चलता है। श्री मधुसूदन रायजी ने अपनी मूर्धिका में यह निवेदन का पत्र किया है कि 'गङ्गा समरानी' की कई गङ्गाओं पर 'गङ्गा समरानी' का उल्लेख प्रमाण है। इसमें का अनुमान करने का और अधिक व्यवहार मिल जाता है कि गङ्गामयरात्री हमारी बादही राजाधी के बीच का संक्रमण है।

१. श्रीगुरुधर्मदेवि देह अनुवह कालानुवर्ति।

पाठभेद

उत्तर तथा दक्षिण भारत में 'गाथा सप्तशती' की कई प्रतियाँ उपलब्ध बतलायी जाती हैं। वेबर ने प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर पाठों को जोड़ने के लिए नियम (Vorwort, p XXVII) बनाया जिसके अनुसार चार सौ तीस गाथाओं के पाठ परस्पर मिलान के बाद निर्धारित हुए, किन्तु मूल 'गाथा सप्तशती' की संख्या हमसे कहीं अधिक है। कविप्रत्नल दाल ने कोटि गाथाओं में से सात सौ गाथाओं को चुन कर संकलित किया अथवा करवाया था। अतएव मूलतः सात सौ से कम गाथाएँ नहीं होनी चाहिए।

क्रमभेद

'गाथा सप्तशती' की उपलब्ध प्रतियों की गाथाओं के क्रम में एकत्रपना नहीं है। प्रतिलिपि करने अथवा कराने वालों ने मनमानी रीति से उन्हें क्रमबद्ध कर दिया है। कहीं-कहीं अन्यान्य प्रचलित गाथाओं तक का उनमें समावेश किया गया मिलता है। वेबर बाने संस्करण की उत्तरार्द्ध वाली गाथाओं में से कई परधर्मीकालीन हैं। लोकप्रिय गाथाओं के मूल रूप में हस्तलिखित न होने के कारण पाठभेद के साथ-साथ क्रमभेद के भी अधिक अवसर उपस्थित हुए हैं।

टीकाएँ

आफ्रेट के अनुसार 'गाथा सप्तशती' की लोकप्रियता का पता उसकी टीकाओं की संख्या से चल जाता है। कुलनाथ, गगाधर, पीतावर, प्रेमराज, भुवनपालन और माधारण देव ऐसे ही टीकाकार हैं। इनके अतिरिक्त पीतावर की टीका में भट्ट, चैतन्य, कुलपति, भट्टराघव और भोजराज के नामोल्लेख हैं। डॉ० भाण्डारकार ने किसी आजड का टीकाकार रूप में नाम गिनाया है।^१ पंजाब विश्वविद्यालय

^१ Report on the Search for Sanskrit Manuscripts during the Years 1887-91, p 26

क पुस्तकालय में माधवराज मिश्र लिखित 'तात्पर्य श्रीराम नामक इस्तसिलित टीका संगृहीत है। पंडित मधुसूदन शास्त्री भी टीका भाषुनिक है। गंगाधर तथा पीतांबर की टीकाएँ पूर्णवर्ती हैं जिनका चम्पनर शस्त्री भी ने किया है। इनमें से मुबनपाख जैन बीर प्रेमराज सहगल (रत्नसिंह) काशी हैं, अधिक नहीं जैसा कि धार्यक बना गया है। केवल क अनुसार 'गाथा समराती' की सप्त प्रतियाँ और तेरह टीकाएँ उपलब्ध हैं। 'ग्यान्त्र सङ्कपा एक मिश्र टीका है।

गाथा समराती के कवि

'गाथा समराती' की सभी प्रतियों में संश्लिष्ट गाथाओं में एक कृपा नहीं है। चार सौ तीस ग्याथाओं में दो सयानवा हैं, रोप में विविधता है।^१ इनके रचयिताओं के भी कथंय प्राच मिह जाते हैं। फिर भी कई प्रतियों में कवियों के नाम परस्पर नहीं मिलते। मुबनपाख की टीका में इन रचयिताओं की संख्या ३८४ तक पहुँच जाती है। चम्पनर सं राङ्गपत्र पर लिखित एक लण्डित प्रति प्रकाश हुई है जिसमें चार सौ तीस ग्याथाएँ संश्लिष्ट हैं और जो सभी उपलब्ध प्रतियों में एक-सी हैं। इस प्रकार लगभग दो सौ सत्तर कथा इनसे अधिक ग्याथाओं में ही हो-येर है।

कवियों की साम्यता की पर विचार करते समय यह स्पष्ट होते दर नहीं लगती कि इनमें से अधिकांश का समय प्रथम शताब्दी के बाद का है और यह उन चार सौ तीस मूळ गाथाओं के कवियों पर भी लागू होता है। इसलिय यह मानने का सबब कारण है कि मूळ में ही इन कवियों की रचनाओं को संश्लिष्ट कर लिख्य गया है। इसलं कथ-निर्बंध करने में भी सहायता मिलती है। मूळ 'गाथा-समराती'

१. कपरीक सार Gatha Saptak Ball, Introduction, p 18

२. केवल Das Septemistakam Das Hala, XXVIII, Indische Studien XVI, p. 9

३. केवल Das Septemistakam Das Hala (1881) p. XXVIII, हिन्दी The Date of Gatha Saptaketi, Indian Historical Quarterly Dec. 1947

के कतिपय रचयिताओं के कालक्रमानुसार पर यहाँ विचार कर लेना उपयोगी है जो इस प्रकार है—

(१) प्रवरसेन भुवनपाल की टीका में इन्हें प्रवर, प्रवरराज अथवा प्रवरसेन कहा गया है। पीतावर की टीका में भी इनका उल्लेख है। यही बात निर्णयसागर प्रेस वाले मस्करण में पायी जाती है। इन्हें प्राकृत काव्य 'सेतुबन्ध' और 'राजण बहो' का रचयिता बतलाया जाता है। बाण, दण्डी तथा आनन्दवर्द्धन के उल्लेखों के आधार पर इनका समय सातवीं शताब्दी से पूर्व होना चाहिए। यदि इन्हें हम वाकाटक वशीय द्वितीय प्रवरसेन मान लें तो यह समय पाँचवीं शताब्दी का हो सकता है जो कश्मीर नरेश प्रवरसेन का समसामयिक भी कहला सकता है।

(२) सर्वसेन भुवनपाल और पीतावर की टीकाओं में इनका नाम मिलता है। दण्डी ने 'अग्रन्ति सुन्दरी' में प्राकृत काव्य 'हरि विजय' के रचयिता को राजा बतलाया है। यह वाकाटक वशीय वत्सगुल्म शाखा का मस्थापक हो सकता है जो प्रथम प्रवरसेन के पुत्रों में से एक था। इसका उल्लेख इसके पुत्र द्वितीय विन्ध्यशक्ति के वसीम ताम्रपत्र तथा अजन्ता की १६ सख्यक गुफा में पाया जाता है। सर्वसेन का समय चौथी शताब्दी का द्वितीय चरण है।

(३) मान मिराशी इन्हें राष्ट्रकूट वंश का मस्थापक मानाङ्क मानते हैं जिनका समय चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध का मध्य है। सतारा जिला का मान अथवा मानपुर इस घराने का मुख्य स्थान है। कर्नल टॉड को मोरी राजा मान का एक शिलालेख मानसरोवर मील (चित्तौड़) से भी प्राप्त हुआ था।

(४) देव अथवा देवराज इसे मिराशी राष्ट्रकूट वशीय मानाङ्क का पुत्र बतलाते हैं जिनके दरबार में कालिदास को चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दौत्य कार्य करने के लिए भेजा था। इस राजा का उल्लेख राष्ट्रकूट वंश की दो ताम्रलिपियों में हुआ है। ये दोनों पिता-पुत्र मुक्तक-काव्य के रचयिता तथा प्राकृत कविता के प्रेमी थे। 'देसीनाममाला' में देसी नामों के किसी कोश की चर्चा है जो देवराज कृत बतलाया जाता है। नवीं-दसवीं शताब्दी के शिलालेखों में भी इस नाम के अन्यान्य राजाओं के उल्लेख पाये जाते हैं।

१ (२) बाणपतिरात्र यह भारतीय प्राच्य काव्य 'गायक्यो' तथा 'मधुमयन विजय' का रचयिता समझा जाता है। इसकी चर्चा आन्सम्ब-चरुण अभिलेखान और इमचम्ब ने भी की है। कभीक के प्रतिहार राजा फणोवर्गमन का यह राजकवि का और 'बाणपतिरात्र' परमार राजा मुंड का एक विग्रह भी का। भवभूति का यह समसामयिक है। यह जाठरी राताणी के उत्तरार्द्ध का उद्भूत है।

(६) कर्ज कवचा कर्जरात्र कवचका विष्टे के लखका ग्राम से इस नाम के कई विष्टे मिले हैं। मिश्राजी के अनुसार यह सत्तवाहन वंशीय एक राजा है जिसका समय तीसरी राताणी का द्वितीय चरण है।

(७) धनन्तिचर्मन यह भी राताणी का प्रसिद्ध कर्मीर नरेश है जिसके दरबार में 'धन्यकाक' के मण्डता आन्सम्बचरुण रहते थे।

(८) ईरान यह बाणभट्ट का मित्र तथा समसामयिक प्राकृत का प्रसिद्ध कवि का जिसका सामान्यतया 'धन्यवरी' में पद्या जाता है। इसका समय सातवीं राताणी का पूर्वार्द्ध है।

(९) रामोत्तर यह जाठरी राताणी के कर्मीर नरेश कवपीड का प्रधान भंडी हो सज्जा है जो 'हुहनीमलम्' का रचयिता बलकावा जाता है। उसमें 'रत्नचंदी' की कथा और एक पद्य पद्या जाता है।

(१०) मधुर बाणभट्ट ने इसे प्राकृत भाषा का कवि और अपना शत्रु बलकावा है। इसलिए इसका समय सातवीं राताणी का पूर्वार्द्ध हीना चाहिए।

(११) कव्य स्वामी यह प्रसिद्ध कवि तथा जैन व्याख्यान समझा जाता है जो प्रतिहार राजा नाम का छोटा कवचा द्वितीय मागमह का मित्र एवं समसामयिक का। चम्पूग्रंथ सूरि की रचना 'कव्यमहि चरित' (प्रमाचक चरित) में इसका कसेरा मिलता है। इसका समय नवीं राताणी का पूर्वार्द्ध होना चाहिए।

(१२) वज्रम कवचा महु बल्लभ आन्सम्बचर्मन कृत 'वेदीमलक' की टीका में कैवट ने अपने को वज्रमवेश का पौत्र कहा है जिसका समय दसवीं राताणी का चतुर्थ चरण है। अपनी रचना 'मिथ्यल' काव्य में कवि ने पूर्ववर्ती कवि कविशास तथा बाणभट्ट की चर्चा की है। इस प्रकार इसका समय जाठरी-नवीं राताणी हो सज्जा है।

(१३) नरसिंह शार्ङ्गधर पद्धति एवं 'ध्वन्यालोक' की टीका में इस कवि के कई श्लोकों का पता चलता है। यह सोलकी राजा भी हो सकता है जो धारवार जिले का निवासी था। दसवीं शताब्दी के कवि पद्म रचित 'विक्रमार्जुन विजय' में इस वंश के दस राजाओं का उल्लेख मिलता है। इस नामावलि में नरसिंह नामक दो राजा हैं। कवि पद्म द्वितीय नरसिंह का समसामयिक था। कन्नौज नरेश यशोवर्मन का उपनाम 'नरसिंह' कहा गया है।

(१४) अरिकेसरी यह नरसिंह का पुत्र समझा जाता है। द्वितीय अरिकेसरी कवि पद्म का समसामयिक है।

(१५) वत्स, वत्सराज अथवा वत्स भट्टी 'नवीं शताब्दी में कन्नौज के गुर्जरप्रतिहार वंशीय वत्सराज नामक राजा रहा है। पाँचवीं शताब्दी का 'महसोर प्रशस्ति' का रचयिता वत्सभट्टी इन गाथाओं का रचयिता हो सकता है। इस अवधि के भीतर इस नाम के कई व्यक्ति अथवा राजा हुए हैं जो हर हालत में परवर्ती कालीन हैं।

(१६) आदि वराह नवीं शताब्दी की ग्वालियर प्रशस्ति में प्रतिहार राजा भोजदेव का उपनाम 'आदि वराह' दिया गया है। बहुत संभव है कि यही वह कवि है।

(१७) माउरदेव स्वयम्भू प्राकृत साहित्य का प्रख्यात जैन लेखक है जो अपने को भाषा-कवि माउरदेव का पुत्र बतलाता है। 'पडम चरित', 'पचमी चरित' तथा 'रिद्धनेमि चरित' इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इसके एक व्याकरण की चर्चा मिलती है जो न तो प्रसिद्ध है, न उपलब्ध। प्राकृत भाषा के छद्म पर इसकी किसी रचना का पता नहीं चलता है। हमका समय सातवीं-आठवीं शताब्दी संभव जान पड़ता है।

(१८) विअट्ट (विअट्टइन्द्र) स्वयम्भू के ग्रंथों में प्राकृत तथा अपभ्रंश के कवि रूप में इनका उल्लेख मिलता है। इनका समय छठीं-सातवीं शताब्दी हो सकता है।

(१९) धनञ्जय इस नाम के दो कवि विख्यात हैं। एक मालवा नरेश मुज परमार का दरबारी कवि था जो भोज तथा सिन्धुल का समसामयिक था। एक अन्य धनञ्जय नामक लेखक का संस्कृत श्लोक 'धवला' टीका में उद्धृत है जो धनञ्जय 'नाममाला' का ही है। यह संस्कृत का महाकवि है जिसका 'द्विसंघान' महाकाव्य 'काव्यमाला' में

प्रदर्शित है। 'आमयासा' कोश यादव का नहीं संस्कृत का शब्द है। बरबा टीका आठवीं शताब्दी की है। इस प्रकार ये दोनों कवि दली से इसी शताब्दी के बीच के हैं।

(२) हरिराज कलोज के विरचित कवि राजशेखर का विद्वत् है। राजशेखर साहय का कवि तथा विद्वान का। 'चर्पूर मञ्जरी' 'जल्प सीमांसा' तथा 'सुप्रियुष्यवती' आदि इसकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इसका समय नवी-बसवी शताब्दी है।

(२१) सिंह मवी शताब्दी के प्रथम चरण में गुरिखोट बंशीध हम् नाम का राजा था। इसी शताब्दी के शक्ति कुमार के आदेश से उपहास्य एक 'शिखोत्प्रेर' में इसकी प्रथम मनुष्य के पुत्र रूप में वर्णन है। 'चातसू प्रशस्ति' में इसे ईशान का अवतार कहा गया है।

(२२) जमिन (गति) यह संस्कृत शब्द का कवि और मयुर रत्न का जैम सुमि है।^१ इसके संस्कृत ग्रंथ भारत के संस्कृत रूपान्तर मात्र हैं। मयुरा के मुँह परमार के दरबार में इसे सम्मान प्राप्त था। इसका समय इसी शताब्दी है।

(२३) माधवसेन का जमिन गति का गुण है। परन्तु इसका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। संभव है स्पष्ट रचनाएँ करता था हो।

(२४) शक्ति प्रसा परमार राजा मुँह तथा इसके वरचसिधारियों के दरबारी परामुख में अपनी रचना 'मयसाहसिक चरित' में राजा सिन्धुज की रानी शक्तिप्रसा का वर्णन किया है। संभव है यही वह कवयित्री हो।

(२५) नरवर्धन मेवाड़ के गुरिखोट बंशीध राजा सिंह के वरचसिधारियों में यह नाम पाया जाता है। इसका इसी शताब्दी का एक

१. लक्ष्मि कावूराम देवी द्वारा डॉ. रामदेव जगज्ज कलकत्ता को दिया गया पत्रिका की मागरी प्रचारिणी प्रतिका वर्ष ५० अंक १-२, संख्या २ २ में ५० २ २-७४ दिया है।

२. राजाध काव्यसीमांसा की तुलिका, पृ. २१।

३. इतिवचन इतिवचनी, अंक ३९ पृ. १२३।

४. इतिवचन इतिवचनी, अंक ३९ पृ. १२-१३।

५. कावूराम देवी और लक्ष्मि और इतिवचन ५० २ १५०

शिलालेख उदयपुर के पास एकलिंग स्थान से मिला है ।^१ आहाड के शिलालेख में इसे शालिवाहन का पिता सूचित किया गया है ।

उपर्युक्त विवरण द्वारा 'गाथा सप्तशती' का रचना-काल निर्धारित करने में यथेष्ट सहायता मिलती है और यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि वर्तमान रूप में 'गाथा सप्तशती' वस्तुतः 'गाथा कोश' से भिन्न कृति है । इस प्रकार इसका परवर्ती कालीन होना भी निश्चित हो जाता है । फिर भी यह जानना गेप रह जाता है कि यह सातवाहन वंशीय कोश-कार हाल से भिन्न हाल कौन और कहाँ का है जो शैव राजा भी है ।

निष्कर्ष

'गाथा सप्तशती' का सकलनकर्त्ता निश्चय ही कुशल कवि अथवा काव्य मर्मज्ञ रहा होगा । ध्वन्यालोक, तल्लोचन, काव्य प्रकाश तथा सरस्वती कण्ठाभरण आदि ग्रंथों में 'गाथा कोश' की कई गाथाओं को उद्धृत किया गया मिलता है । इससे पता चलता है कि यह काव्य-प्रेमियों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रहा है । ऐसा लगता है कि उसके अधिकतर श्रृंगारी गाथाओं का चयन करके यह संग्रह ग्रंथ तैयार किया गया है जिसकी पुष्टि तीसरी गाथा द्वारा हो जाती है ।^२ परवर्ती टीकाकारों ने गाथा कोशकार 'हाल' (सातवाहन, शालवाहन) और 'गाथा सप्तशती' के सकलनकर्त्ता को अभिन्न मानकर दोनों की ही गाथाओं को हाल नाम से सम्बद्ध कर दिया है । यद्यपि अपवाद स्वरूप 'शाल' अथवा 'शालिवाहन' पाठ भी मिल जाते हैं ।

पीतावर की टीका में कई स्थलों पर हाल के स्थान पर शाल-वाहन कर दिया गया है जो गाथाएँ गाथा कोशकार हाल सातवाहन

१ जर्नल रॉयल एशियाटिक सोसायटी, थम्बर्ड शाखा, खंड २२, पृ० १६६-६७ ।

२ सप्त सताष्ट कइषण्डलेण कोडीअ मज्झभारमि ।

हालेण विरइभाइ सालाङ्काराणं गाहाण ॥ ११३ ॥

संस्कृत रूपान्तर—

सप्तशतानि कविवासलेन कोटेर्मध्ये ।

हालेन विरचितानि सालङ्काराणां गायानाम् ॥

की न होकर गाथा सम्राटी के संकलनकर्ता शक्तिवाहन की हो सकती है। इन तीनों में जिन कई गाथाओं का रचयिता 'सप्तवाहन' है वह निर्णय सागर प्रेस बाई संस्करण में 'हाल शत रचित नहीं बरहाया गया है। इससे वह अनुमान करने का आधार मिल जाता है कि गाथाओं के रचयिताओं का नाम देने में टीकाकारों से भूलें हुई हैं। कवियों की सम्प्रदायी में भी पाठभेद है और इनकी गाथाओं में भी भ्रमभेद हुआ है तथा कई गाथाओं में कविता के नाम तक नहीं हैं। फिर भी 'गाथा कोश' की कई गाथाएँ 'गाथा सप्तवाही' में समाविष्ट हैं। प्रथम शतक की प्रारम्भिक तीन गाथाएँ और अन्य शतकों के अतिरिक्त अन्य की जवना कुछ अन्य गद्यार्थ 'गाथा सप्तवाही' के 'शक्तिवाहन' की है जिनका 'शक्तिवाहन' पाठान्तर सम्भव है। शत गाथाएँ जो हाल नाम के साथ अंकित हैं वे शक्तिवाहन सप्तवाहन 'हाल की रचनाएँ हैं जो 'गाथा कोश' से कहीं गई जान पड़ती हैं। 'गाथा सम्राटी' में सप्तवाहन 'हाल' के अतिरिक्त 'पंडित तथा गुणाधर की भी कुछ गद्यार्थ सम्मिलित हैं। वह अस्सेप्रनीति है कि 'गाथा सप्तवाही' में कहीं भी 'हाल' का 'सप्तवाहन' रूप में उल्लेख नहीं मिलता।

गाथाओं में उल्लिखित विचर एवं गुणाधि से उनके रचयिता का शक्तिवाहन जवना स्थापना होने का अनुमान होता है। परन्तु इसके विपरीत अन्य गाथाओं में कसुमा तथा मानसरोवर का भी नामांकन हुआ है। यही नहीं अन्य कई ऐसे वर्णन मिलते हैं जिनका उत्तरी भारत की ऐतिहासिक से भी सम्बन्ध है। इसलिये वह भी ध्यान देने योग्य है।

परन्तु इसी शताब्दी का शैवमताधिकारी शक्तिवाहन नामक राजा जिसके संरक्षण में 'गाथा सम्राटी' का संकलन हुआ है वह मेवाड़ का मुदिहोत बंशीय राजा नरवाहन का पुत्र शक्तिवाहन हो सकता है। इसका शासन-काल १००-१०० ईसवी के आस-पास है जिसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी शक्तिवाहन था। मेवाड़ का राजवंश

१. मिश्रा : The Date of Gauthamputri, Indira Historical Quarterly 1947

२. श्रीचंद्र शिवालय कोश : राजपूताना के इतिहास पृष्ठ १

परम्परा से ही पाशुपत शैवमत का अनुयायी है। राजा शालिवाहन विलामी प्रकृति का था और उसका अंत भी दुश्चरित्रता के ही कारण हुआ। इस प्रकार राजकुल में इसका स्थान गौण बन गया और उसका उल्लेख केवल ६७७ ईसवी की आहाड अथवा ऐतपुर प्रशस्ति में ही हो सका। आवू, चित्तौड़ तथा रणपुर की प्रशस्तियों की घशावली में उसका नाम तक नहीं मिलता।

गाथा कोशकार सातवाहन हाल के नौ शताब्दियों बाद मेवाड़ नरेश शालिवाहन का ही नाम आता है जिसकी राजधानी आहाड अथवा आड़ (प्राकृत में आढ्य) रही है। इसका ध्वशावशेष अब भी उदयपुर के पास देखा जा सकता है। इसी समय के आस-पास मालवा नरेश परमार राजा मुज ने आक्रमण द्वारा आहाड को ध्वस्त कर चित्तौड़ को हस्तगत कर लिया था।^१ इसी आहाड के आधार पर इन नरेशों को आहाड़िया कहने की परम्परा थी। यह स्थान तीर्थ-स्थान भी रहा है। बहुत दिनों तक दोनों शालिवाहन (गुहिल तथा सातवाहन) भ्रमवश एक ही समझे जाते रहे जिसका निराकरण स्वर्गीय ओम्मा जी ने किया था। इस भ्रान्ति को पुष्ट करने में जिनप्रभ सूरि तथा राजशेखर सूरि ने भी योगदान दिया था। परन्तु जिनप्रभ सूरि यह लिखना भी नहीं भूले कि यदि कहीं कोई असभाव्य बात आ गई हो तो उसका दायित्व उन पर नहीं, 'पर-समय' पर है, क्योंकि, जैन कभी असंगत बात नहीं कहते।^२

फिर भी शका हो सकती है कि मेवाड़ में प्राकृत भाषा का प्रचलन था भी अथवा नहीं। तथ्य यह है कि गुप्त साम्राज्य के अवसान के बाद सातवीं से दसवीं शताब्दी तक उत्तरी भारत में प्राकृत का प्रचार अपने उत्कर्ष पर था। ग्यारहवीं शताब्दी के राजा भोज ने अपनी रचना 'सरस्वती कण्ठाभरण' में लिखा है कि "आढ्यराज के राज्य

१ पृषिमाफिआ इण्डिका, खण्ड १० श्लोक १०, पृ० २० ।

२ अत्र च यदसम्भाव्य तत्र परसमय एव ।

मन्तव्यो ऽ हेतुर्यथासङ्गतवाग्वनो जैम ॥

में बीम माकृतभाषी तथा साहसिक के समय में बीम संस्कृतभाषी नहीं हुआ ?^१

आमरराज को लेकर विद्वानों में बड़ी मतभेद रहा है और बाण का एक श्लोक टीकाकार होकर के कारण विवादास्पद बना रहा। किन्तु डा. हजरा ने अपने एक लेख द्वारा इसका निराकरण कर दिया।^२ उनके अनुसार बाण ने सहाय्य रूप के लिए आमरराज का प्रयोग किया है। अवश्य माकृत-भेमी आमरराज राक्षि-बाहन ही हो सकता है जिसका लक्ष्य 'सरस्वती कण्ठमरण' में हुआ है। इस प्रकार का आमरराज मेवाड़ नरेश गुहिल राक्षिबाहन का ही विश्व नामा चाहिए। अतःबाहन हाथ के लिए आमरराज कहा गया नहीं मही सकता। मातृ-विज्ञान की दृष्टि से माकृत एवं अपभ्रंश के प्रभाव तथा प्रचलन के कारण 'रा' का 'ह' बदलना ही जाना सम्भव है। अवश्य राक्ष का हाथ हो जाना असंभाव्य नहीं है। श्री मिश्रन डा. माकुर ने अपने एक निबन्ध में इन प्रश्नों पर विस्तार पूर्वक विचार किया है।^३ उनका निष्कर्ष है कि "दक्षी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में किसी माकृत-भेमी रीति तथा ने जो बन्ध दरबारी कवियों की छाया से अपनी गृंगारी मनोवृत्तियों के अनुसार मार्गीय एवं समकालिक माकृत कवियों की रचनाओं में से १० मुख्य गायकों चुनकर गाथा सजरासी का 'राक्षिबाहन सारस्वती नाम से पहली बार संगृहीत की।"^४

प्रथम प्रकाशन

'गाथा सारसाही' को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का मेव मेव को है। सन् १८७० ईसवी में लन्दन के सिटिका से *Ueber Das Bauptacc-takam Das Hale* नामक एक प्रकाशित कराया जा जिसमें तीन

१. देवप्रकाशनामक नामी माकृत पाणिनी।

कले की साहसिकता के व संस्कृतपाणिनी ॥

२. डॉ. का. की हजरा इतिहास विज्ञानिक समित्वी पृष्ठ १९७५
३. १९५-५ ।

४. बावरी प्रकाशित पत्रिका वर्ष १ अङ्क ५-७ अक्टू १ ७५, पृष्ठ १७ ।

सौ सत्तर गाथाएँ मगृहीत थीं। सन् १८७२-७४ ईसवी में और अधिक गाथाएँ उपलब्ध हुई जिन्हें उन्होंने Zeitschrifter Deutschen Morgen Landischen Gasellschaft (26 pp 735 foll) में प्रकाशित कराया। परन्तु 'गाथा सप्तशती' की सम्पूर्ण प्रति सन् १८८१ ईसवी में लाप्जग से ही प्रकाशित हुई जिसका नाम Das Saptacatakam Des Hala था। उन्होंने पुस्तक को शुद्ध बनाने के लिए अनेक हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग किया था और साधारणदेव की 'मुक्तावली' नामक टीका की 'ब्रज्या पद्धति' से काम लिया था तथा कुलनाथ, गगाधर एव पीतावर की टीकाओं से भी सहायता ली थी। 'ब्रज्या पद्धति' उत्तरकालीन है। 'वज्जालग' में कहा गया है कि—

एकत्ये पत्थावे जत्थ पढिजन्ति पउर गाहाओ ।

त खलु वज्जालग वज्ज त्ति य पद्धई मणिया ॥

'ब्रज्या' अर्थात् विषय क्रम से समग्र करने की पद्धति। डॉ० थामस ने 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' की प्रस्तावना में वज्जा, ब्रज्या और वर्ग को समानार्थी शब्द माना है।

भारतीय संस्करण

परन्तु भारतवर्ष में 'गाथा सप्तशती' को सर्वप्रथम सन् १८८६ ईसवी में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित कराने का ध्येय 'काव्यमाला' सम्पादक पण्डित दुर्गा प्रसाद शर्मा तथा पणशीकर शास्त्री को है। यह संस्करण निर्णय सागर प्रेस, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'काव्यमाला' (क्रमांक २१) में मुद्रित हुआ था जिसमें गगाधर भट्ट की 'मावलेश प्रकाशिका' टीका भी सम्मिलित है। इसे तैयार करने में चार हस्तलिखित प्रतियों की सहायता ली गई थी जिनके आधार पर पाठभेद भी दे दिया गया है। सम्पादक द्वारा संस्कृत प्रस्तावना के अतिरिक्त अकारादि क्रम से गाथाओं की अनुक्रमणिका भी दी गई है। सन् १९११ ईसवी में इसकी द्वितीयावृत्ति हुई थी। पंडित मथुरानाथ शास्त्री ने इसका प्रकाशन संस्कृत छाया, विस्तृत प्रस्तावना तथा टीका सहित निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से कराया था जिसकी तृतीयावृत्ति

सन् १६९३ ईसवी में हुई थी। इस संस्करण के बाद पञ्जाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थ की छायाका केकर कागजीरासराज जी न पहास ओरिजिनल कासेज मेगसीम में भीर तदनन्तर सन् १६९२ ईसवी में काहोर से हारिदास पीतांबर की टीका सहित पुस्तक रूप में प्रकाशित कराया था जिसके कारण में विशेषमात्मक प्रस्तावना तथा अन्त में अक्षरादि क्रम से गायानुची सम्मिश्रित है।

यह संशोधन भी बात है कि सन् १६९६ ईसवी में कामग पद साब ही ककड़ता से भी राधानोबिन्दा बसाक हाउ बंगला संस्करण और पुर्व से भी सहायित आत्मसादाय ओम्मेकर हाउ मराठी संस्करण सुसंपादित होकर प्रकाशित हुए हैं। मिस्सनर काक तक हिन्दी पाठकों के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण मंत्र का कोई हिन्दी संस्करण सुक्रम न इमा विन्दा था है।

भाषा

आधुनिक भाषा में भाषा सामग्री की रचना हुई है। भाषा भाषा के कई रूप हैं जो देशकाल के अनुसार परिवर्तित होते रहे हैं। 'अभ्यन्तर' के टीकाकार नमि साधु (१६८ ईसवी) ने "प्रकृतोति। सप्रकाशप्रकाशनां अक्षरवर्णमिरावित संस्था" स्रजो बचन व्यापार प्रकृति। तत्रमर्थ सैव वा प्रकृतम्।" द्वारा प्रकृत का परिचय दिया है। इस प्रकार भाषा संस्कृत के संस्कार से रूप तथा व्याकरण के निष्कर्ष से कुछ सामान्य बातों की स्वभाव सिद्ध बोधनाय की भाषा है। परन्तु संस्कृत तथा भाषा का परस्पर सम्बन्ध विव रहना सामान्य नहीं है। 'भाषा संकीर्णनी में कहा गया है कि "भाषास्य तु सर्वमेव संस्कृतं कोनि। फिर भी डॉ. गुप्ता इससे स्वरूप नहीं जान पड़ते वे दोनों का प्रकृत-प्रकृत मानते हैं। वरन् प्रकृत भाषा का व्याप्ति व्याकरणकार है जो पानिनि का परवर्ती अथवा समसम्बन्धित है।" इसने महाराष्ट्री पेशाबी शौरसेनी एवं मगधी इन चार भाषाओं पर विचार किया है। आधुनिक भाषा के

मूल स्थान को लेकर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। दण्डी के अनुसार “महाराष्ट्राश्रया भाषा प्रकृष्ट प्राकृत विदुः।” इस दिशा में महत्त्वपूर्ण सकेत है।^१ प्राकृत भाषा में भी तत्सम, तद्भव एवं देशी शब्दों का मिश्रण मिलता है।

प्राकृत भाषा के माधुर्य की बड़ी प्रशंसा की गई मिलती है। ‘वज्रालङ्कार’ में जयवल्लभ ने निम्नलिखित गायत्री उद्धृत की है—

देसियसहपलोद्दु महुरक्खरच्छन्दसठिय ललिय ।

फुडवियडपायडत्थ पाइअकव्व पढेयव्व ॥ २८ ॥^२

इसी प्रकार राजशेखर ने संस्कृत एवं प्राकृत भाषा की तुलना करते हुए ‘कर्पूरमञ्जरी’ (निर्णयसागर प्रेस संस्करण १।८) में लिखा है कि—

परुसा संकअवधा पाठअवधो वि होइ सउमारो ।

पुरिसमहिलाणें जेत्तिआमहतर तेत्तिअमिमाण ॥^३

वाक्पति राजा के निम्नलिखित उद्गार भी ध्यान देने योग्य हैं—

णवमत्थ दसण सनिवेश सिसिराओ बन्ध रिद्धीओ ।

अविरलमिणमो आ भुवन बन्धमिह णवर पययन्मी ॥

सयलाओं इम घाया विसन्ति एत्तो य गेन्ति वायाओ ।

गेन्ति समुद्विय गेन्ति सायराओविय जलाइ ॥

हरिस विसेसो वियसारओ य मवलावओ य अच्छीण ।

इह वहि हुजो अन्तो मुहो य हिययस्स विप्फुरइ ॥

इतने पर भी प्राकृत भाषा की श्रेष्ठता में भला किसे सन्देह रह सकता है ? किसी अज्ञात कवि की उक्ति है कि—

१ चाटो Maharastri Language and Literature Journal of the University of Bombay, Vol IV, Part VI, p 31

२ संस्कृत रूपान्तर—

देशीशब्दपर्यस्त मधुराक्षरच्छन्दः सस्थित उल्लित ।

स्फुटविकटप्रकटार्थं प्राकृतकाव्य पठनीय ॥

३ संस्कृत रूपान्तर—

पुरुषा संस्कृतगुग्गा प्राकृतगुग्गोऽपि भवति सुकुमारः ।

पुरुषमहिलानां यावदिहान्तरतेषु तावत् ॥

अभिर्भू पाञ्च कर्म्म पण्डित सोर्ष अ भे न आनन्ति ।

अयस्स सत्त तन्ति कुमन्ति ते कर्म्म व कुञ्जन्ति ॥

अर्थात् 'जिसने बहुत सारा माण्डव कर्म्म का पठन करवा करण करना नहीं जाना वह कर्मशास्त्र की पाल-विन्या में प्रवृत्त होते कर्मा का अनुभव क्यों नहीं करता ?'

फिर भी यह कथन करने की बात है कि मानापाठ एवं नासिक के विद्याप्रेक्षों में अत्यन्त माण्डव 'गाथा' शस्त्रापी के माण्डव वैसी नहीं है। कदाचित् यह मेद शौचीमेद के कारण है। इसका एक अन्य कारण अक्षमेद और स्वात्ममेद भी हो सकता है। सोम्यपी शस्त्रापी के संघ कवि राजप जी ने माण्डव और संस्कृत के विषय में कहा है—

बीज रूप ऋतु बीर का वृक्ष रूप भक्त बीर ।

तबो माण्डवें संस्कृत राजप सम्पदा बीर ॥ ७१ ॥

उत्तर

'गाथा शस्त्रापी' का 'गाथा' शब्द कर्म के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यों 'गाथा' शब्द का अयोग वैदिक साहित्य से लेकर बौद्धादि साहित्य तक में विभिन्न अर्थों में लिख गया मिला है। जिज्ञासार्थ ने 'अत्रा-मुत्तं गाथा' कहा है। इसलिये "अत्राद्यन्ते नमोदेयेन क्लोत्तं कर्म" मध्येन च द्रव्यते वद्गाथेति भवत्यम् च्यते है। रक्तकार सूरि ने गाथा का अर्थ इस प्रकार कहा है।

सामन्तेन वारस अह्वारस वार पनरमत्तजो ।

कमसो पाचनको गाथाप इति निचमेव ॥

गाथाप वसे चरचर्यत्तसा सत्त; अह्वेमहुच्छो ।

एवं बीजसे मिहु नवरं अह्वोइ एकज्जो ॥

कोहनुक गाथा को माण्डव में संस्कृत से आया बतावते हैं। डॉ तोरे ने 'अत्राक्षमा' की प्रस्तावना के सातवें श्लोक पर गाथा का विवरण दिया है। अत्राक्ष माण्डव गाथा का अर्थ इस प्रकार लिख गया है—

१ जलाराम कुर्येदी अत्राक्षमा अथवा अत्राक्षमा विद्याप अत्रा,
कलकत्ता, पृ १ १ ।

२ Sanskrit and Prakrit Poetry Ashtika Remains २, p 400.

पठम बारह मत्ता, धीए अट्टारएहि सजुत्ता ।

जह पठम तह तीख, दह पख्विहूसिआ गाहा ॥^१

संस्कृत छन्दशास्त्र में आर्या के लिए जो नियम निर्धारित हैं वह भी इसी प्रकार का है—

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेहपि ।

अष्टादश द्वितीये चतुर्थ के पञ्चदशसार्या ॥

अर्थात् जिस छन्द का प्रथम चरण बारह मात्रा का (स्वर की लघुता एवं गुरुता के परिमाण से) द्वितीय अठारह का, तृतीय बारह और चतुर्थ पन्द्रह का होता है उसका नाम आर्या है। इस प्रकार संस्कृत की आर्या ही प्राकृत का गाथा छन्द है।

‘वज्जालगा’ में जयवल्लभ ने ‘गाथा’ की सराहना करते हुए कहा है—

अद्वक्त्तरमणियाण नूण सविलासमुद्धहसियाइ ।

अद्वच्छिपेच्छियाइ गाहाहि विणा ण णाज्जति ॥ ६ ॥

यही नहीं, आगे कहा है—

गाथा रुवड वराई सिक्खिजन्ती गवारलोएहि ।

कीरड लुख्खपलुखा जह गाई मन्ददोहेहि ॥ १५ ॥

कवि उमर में यहाँ तक कह गया है कि—

ललित मधुरक्खरए जुवईजणवल्लहे ससिंगारे ।

सते पाइअकव्वे को सक्कइ सक्कय पढिऊ ॥

अर्थात् ललित एवं मधुर, शृंगारिक तथा युवती जन प्रिय गाथा संस्कृत काव्य में कहाँ मिलेगा ?

उपसंहार

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ‘गाथा सप्तशती’ वही रचना नहीं है जिसे ‘गाथा कोश’ नाम द्वारा अभिहित किया जाता है। ‘शालिवाहन

१ संस्कृत रूपान्तर—

प्रथम द्वादश मात्रा द्वितीये अष्टादशभिः संयुक्ता ।

यथा प्रथम तथा तृतीय दशपञ्चविभूषिता गाथा ॥

स्मरणीय भावना प्रति से कम बह सहयोगी कर्मियों के नाम तथा का पता चला जाता है जो स्वतंत्रता के समर्थक रहे हैं। अभिप्रेषण प्रतियों की प्रारम्भिक सावधानीपूर्वक इन्हीं द्वारा उचित व्यवस्था की जाती है।

भारतवर्ष के राजा सत्यवाहन द्वारा प्रथम गुरुद्वीप का दक्षिणात्य राजा का जिसने 'गाथा कोसा' का संकलन कराया था। यह स्वयं गुरुद्वीप का कवि भी था। रामचन्द्र ने 'कर्पूर मञ्जरी' के विद्वत् प्राण इसकी सुश्रुता छोटीया हरिचन्द्र और नन्दचन्द्र आदि गुरुद्वीप कवियों से करायी है। वायव्य ने 'हर्षचरित' में सत्यवाहन राजा द्वारा विद्वत् आदि के राजों के सहस्र सुभाषितों से समन्वित वाक्यम् एवं कविमञ्जरी कोसा बलाये जाने की चर्चा की है।

राजरोखर ने 'अमर मीमांसा' में लिखा है कि चम्पूरा विष्णु-
विश्व के अमरपुर में संसृष्ट का और कुतल सातवाहन के अमरपुर
में मातृल भाष्य का मन्त्रालय था। कुतल राज्य का इसी वर्ष में प्रजापति
सातवाहन ने 'अमरपुर' में भी किया है। डॉ. पीटर्सन के अनुसार
सातवाहन कुतल जनपद का अधिपति था जिसकी राजधानी
पैठण (प्रविष्ठमपुर) थी। अमरा जननाम 'अमर' अर्थात् अमरत्व का।
सकलवर्षी वसन्ती रानी की और दीपकम वसन्ता पिता का। वह शिवधर्म
का मित्र तथा शुचार्थ का आनन्ददाता था। 'गणपति' नामक एक
अभिधान माणिक्यर इन्द्रिय-कृत पूजा के संघर्ष में अमर (१५६) सत्र
१५५५-५६ और १५५७-५९ ईसवी का सुप्रसिद्ध है।

विषय वस्तु की दृष्टि से 'ग्रामा सभारती' वास्तव में स्वरूपपूर्ण कृति है। इस ग्रंथ में दृष्टिगोचरी भारतीय जीवन का चित्र अंकित है। इसमें मानवी प्रवृत्तियों एवं चरित्रों का निर्माण है। यह एक प्रकार से राष्ट्राधीन रीति-धीति तथा व्यापार-विचार का कोश-ग्रंथ है, जहाँ अविच्छिन्न जन-साधारण का ही जीवन प्रसार है। पसत-पामती

१. कोटिप (कोटिप), कुम्हारपुर, बज्जराबाद, हुमनासिक, लक्ष्मीनारायण और भीमपुर ।

॥ अविनाशिनमस्तु नमः ॥

विद्यया ऽपि विदुः ॥

हालिक-होलिक पत्नी, नन्दन-दुहिता, गृहिणी-गृहपति और प्रेमी-प्रेमिका के बीच की ग्रामीण उक्तियाँ चित्ताकर्षक होने के साथ-साथ तत्कालीन समाज की कसौटी भी हैं। इसमें प्राचीन भारतीय ग्रामों उनके निवासियों, उनके पारिवारिक जीवन की विशेषताओं-यथा, सभ्यता एवं सस्कृति का चित्रमय परिचय मिलता है। ऐसा लगता है कि इन्हीं को लक्ष्य कर इन गाथाओं की रचना हुई थी। कदाचित् इसी कारण, इसमें स्वभावोक्ति का स्पष्ट प्रमाण मिलता है जो 'शिष्ट समाज' द्वारा लाञ्छित होकर 'अश्लील उक्ति' तक कहलाकर प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ शृंगार-रस प्रधान है। इसमें विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। इसी प्रकार सयोग-वियोग के मनोहारी उद्गार भी प्रचुर मात्रा में सुलभ हैं। ये ग्रामीण मनोभाव परिमार्जित न होकर अपने प्रकृत रूप में हैं। इनका भीतर-बाहर एक समान है। इसी कारण यह ग्रंथ 'लोक-साहित्य' की तालिका में महत्त्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है। परवर्ती काल के कई कवि और लेखक इस ग्रंथ के भाव तथा शैली के श्रुणी हैं।

'गाथा सप्तशती' के सांस्कृतिक अध्ययन के लिए एक स्वतंत्र ग्रंथ अपेक्षित है। इस सन्दर्भ में प्रथम शतक की ४८वीं गाथा—

अण्णमहिंलापसङ्गं दे देव करेसु अम्ह दइअस्स ।

पुरिसा एक्कन्तरमा ण हु दोष गुणे विआणन्ति ॥

अर्थात् हे देव, हमारे प्रियतम के निमित्त दूसरी महिला की आसक्ति का विधान करो, नहीं तो पुरुष एकरस स्वादी हो जायेंगे एवं किसी के गुण-दोष को विशेष भाव से नहीं समझ पायेंगे।

इसकी सामाजिक व्याख्या करना नृतत्व विशारदों अथवा समाज-शास्त्रियों का विषय है। जहाँ तक अपना सम्बन्ध है इस सन्दर्भ में पाठकों का ध्यान मैं राजगृह के बुद्ध भक्त पूर्ण श्रेष्ठि की कन्या उत्तरा-वाली बौद्ध कथा^१ की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ जिसका विवाह अबौद्ध परिवार में हुआ था। फलस्वरूप चातुर्मास में वह न तो धर्म श्रवण कर सकती थी और न भिक्षु-भोजन करा पाती थी। एक

१ धम्मपद्, कोधवग्गो-३ तथा अट्टसाहिनी नाम धम्मसगणित्थकरणट्ट
कथा-३११

रिंग बसने अपने पिता के निष्ठ अपनी मनोव्यथा व्यक्त की जिसके फल में हमने पिता ने पन्द्रह हजार धर्मपत्र उसे इस दण्ड दिया कि वह इसे बेचकर अपने स्वाधी की बेखमाह के लिए सिरिमा अथवा श्रीमती पवित्रा को निष्ठ कर दे ।

इस प्रकार बचपन पन्द्रह रिंग के लिए श्रीमती को स्वनापम कर दिया । वह राजबैद्य तथा मन्त्राज अमात्य कीरक श्रीमन्मन्त्र की कनिष्ठ मंगली एवं बैरागी की मन्त्र-बन्धु अम्बिका की कन्या थी ।

परि वरपुत्र पटना सब है ता पिता द्वारा अपनी कन्या का कुछ सुखद रत्न बसभी सहायता करना और पत्नी का अपने पति के लिए पवित्र निष्ठ करवा गया था समझने में सहायक हो सकता है । यद्यपि मनोवैज्ञानिक अथवा मनश्चित सामाजिक मया से इस आचरण निबोधित नहीं आज पढ़ता फिर भी वह क्या एक परोक्ष सम्मान प्रस्तुत करती है ।



हिन्दी-गाथासप्तशती



प्रथम शतक

पशुवह्णो रोसारुणपडिमासंकंतगोन्मुह्यन्दं ।
गद्विभग्नपंकजं विभ संज्ञासलिलज्जलिं णमह ॥ १ ॥
[पशुपते रोपारुणप्रतिमासक्रान्तगौरी(मुखचन्द्रम् ।
गृहीतार्घपद्ममिव सध्यासलिलाञ्जलिं नमत ॥]

पशुपतिकी सध्या-सलिलाञ्जलिको नमस्कार करें—जिममें गौरीका (कितके ध्यानमें मग्न हो अञ्जलि प्रदानकर रहे हैं—इससे उत्पन्न) रोपारुण मुखचन्द्र सक्रान्त हुआ है, एवं इस कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो अर्घपद्म ही ले लिया गया है ॥ १ ॥

अमिभं पाउअकन्व पढिउं सोउं अ जे ण आणन्ति ।
कामस्स तत्ततन्ति कुणन्ति ते कहँ ण लज्जन्ति ॥ २ ॥
[अमृत प्राकृतकाव्य पठितु श्रोतु च ये न जानन्ति ।
कामस्य सत्त्वचिन्तां कुर्वन्तस्ते कथं न लज्जन्ते ॥]

जो अमृत सरीखे प्राकृतकाव्यका पाठ एवं श्रवण करना नहीं जानते वे कामकी सत्त्वचिन्तामें प्रवृत्त हो लज्जित क्यों नहीं होते ? ॥ २ ॥

सत्त सताइं कहवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि ।
हालेण विरइआइं सालङ्काराणँ गाहाणम् ॥ ३ ॥
[सप्तशतानि कविषत्सलेन कोटैर्मध्ये ।
हालेन विरचितानि सालङ्काराणां गायानाम् ॥]

अलङ्कारविभूषित गाथाओंकी कोटिमें से केवल सात सौ गाथाएँ जिन्हें कवित्रासह हाल ने प्रणीत किया था संगृहीत की गई हैं ॥ ३ ॥

हे शत्रु, शिशिर पशुने हमलोगोंके भ्रामके शोभास्वरूप उस पद्मपण्डको
छिप्रतिष्ठापनेके समान बना दिया है [वही ऐसा न हो कि सकेतस्थान
तिलक्षेत्रपर जार उपपत्ति हो] ॥ ८ ॥

किं रुभसि ओणअमुही घवलाधन्तेसु सालिछित्तैसु ।

हरितालमण्डितमुही णटि ध्व सणवाडिआ जाता ॥ ९ ॥

[किं रोद्विषयननगुसी घवलायमानेषु सालिछेत्रेषु ।

हरितालमण्डितमुही नटीय दणवाटिका जाता ॥]

पके हुए सालिछेत्रोंके सफेद दिलायी पक्षनेपर तुम मुण्डको नाचे कर रो
षणों रही हो ? पीतपुष्पमयित दणवाटिका (तो) हरिताल द्वारा मण्डित-
घटना नटीकी नाई दियायी हो पक्ष रही है ॥ ९ ॥

सद्धि ईरिसिचित्रअ गई मा रुधसु तंसवलिअमुदभन्द ।

पआणँ चालवालुद्धितन्तुकुडिलानँ पेम्माण ॥ १० ॥

[सद्धि ईदृश्य गतिमां रोदीस्तिर्यगलितमुपचन्द्रम् ।

पतेपां पालवर्षटीतन्तुकुडिलानां प्रेम्णाम् ॥]

हे मणि, शिष्टकंकटिका-तन्तुभी ही नीति प्रणयकी गति कुटिल होती है
(अतः) अपने सुवचन्द्रको तिरछा कर रादन मन करो ॥ १० ॥

पाअपडिअमस पइणो पुट्टि पुत्ते समारहत्तम्मि ।

इदमण्णुदुण्णिआपे वि द्वासा वरिणापे णेक्कन्तो ॥

[पाअपडितस्य पयु पृष्ठ पुत्रे समारहति ।

इदमण्डूनाया अपि हासो गृहिण्या निष्क्रान्तः ॥]

पैरोंपर गिरे हुए पतिकी पीठपर पुत्रको पड़ते हुए देखकर, कोपके कारण
आपन्न दुःखित गृहिणी (के मुँह) से भी हँसी फूट पड़ी ॥ ११ ॥

सच्चं जाणइ दट्ठु सरिसम्मि जणम्मि जुज्जप राओ ।

मरउ ण तुमं भणिस्स मरण वि सत्ताहणिज्जं से ॥

[सत्य जानाति वृष्टु मरुते जने युज्यते रागः ।

म्रियतां न त्वां भणिष्यामि मरणमपि श्लाघनीय सत्या ॥]

हमारी सखी सत्य ही देवना जानती है कि सदृश जनोंमें ही असुराग
उपयुक्त होता है । उसे मरने दो, मैं तुमसे उस (के जीवन) के विषयमें कुछ
नहीं कहूँगी, उसकी मृत्यु भी श्लाघनीय है ॥ १२ ॥

[पश्यति सोऽपि प्रोषितोऽह च कुपिष्यामि सोऽप्यनुनेष्यति ।

इति कस्या अपि फलति मनोरथानां माला प्रियतमे ॥]

प्रोषित वे भी लौट आयेंगे, मैं भी कोप-प्रदर्शन करूँगी एवं वे भी अनुनय करेंगे। प्रियतमके सवधमें इस प्रकारके मनोरथ समूहोंकी माला किसी आशयशतीको ही फलवती होती है ॥ १७ ॥

दुर्गाभकुटुम्बअट्टी कहँ णु मए घोइणण सोढव्या ।

दसिओसरन्तसलिलेण उमह रुणण च पडण ॥ १८ ॥

[दुर्गाभकुटुम्बाकृष्टि कथं नु मया धौतेन सोढव्या ।

दक्षापमरमलिलेन परपत रुदिनमिव पटकेन ॥

‘घोए जाने पर मैं दुर्गाभकुटुम्बगण द्वारा किये हुए आकर्षणको किस प्रकार सहूँगी—मानो ऐसा ही कहकर वस्त्रखण्ड प्रान्तभाग से विगलित जलके छुछसे रोदनकर रही है ॥ १८ ॥

कोसँम्यकिसलअवण्णअ तण्णअ उण्णामिपहिँ कण्णेहिँ ।

हिअअट्टिअं घरं वञ्चमाण धवलत्तणं पाव ॥ १९ ॥

[कोशाभ्रस्मिलप्रयणं क तर्णक दक्षामिताम्यो कर्णाभ्याम् ।

हृदयस्थित गृह मज्जनधवलत्तय प्रामुहि ॥]

हे उन्नमित-कर्ण वरस, कोप विनिर्गत-भ्रात्रकिसलयका घर्ण तुम धारणकर रहे हो—तुम अपने हृदयाभिलषित गृहमें प्रविष्ट हो धवलता प्राप्त करो ॥ १९ ॥

अलिअपसुत्तअ विणिमीलिअच्छ दे सुहअ मज्झ ओआस ।

गण्डपरिउम्यणापुलइअह्ण ण पुणो चिराइस्सं ॥ २० ॥

[अलीकप्रसुप्तक विनिमीलिताश्च दे सुभग समापकाशम् ।

गण्डपरिचुम्बनापुलकितान् न पुनश्चिरयिष्यामि ॥]

हे सुभग, अलीकनिद्रामं नयनोंको निमीलित करनेपर भी तुम अपने गण्डचुम्बनपर पुलकितान् होते हो, शय्यापर मुझे स्थान दो, मैं अब ऐसी देर नहीं करूँगी ॥ २० ॥

असमत्तमण्डणा विअ चञ्च घरं से सकोउहल्लस्स ।

घोलाविअहलहलअस्स पुत्ति चित्ते ण लगिहिंसि ॥ २१ ॥

[असमाप्तमण्डनैव यज गृह सम्य सकौतूहलस्य ।

व्यतिक्रान्तौसुख्यस्य पुत्रि चित्ते न लगिष्यसि ॥]

कम ओरुदवाधालके वा लज्जापदे हो हुन विवा हो खेप को—
हे पुत्रि, यदि जसकी जानुपना दूर हो जाय को ॥ गणका हे कि तुम्हें बल्ले
चित्तमें रहान न मिले ॥ ११ ॥

आमदपयामिसाहु अयद्विधजाने आसद्विधजिहार्त्त ।

अकपयिमनुष्यमुद्विष्ट लीए परिउद्वय मरिमा ॥ १२ ॥

[आदरज्जानिनीहुमवद्विधवापमर्दहनकपयम् ।

अर्धवृत्तिसमुत्पन्नरायम् परिशुभर्व रमात्मा ॥]

अर्धवृत्तिस वृत्तता रिउमुनी कम रज्जवला रज्जुके वरिमुत्पन्नका
रमात्त करता हूँ जिसके लिए हमने आदरपूर्वक ओर तुम्हा किया था । कम्प
अर्धवृत्तके जसके वासिकको अर्धवृत्त नहीं दिया एवं रज्जुका लक्ष्य को
नहीं किया ॥ १२ ॥

अप्यासभार्हे देन्ती तद् सुर्य हरिसपिर्मसिधकबोला ।

गाछे पि लोचनमुही अह सेपि रिम्यं व सद्दिमो ॥ १३ ॥

[आकाशगति दृष्टी कथा सुखे अर्धवृत्तिसिधकबोला ।

आदरज्जवमकहुनी एवं सेकि रिम्यं व अद्विमा ॥]

सुराके जसके अर्धके पुत्रजिनकीका होकर विद्यमानके अर्धके लोचनों
आकाश देवताकी वासिका हो आका होवेर जसकेपुत्री हो करी है—वह
विवाह नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १३ ॥

विमविच्छो अविमर्शसर्त्तं व तदभार्हे हो पि पुत्रभार् ।

लीर्ये तुमं कारिज्जधि लीर्ये वमा आदि अर्धर्ये ॥ १४ ॥

[विमविच्छोअविमर्शसर्त्तं व तुम्हें हे वमि पु के ।

वमा त्वं अर्धर्ये वमि वम अविमर्शर्ये ॥]

विमर्शका लिए एवं अविमर्शका अर्धर्य—वै दोषी हो अहम् हु कहे
अहम् हैं—तब भी तुम जिस भाव की वीर्या के कार्य करके हो कभी वासि-
कात्तकी वमकार करती हूँ ॥ १४ ॥

यकां पि अहधारी प्य वैर गन्तुं पञ्चाद्विधवसन्तो ।

किं वम वाहावसिधं लीमज्जुमर्त्तं विमवमप्य ॥ १५ ॥

[एकोअवि कृष्णगतो व द्वावि गन्तुं अर्धर्यं वम् ।

किं अहधारीपि अहधारी विमवमप्य ॥]

एक कृष्णसार मृग ही प्रदक्षिणभावसे चलनेपर लोगोंको जाने नहीं देता—
प्रियतमाके धापाकुलित दो लोचन किस प्रकार जाने देंगे ? ॥ २५ ॥

ण कुणन्तो विव्र माणं गिसासु सुहसुत्तदरविबुद्धाणं ।
सुण्णइअपासपरिमूत्तणवेअणँ जइ सि जाणन्तो ॥ २६ ॥
[नाकरिप्य एष मान निघासु सुखसुत्तदरविबुद्धानाम् ।
शून्यीकृतपार्श्वपरिमोषणवेदनां यद्यज्ञास्य ॥]

रात्रिमें सुखसे सोनेवाले व्यक्तियोंमें से कुछ कुछ जागे हुए की शून्यीकृत
पार्श्वजनित वेदना यदि तुम जानते तो अपने अपराधको छिपानेके लिए
मान न करते ॥ २६ ॥

पणअकुविआणँ दोह्व वि अलिअपसुत्ताणँ माणइल्लाणं ।
णिच्चलणिरुद्धणीसासदिण्णरुण्णाणँ को मल्लो ॥ २७ ॥
[प्रणयकुपितयोर्द्वंद्वोरप्यलीकप्रसुप्तयोर्मानवतो ।
निश्चलनिर्द्वनि आसदत्तकर्णयोः को मल्ल ॥]

प्रणयकुपित, मिथ्यानिद्रित, मानयुक्त दम्पति जब निश्वासका निरोधकर
निश्चलभावसे एक दूसरेके निश्वास शब्दपर कान लगाये रहते हैं, तब इन दो
के बीच कौन अधिक समर्थ होता है ? ॥ २७ ॥

णवल्लअपहरं अक्के जेहिँ जेहिँ महइ देवरो दाउं ।
रोमअदण्डराई तहिँ तहिँ दीसइ यहए ॥ २८ ॥
[नवल्लताप्रहारमक्के यत्र यत्रेच्छति देवरो दातुम् ।
रोमाक्षदण्डरान्निस्तत्र तत्र दृश्यते वज्रा ॥]

नायिकाके अङ्गके जिन जिन स्थानोंपर देवर लता द्वारा प्रहार करनेका
इच्छुक है, वधूके उन उन स्थानोंपर रोमाक्षकण्टकराजि दिखायी पड़ती है ॥ २८ ॥

अल्ल मए तेण विणा अणुहुअसुहाई संभरन्तीए ।
अहिणवमेहाणँ रवो गिसामिओ षजअपढ्हो व्व ॥ २९ ॥
[अथ मया तेन विना अनुभूतसुखानि सस्मरन्त्या ।
अभिनवमेघानां रवो निशामितो वध्यपटह इव ॥]

उसके विरहमें आज मैं पूर्वानुभूत सुखरानिकी भाँति यादकर नव मेघबुन्द
की चबुकी वध्यपटह-शब्दके रूपमें सुनती हूँ ॥ २९ ॥

विहितं ब्राह्मणाय नमः । इति सप्तमः अध्यायः ।

नामो ग्यम विष्णवे नमः कथं तद् वि शङ्कामाह ॥ ३ ॥

[विष्णु-साम्बाजीयक इति-संज्ञा विष्णुसाम्बाजीयक]

સાચી સાધના કરવા તથા તેને સચાચ કરાવવાને ॥ ૧

हे प्रसन्नवाचकपुत्र, तुम निर्द्वैत पूर्व आत्माधीन हो तुम्हारा दर्शन प्राप्त हुआ है, तुम दिग्विजय-महल प्रकृत समधीन आत्मक हो, तुम्हारे निष्कामाचार पूर्व पूर्वक होना बका का रहा है ॥ ३ ॥

वाहरयजमन्वयसिद्धम् आम्बु रिण्डेय बह्व ॥ विर ।

असमिहस्य वरे पापी उभ स्या सुखं सुखं ॥ ११ ॥

(कर्मकाण्डप्रारम्भे आया इत्येव कथने इत्यत्र विद्यते ।

प्राजपतीपुत्रस्त्योति नदी शुभा सा सूर्य वसतिवि ।

आमनीपुराण शास्त्रग्रन्थस्य अष्टाध्यायिक-व्याख्यानके अथ अष्टमी
 आथा अष्टम्य कथमे विद्यालोक कथ्यते । किन्तु, महाराष्ट्रमा एतत् व्यवहारं
 विपश्चिन्तायां कथी कथी कथ्यते लोकी । ॥ ३.१.४ ॥

धर संश्रुतिममनो सुखम तप केन नरैः सिध्यति ।

पङ्क्तिं द्विजयः क्षण्यं क्षण्यं क्षण्यं क्षण्यं क्षण्यं क्षण्यं ॥ १२ ॥

[कर्म संवर्धनार्थं साधकः स्वयं चैव विप्रसक्तः]

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के अन्तर्गत :]

हे तुमने देखा तुमने जाना किन लोगोंने हम का अपमान किया है—
आज हम लोगों के हाथों में एक चादर बिखाली पड़ना है और हममें सब भाव ।

बडौर बीससन्ता विधि माह परम्परापूर्ण सभजदे ।

द्विमासं पञ्चाशिभ्य वि कञ्जसायन एङि पञ्चाशेति ॥ ३३ ॥

[कल्याणि वि भवन्मिति नाम कल्याणव्याः कल्याण्ये ।

इदं सर्वं ब्रह्मविद्यायां योगयोगः कथ्यते ॥ १॥

कन्याके लक्ष्मीवर्णमें हैं। पराशुराम की कन्या हैं। कम भी तुम बचविनायक
लालचम अनुकरणसे मेरी कृपासे लक्ष्मीवर्ण कराती हुई होकर भी मेरी दुर्दैवकी
प्रतिष्ठा कराती हो ? ॥ ३३ ॥

हृदय विषय विरमार्जन विमर्श विषयव्यवहारमन्त्रालय ।

पञ्चाभिहण्यन न मुनेन क्वचि विना न यत्ता ॥ १४ ॥

[तस्य विरहे विरकारक तरया निपतद्वाप्यमलिनेन ।

रविरथशिगरस्वजेनेव मुग्धेन पद्यायैव न प्राप्ता ॥]

हे विलम्बकारक, तुम्हारे विरहमें निपतित वाप्यद्वारा मलिन उसका मुख
छायाका अवलम्बन नहीं करता, उसी प्रकार जिस प्रकार मूँचके रथके निगरपर
स्थित प्यजा छायाको नहीं प्राप्त होती ॥ ३४ ॥

दिमरस्स असुद्धमणस्स कुलउट्ठ णिअवकुड्डन्तिदिआहं ।

दिअहं कदेह रामाणुल्लगसोमिच्चिचरिआह ॥ ३५ ॥

[देवरस्याद्युद्धमनसं पृथक्पृथग्निजकुलवल्गितानि ।

दिवसं कथयति रामानुल्लगसौमित्रिचरितानि ॥]

दूषित चित्त देवरक निष्कट कुलपथू अपनी भित्ति पर चित्रित या छिरित
रामानुरक्त सुमित्रानन्दनके चरितको दिनभर वर्णन करती है ॥ ३५ ॥

चत्तरघरिणी पिअदंसणा अ तरुणी पउरयपइआ अ ।

असई सअज्जिआ दुग्गआ अ ण हुरण्डिअ सीलं ॥ ३६ ॥

[चत्तरगृहिणी प्रियदर्शना च तरुणी प्रोपिगपसिका च ।

अमतीप्रतिवेशिनी दुर्गमा च न राघु खण्डित सीलम् ॥]

चौराहेपर जिसका घर हो, फिर भी जो स्त्री प्रियदर्शना हो, जो स्त्री स्वयं
तरुणी हो, फिर भी जिसका पति प्रवासी हो, एवं अमती कामिनी की सह-
वासिनी होकर भी जो दरिद्रा हो—इस प्रकारकी नारियों का चरित भी
खण्डित नहीं होता (अर्थात् वर्य होता है) ॥ ३६ ॥

तालूरममाउलखुडिअकेसरो गिरिणईएँ पूरेण ।

दरखुड्डउखुड्ढणियुद्धमहुथरो क्षीरइ कलम्भो ॥ ३७ ॥

[जलावर्तभ्रमाकुलखण्डितकेसरो गिरिनद्या पूरेण ।

दरमप्रोन्मप्रनिमप्रमधुको द्विपते कदम्ब ॥]

गिरि-नदी के अल प्रवाह में कदम्ब वृक्ष दूध रहा है, उसका केसर-समूह
जलावर्त के भ्रम से आकुल हो खण्डित हो रहा है एवं हममें नौरे कमी
ईषन्मप्र, कमी उन्मप्र एवं कमी निमप्र हो रहे हैं ॥ ३७ ॥

अद्वियाअमाणिणो दुग्गअस्स छाहिं पिअस्स रक्खन्ती ।

णिअयन्धवाणं जूरइ घरिणी चिह्वेण पत्ताणं ॥ ३८ ॥

यह तो निश्चय है कि कार्यागमकारीको लक्ष्मीलाभ हो सकता है, मृत्यु भी हो सकती है, किन्तु यह मृत्यु तो कार्यागम रूप बिना भी हो जाती है तथापि लक्ष्मी बिना आरम्भ रूप उपस्थित नहीं होती ॥ ४२ ॥

विरहाणलो संहिज्जद् आत्मावन्देण चल्लहज्जणम्स ।

एकग्रामपत्रासो माए मरणं विम्मेसेइ ॥ ४३ ॥

[विरहाणल सद्यत आत्मावन्देन चल्लहज्जनरय ।

एकग्रामप्रवासो मातर्मरण विशेषयति ॥]

प्रियजनों का विरहाणल आशाके कारण सहन किया जाता है, किन्तु, हे मात, एक ही ग्राममें वास करनेके कारण यदि प्रवास हो जाय तो यह मृत्युसे भी बढ़कर है ॥ ४३ ॥

अकम्पदइ पिमा द्विअ अण्णं महिलावणं रमन्तस्स ।

दिट्ठे सरिस्सम्मि गुणे असरिस्सम्मि गुणे अईमन्ते ॥ ४४ ॥

[आस्त्रलति प्रिया हृदये अन्य महिलाजन रममाणरय ।

इष्टे सहसो गुणे असदृश गुणे अदृश्यमाने ॥]

अन्य महिलाओं के साथ रमण करनेवाले हृदयके सदृश गुण दिवायी पड़नेपर भी असदृश गुण दिखोपर प्रिया जाग उठती है ॥ ४४ ॥

णइऊरमच्छदे जोव्वणम्मि अएपवसिएसु दिथसेसु ।

अणिअत्तासु अ राईसु पुत्ति किं दह्ममाणेण ॥ ४५ ॥

[नदीपरमरशे यौवने अनिमोषितेषु दिथसेषु ।

अनिवृत्तासु च रात्रिषु पुत्रि किं दग्धमानेन ॥]

नदीकी यादकी मूर्ति यौवन अवस्थागी है, दिन चोत्तते जाते हैं एवं रात भी अथ लौटकर नहीं आयेंगी । हे पुत्रि, दग्धमान द्वारा क्या मिलेगा ? ॥ ४५ ॥

कलं किल खरद्विअणो पवसिइद्धि पिथोत्ति सुण्णइ जणम्मि ।

तद्ध यद्ध भयवद्दि णिसे जह्म से कलं विअ ण होइ ॥ ४६ ॥

[कस्य किल खरद्विअणो पवस्यति प्रिय इति श्रूयते जने ।

तथा यधस्व भगवति णिसे यथा तस्य कस्यमेव न भवति ॥]

ऐसा सुना जाता है कि मेरा क्रूरहृदय प्रियतम प्राप्त ही प्रयासार्थ जायेगा, हे निशादेवि, तुम इस प्रकार बड़ जाओ कि प्राप्त ही न हो ॥ ४६ ॥

होन्तपदिमस्त आभ्य भाद्रपक्षवर्गीयवात्परहस्त ।

पुष्पम्वी धमर धरं धरेण विजविरहसहिटीया ॥ ४१ ॥

[पदिमस्तमिहस्य आभ्य भाद्रपक्षवर्गीयवात्परहस्तम् ।

पुष्पम्वी धमरि धूरं धूरेण विजविरहसहसहीकम् ॥]

अभिन्नमे प्रवक्ष्यामहेषु अक्षिणी नामा, नर-नर वृन्तम विहर्षिते कल्प
प्रत्य-वात्य धरेणैवा रहस्य कनके दृष्ट रही है किन्तु विषय विरह कल्प
किया है ॥ ४१ ॥

यन्धमदिसावसर्गं वे रेव धरेषु मय्य दाम्भ्यस ।

पुरिषा यक्षन्तरस्य न ह्य वापगुणे विषयमस्ति ॥ ४८ ॥

[यन्धमदिसावसर्गं वे रेव धूर्यस्यार्थं एभिन्नम् ।

पुरिषा यक्षन्तराया न कस्य रोचतुमी विज्ञातमि ॥]

हे रेव, हमारे विषयनके विविध दृष्टी मदिषाकी अक्षिन्न विज्ञान की,
वही तो पुरुष यक्षन्तराया ही कहेंगे एवं किसीके रोच तथा गुणको विज्ञान
कामके नहीं समझ कहेंगे ॥ ४८ ॥

यामं वि न वीक्ष्यते मय्यप्येव च सदीपतस्तुम्हा ।

आनन्दमयन कुरै वि पदिम ता कि न वीक्ष्यमसि ॥ ४९ ॥

[वीक्ष्यमसि न विज्ञासि आनन्दे रस्य जरीतकहीया ।

आनन्दमयन प्युत्पत्ति वदिक तमिह न विज्ञातमि ॥]

हे वदिम, कन्याहमें दूरके कनके कन्या की करीबमें दिन जाती है
बाहर नहीं किन्तुही, अथ हमारे वहाँ तुम की विज्ञान नहीं नहीं करते ॥ ४९ ॥

सुहृदप्यर्धं धर्मं पुनर्धं वि वृत्ति मय्य व्यक्तम् ।

अनन्तरम अर जीर्णं वि चेन्ना न्य कम्पयप्राप्तसि ॥ ५० ॥

[सुहृदप्यर्धं धर्मं पुनर्धमसि वृत्तिरस्य व्यक्तम् ।

अनन्तरम अर जीर्णमसि अनन्त कृपाकावोदधि ॥]

हे नरा तुम्हें भी कल्प वया अनन्तर किया । दूरसे दूरसे सुहृदप्यर्ध
पुनर्धम कनको हमारे विरह आनन्द तुम यदि हमारे कामकी की है या कनके
की की तुम्हें नपराकी नहीं कहूँगी ॥ ५० ॥

आमन्त्रो मे मन्त्रो मन्त्रो न्य मन्त्रो व्यक्तम् च तन्ती ।

सुहृदप्यर्धं सुहृदं सुहृदं न्य मन्त्रो व्यक्तम् च तन्ती ॥ ५१ ॥

[आमोज्वरो मे मन्दोऽथवा न मन्दो जनस्य का चिन्ता ।

सुखपृच्छक सुभग सुगन्धगन्ध मा गन्धितां स्पृश ॥]

हे सुखजिज्ञासाकारिन्, हे सुभग, हे सुगन्ध गन्ध युक्त, मेरा आम ज्वर मन्द है अथवा अमन्द इस विषयमें ससारको चिन्ता क्यों है ? तुम ज्वर की गन्धसे युक्ताको मत छूना ॥ ५१ ॥

सिद्धिपिच्छलुलितकेसे वेवन्तोरु विणिमीलितद्वच्छि ।

दरपुरिस्तादरि विसुमरि जाणसु पुरिस्ताणं जं दुःखं ॥ ५२ ॥

[सिद्धिपिच्छलुलितकेसे वेपमानोरु विमिमीलितार्धाक्षि ।

ईपत्पुरुपायिते विश्रामशीले जानीहि पुरुषाणां यद्दुःखम् ॥]

हे ईपत्पुरुपायित कार्यमें विराम करनेवाली, तुम्हारे केश मयूरपुच्छके समान लुलित हैं, तुम्हारे ऊरुद्वय कम्पमान हैं एवं तुम्हारी आधी आँख विशेष भावसे मुँही हुई दिव्यती है । समस्त छो पुरुषों को कितनी पीड़ा है ॥ ५२ ॥

पेम्मस्स विरोहिअसंधिअस्स पच्चन्वदिट्ठविलिअस्स ।

उअअस्स च ताविअसीअलस्स विरसो रसो होइ ॥ ५३ ॥

[प्रेम्णो विरोधितसंधितस्य प्रत्यक्षः पृथ्वलीकस्य ।

उदकस्येव तापितशीतलम्य विरसो रसो भवति ॥]

जो प्रेम पहले विच्छिन्न होकर घाद में सन्धानयुक्त होता है, एवं जिन प्रेम में अपराध प्रत्यक्षतः दिखायी पड़ रहा है, उस प्रेमका रस पहले गरम किये और घाद में ठण्डे किये हुए जलकी भाँति विरस हो जाता है ॥ ५३ ॥

वज्जवडणाहरिकं पइणो सोऊण सिज्जिणीघोसं ।

पुसिआइं करिमरिणं सरिसवन्दीणं पि णअणाइं ॥ ५४ ॥

[वज्रपतमातिरिक्त पश्यु श्रुत्वा क्षिप्रिणीघोषम् ।

प्रोच्छिन्नानि यन्त्रा सहस्रवन्दीनामपि नयनानि ॥]

वज्रपातके घाद की अपेक्षा अधिक गम्भीर स्वामीके धनुष टकार शब्द को सुनकर यन्त्री अपने जैसे अन्य यन्त्रियोंके नयनोंको पोंछ दे रही है ॥ ५४ ॥

सहइ सहइ त्ति तह तेण रामिआ सुरअदुव्विअद्धेण ।

पम्माअसिरीसाइं च जह से जाआइं अंगाइं ॥ ५५ ॥

[सहते सहत इति तथा तेन रमिता सुरतदुर्विदग्धेन ।

प्रम्लानक्षिरीपाणीव ययास्या जातान्यद्भानि ॥]

सदय कर रही है, करण कर रही है इस प्रकार सुरलक्ष्मणमें दुर्भिक्ष
 यह करणलाभिका बुझी हुआ इस प्रकार समित होती है कि उक्तं वाङ्मय
 विरोधबुझकी भावि हो गई है ॥ ५५ ॥

अथविमसेसहृष्याभा वाक्काय बीजोपलोममञ्जाभा ।

अहं सा भगव विद्यामुद्रपसारिमञ्जी तुह्य कण्य ॥ ५६ ॥

[अथवितादीरपुत्रा वाक्काय अथिक्कायकोकमञ्जाभा ।

अथ सा अमति विद्यामुद्रपसारिताकी उर कुनेय ॥]

हे शङ्कर, अब वाक्काय पुत्रकीनी गन्धा नहीं कराती केवल तुम्हारे
 अन्तेन्दमें दोषमञ्जा की वाक्काय दिव्यकी ओर केव प्रसारित कर दूँ
 रही है ॥ ५६ ॥

कटिमरि मय्यस्यगच्छिच्छस्यसमिपडनपडिरथो यथा ।

परमो यशुरव्यक्तिरि रोम्यं कि मुद्रा यद्यसि ॥ ५७ ॥

[कटि अथकायकोकमञ्जाभाकमिक्कायकटिरथ ५७ ।

अथकटिरथकायकोकमञ्जाभा कि मुद्रा यद्यसि ॥]

हे कटि, जो तुम रही हो यह तो अथकाय कोकमञ्जाभा केव अथमिक्काय
 की प्रतिप्रमिता है । हे कटि, जो अथकाय केव अथकाय की प्रतिप्रमिता,
 अथ ही रोम्यको नहीं कहन कराती हो ॥ ५७ ॥

अथकटि पडत्यो उज्जागरथो अथस्य अथो य ।

अथो य इतिहापिड्यारं कोलावरतहारं ॥ ५८ ॥

[अथो योति अथकायको कथकायको कथकायको ।

अथो य इतिहापिड्यारं कोलावरतहारं ॥]

आज ही (मेरा वरि) अथकायमें गया है आज ही अथकायको कथकाय
 हुआ है एवं आज ही कोलावरतहार अथो य इतिहापिड्यारं हुआ है ॥ ५८ ॥

अथरिसचित दिनेर तुह्यमया पिथममे विसमन्तीजे ।

य कथर तुह्यमविह्वलमपण लघुभाज्यर सीद्धा ॥ ५९ ॥

[अथरकटि केव अथकाय पिथममे विसमन्तीजे ।

य कथर विह्वलमपण लघुभाज्यर सीद्धा ॥]

कथकाय वरि पिथममे अथ ही अथकाय विह्वलमपण अथो य अथो य अथो य

वेत्ता न धूने अत्यन्त त्रिपम स्वभाव वाले पतिमे कुछ कहा नहीं, फिर भी यह
हम होती जा रही है ॥ ५९ ॥

चित्ताणिददहसमागममि कवमण्णुआरं भरिऊण ।

सुण्णं कलहायन्ती सहीहिं रुण्णा ण ओहसिआ ॥ ६० ॥

[चित्तानीतद्विषयसमागमे कृतमन्युकानि स्मृत्वा ।

शून्य कलहायमाना मन्वीभी रुदिता नोपहसिता ॥]

चित्तमें आनीत प्रियतमका समागम होनेपर उसके अपने प्रोचके कारणोंको
यादकर घृणा कलहकारिणी होनेपर अन्य सखियों उसके लिए रोती ही हैं,
उसका उपहास नहीं करती ॥ ६० ॥

द्विअवण्णएहिं समअ असमत्ताइं पि जह सुहावन्ति ।

कज्जाइं मणे ण तद्वा इअरेहिं समाचिआइं पि ॥ ६१ ॥

[हृदयजं समसत्समाप्तान्यपि यथा सुगम्यन्ति ।

कार्याणि मन्ये न तथा हृतरं समापितान्यपि ॥]

मुझे प्रतीत होता है कि हृदयज पुरुषोंके साथ जचरितार्थ कार्यकलाप
जितना सुखदायक होता है, अहृदयज पुरुषोंके साथ चरितार्थ कार्यकलाप भी
उतना सुखदायक नहीं होता ॥ ६१ ॥

दरफुडिअसिप्पिसपुडणिलुक्कहालाहल्लगळेप्पणिहं ।

पक्खम्वट्टिविणिग्गअकोमलमम्बुजुरं उअह ॥ ६२ ॥

[ईसल्लफुटिनशुक्किमम्बुटनिलीनहालाहल्लप्रपुच्छनिमस ।

पक्खाम्बुटिविनिगंतकोमलमात्रादुर पश्यत ॥]

पके हुए आमसे निकले हुए इस अकुरको देखो । यह जैसे ईपत् स्फुटित
शुक्किमपुटमें निलीन हलाहल्लके अग्रपुच्छ सी दिशायी पड़ती है ॥ ६२ ॥

उअह पडलन्तरोद्धण्णणिअतन्तुद्धपाअपडिल्लगं ।

दुल्लभसुत्तगुत्थेक्कवउल्लकुसुमं च मक्कडअ ॥ ६३ ॥

[पश्यत पटलान्तरावतीर्णनिजकतन्तुर्ध्वपादप्रतिलम्बम् ।

दुर्लभसूत्रप्रथितैक्यकुलकुसुममिव मकंटकम् ॥]

पटलके अन्तरमे विलसित अपने तन्तुके ऊर्ध्वपादमें प्रतिलम्बन मकंटकको
देखो । यह दुर्लभ सूत्रमें प्रथित एक यकुलकुसुम सा लक्षित हो रहा है ॥

उअरि दरदिट्ठथण्णुअणिलुक्कपारावआणं विरुपहिं ।

णित्थणह जाअरेवेअणं सूलाहिणं च देअउत्तं ॥ ६४ ॥

आयन्त सधेरे पूर्णिमाका चन्द्र, अवसानपर रमण्य कामना एव सप्रदान-
रहित परितोष, जिम प्रकार शोभा नहीं पाते, उसी प्रकार उत्सव उपस्थित हो
जानेपर ही शोभा नहीं पढ़ जाती ॥ ६८ ॥

पाणिग्रहणे विवश पच्यर्षेणाथं सहीहि सौहृगं ।
पशुपद्मणा वासुकिङ्कणमि ओसारिष दूरं ॥ ६९ ॥
[पाणिग्रहण एव पार्श्वया ज्ञात सस्त्रीभिः सौभाग्यम् ।
पशुपतिना वासुकिङ्कणेऽपसारिते दूरम् ॥]

पाणिग्रहणके ही समय पशुपतिको वासुकिरूप कङ्कण दूर करते देख
सन्निधौने पार्वतीका सौभाग्य जान लिया ॥ ६९ ॥

गिह्ये दवग्निमस्मिदलिआई दीसन्ति विजसिहराई ।
आससु पउत्यवश्य ण होन्ति णवपाउसन्माइ ॥ ७० ॥
[ग्रीष्मे दवाग्निमयीमलिनितानि दृश्यन्ते विन्ध्यशिखराणि ।
आश्वतिहि प्रोषितपतिके न भवन्ति नवप्रावृद्धाणि ॥]

हे प्रोषितपतिके, आश्वरुन हो जाओ, ग्रीष्मकालमें दावानलकी मसिद्वारा
मलिनित वे विन्ध्यशिखर समूह दिखायी पड़ते हैं, वे नववर्षाकी मेघमाला
नहीं हैं ॥

जेत्तिअमेत्तं तीरद णिवोदु देसु तेत्तिअं पणअं ।
ण अणो विणिअत्तपसाअदुप्पन्नसहणक्खमो सव्वो ॥ ७१ ॥
[यावन्मात्र दास्यते निर्वोदु देहि तावन्त प्रणयम् ।
न जनो विनिवृत्तप्रसाददुःखसहनक्षम सर्व ॥]

जितना प्रणय निःशेष भावसे वहन किया जा सकता है, उतना ही
प्रणय दो । कारण, प्रसादविनिवृत्त होनेपर तज्जनित दुःख सहनेमें सभी समर्थ
नहीं होते ॥ ७१ ॥

बहुवल्लहस्स जा होइ वल्लहा कइ वि पञ्च दिअहाई ।
सा किं छट्ठं मग्गइ कत्तो मिट्ठं व बहुअं अ ॥ ७२ ॥
[बहुवल्लभस्य या भवति वल्लभा कथमपि पञ्च दिवसानि ।
सा किं पट्ठं मृगयते कुतो मृष्ट च बहुक च ॥]

जो नायक अनेक प्रियाओंको अनुगृहीत करता है, उसकी ओ कोई प्रिया
हो वह पाँच दिन तक ही उसकी परीक्षा करती है । वह क्या छठे दिन तक

[स्कन्धाग्निना घनेषु तृणैर्ग्रामे रक्षित पथिक ।

नगरोपि न खेद्यते सानुशयेनेव शीतेन ॥]

जो पथिक वनोंमें स्थूल काष्ठानि द्वारा एव ग्रामोंमें तृण द्वारा शीतसे अपनी रक्षा करता है वह नगरमें वास करने आकर अनुशययुक्त शीत द्वारा जैसे खिन्न हो रहा है ॥ ७७ ॥

भरिमो से गहिआहरधुअसीसपहोलिरालआउलिअं ।

वअणं परिमलतरलिअममरालिपइण्णकमलं व ॥ ७८ ॥

[स्मरामस्तस्या गृहीताघरधुतशीर्षप्रघूर्णनशीकालकाकुलितम् ।

वदन परिमलतरलितममरालिप्रकीर्णकमलमिव ॥]

सुम्भनार्थ अघर गृहीत हो जानेपर, शीर्षकम्पनके साथ एव कुण्डलघूर्णनसे आकुलित उसका मुख स्मरण करता हूँ, मानो वह परिमलके लोभसे तरलित अमरकुलद्वारा प्रकीर्ण एक कमलके समान दिखायी पड़ा था ॥ ७८ ॥

दल्लफलण्ढाणपसाहिआणं छणवासरे सवत्तीणं ।

अज्जाएँ मज्जणाणाअरेण कहिअं व सोहग्गं ॥ ७९ ॥

[उत्साहतरलत्वज्ञानप्रसाधितानां छणवासरे सपत्नीनाम् ।

आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥]

उत्सवके दिन उत्साहचाञ्चल्यमें ज्ञानद्वारा प्रसाधित सपत्नियोंके निकट केवल उस आर्याने ही मज्जनमें अनादर दिखाकर अपना सौभाग्य सूचित किया है ॥ ७९ ॥

द्वाणदलिद्दामरितान्तराईं जालाईं जालवलअस्स ।

सोदन्ति किलिअ्विअकण्टपण कंकाहिस्सी कअत्थं ॥ ८० ॥

[ज्ञानहरिद्रामरितान्तराणि जालानि जालवलयस्य ।

शोधयन्तो नृद्रकण्टकेन क करिष्यसि कृतार्थम् ॥]

ज्ञान हरिद्रासे भरितान्तर तुम्हारा केशसम्भार्जनीके जाकोंको नृद्र वृक्षकण्टक द्वारा शोधित कर तुम किस सौभाग्यवान्को कृतार्थ करोगी ॥ ८० ॥

अहंसणेण पेम्मं अवेइ अइदंसणेण वि अवेइ ।

पिसुणजणजम्पिण वि अवेइ एमेअ विअवेइ ॥ ८१ ॥

[अदर्शनेन प्रेमापैत्यसिद्धान्तेनाप्यपैति ।

पिशुनअममसिपत्तेनाप्यपैत्येवमेवाप्यपैति ॥]

एकं पदरुचिष्णं हृत्यं मुह्यमारुण वीअन्तो ।

सो वि हसन्तीपे मण गहिओ धीएण कण्ठम्मि ॥ ८६ ॥

[एक प्रहारोद्विग्न हस्त मुखमारुतेन वीजयन् ।

सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ॥]

प्रहारकार्यमें उद्विग्न मेरे एक हाथको मुखमारुनद्वारा वीजन किये जानेपर मैंने हँसते हँसते दूसरे हाथ द्वारा उसका कण्ठग्रहण कर लिया ॥ ८६ ॥

अवलम्बितमानपरम्मुहीपे एन्तस्स माणिणि पिअस्स ।

पुट्टपुलज्जगमो तुह कहेइ संमुहट्ठिअं हिअअं ॥ ८७ ॥

[अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस्य ।

पुष्टपुलकोद्गमस्तव कथयति सम्मुखस्थित हृदयम् ॥]

हे मानिनि, मान अवलम्बन कर पराङ्मुखी होनेपर भी तুম अपने पीठपर रोमाँचके उद्गमद्वारा आगमनकारी प्रियतमके निकट अपना हृदय सम्मुखस्थित रूपसे ही सूचित करती हो ॥ ८७ ॥

जाणइ जाणावेउं अणुणअविहविअमाणपरिसेसं ।

अहरिक्कम्मि वि विणआवलम्बणं सच्चिअ कुणन्ती ॥ ८८ ॥

[जानाति ज्ञापयितुमनुनयविघ्नाधितमानपरिशेषम् ।

विजनेऽपि विनयावलम्बन सैव कुर्वती ॥]

एकान्तमें सुरतके समय विनयका अवलम्बनकर प्रियतमके अनुनयसे दूरीकृत मानके परिशिष्टको स्थापित करना केवल वही जानती है ॥ ८८ ॥

मुह्यमारुण तं कहु गोरअं राहिआपे अवणेन्तो ।

एताणँ वल्लवीणं अण्णाण वि गोरअं हरसि ॥ ८९ ॥

[मुखमारुतेन एव कृष्ण गोरजो राधिकाया अपमयन् ।

एतासां बल्लवीनामन्यासामपि गौरव हरसि ॥]

हे कृष्ण, तুম अपने मुखमारुनद्वारा राधिकाके चक्षुसे धूलि अथवा गोघृक्षि हटाकर, पुरोवर्तिनी अन्यान्य गोपीगणोंका गौरव या गौरवा हरण करते हो ॥ ८९ ॥

किं दाव कआ अहवा करेसि कारिस्सि सुहअ एत्ता हे ।

अवराहणँ अल्लज्जिर साहसु कअप खमिज्जन्तु ॥ ९० ॥

[किं तावत्कृता अथवा करोपि करिष्यसि सुमतेदानीम् ।

अपराधानामलज्जाशील कथय कतरे चम्यन्ताम् ॥]

हे सुभक्त, किम जगताधींचो तुज्यो मित्रा हे जगती कर रहे हो सर्व जागे करोगे; हे मित्रज, जगतींचो किम जगताधींचो में जगता कर लक्ष्मी हूँ, वाद जगताधी हो ॥

नृमेति ते पदुतं कृषिर्न दासा ष्व ते पस्यमस्ति ।
ते श्विनः मरिचान् पिब्य सेसा सामि श्विनः वराभ्य ॥ ११ ॥

[जेरामन्ति के ब्रह्मन् कुरिहा दत्ता दृष के मन्त्राद्वयम् ।
 उ दृष मन्त्रिज्यां विषाद दीपः लक्ष्मि दृष वराधनः ।]

[illegible]

तस्मै नमः शिवाय ॥ १२ ॥

[तथा कृपायां वदन्त्य व रत्नोन्मत्ताः पुष्पवन्निभः ।
वदन्त्यप्यप्युष्यं मातङ्ग्यमिदं वदन्त्यपि ॥]

हे मनुज, यह काम कुशल होकर अबका समयीने बलि जाहानक तुम
कामनाय दुर्गोते मनुजक कही हुए । अब कष्टकालकायरी विपद समयीका
परिणाम कर रहे हो ॥ २१ ॥

मद्विभक्त्यपेक्षानिर्गोहः तत्पर्यन्तं मामि तेन सिद्धेन ।
सिद्धिचयपीयूषं च पाविष्यन् तद्वत्स्वित्त्वं च सिद्धा ॥ १३ ॥

[अकिण्वज्योक्त्यधीनं तावत्तं साधुमयि वैचर्येण ।
स्वप्नधीनमेव बालीयैव सूर्यैव च जगता ॥]

इ सारी लपकाई कीये हुए एक हुआ गजबने दिखनेकी अति आश्चर्यचकते
करे ईश्वरकी तेरी आश वर यही हुई है ॥ ५५ ॥

सुखयो ज्ञ देसमहर्षये तं विभ करे पयसन्तो ।
गमासन्मन्त्रिणमहापद्मसारीपते ॥ ५ ॥

[सुप्रभो न दीक्षयन्त्यसौमि तस्यैव योमि उपसन् ।
 नन्दयन्त्यसौमि तस्यैव योमि उपसन् ॥]

कच्ची मरिचि जिह्न रेशमके अपने नियामक द्वारा कार्यरत करते हैं कच्ची रेशमके

प्रवासार्थ जाकर वे ही ग्रामासन्न उन्मूलित महावटवृक्षस्थानकी भाँति उसे
दुःखदायक कर डालते हैं ॥ ९४ ॥

सो णाम संभरिज्जइ पब्भसिओ जो खणं पि द्वियआदि ।
संभरियव्वं च कयं गयं च पेम्मं णिरालम्भं ॥ ९५ ॥

[स नाम सम्मर्यते प्रभ्रष्टो य क्षणमपि हृदयात् ।
स्मर्तव्यं च कृतं गतं च प्रेम निरालम्बम् ॥]

स्मरण रखनेकी बात उसके ही विषयमें जँचती है, क्षणभरके लिए
भी हृदयमें जिसके निकल जानेकी संभावना है । जिस क्षण प्रेम स्मरणयोग्य
हो जाता है, उसी क्षण वह आलम्बनशून्य हो जाता है ॥ ९५ ॥

णासं व सा कवोले अज्ज वि तुह दन्तमण्डलं बाला ।
उट्ठिमण्णपुल्लअवइवेढपरिगअं रक्खइ वराई ॥ ९६ ॥

[न्यासमिष सा कपोलेऽद्यापि तव दन्तमण्डल बाला ।
उल्लिख्यपुलकवृत्तिवेष्टपरिगत रक्षति वराक्षी ॥]

वह दीना बाला आजतक अपने कपोलपर तुम्हारे द्वारा दिये हुए मण्ड-
लाकृति दन्तक्षतको न्यासके रूपमें संहालकर रखे हुए है, जैसेकि वह क्षतस्थान
क्षतुर्दिग् में विकसित रोमांचवृत्ति बेड़ा द्वारा वेष्टित है ॥ ९६ ॥

टिट्ठा चूआ अग्घाइआ सुरा दक्खिणाणिलो सहिओ ।
कज्जाइं ध्विअ गरुआइं मामि को वल्लहो कस्स ॥ ९७ ॥

[इष्टाश्चूता आघ्राता सुरा दक्षिणाणिल सोढ ।
कार्याण्येव गुरुकाणि मातुलानि को वल्लभ कस्य ॥]

आम्राँकुर देखा गया है, सुरा पीयी गयी है एवं दक्षिणपवनको भी सहन
किया गया है । उसका अर्थात् नायकका कार्यसमूह ही गुरुतर प्रतीत होता है,
अतः हे मामी, कौन किसका प्रिय है ॥ ९७ ॥

रमिऊण पअ पि गओ जाहे उवऊद्विऊं पडिणिउत्तो ।
अहइ पउत्थपइआ व्व तक्खणं सो पवासि व्व ॥ ९८ ॥

[रम्यत्वा पदमपि गतो यदोपगूहितु प्रतिनिवृत्त ।
अहं प्रोपितपतिकेव सत्क्षणं स प्रवासीव ॥]

रमणके उपरान्त वह एक पग भी चलकर अथ आलिङ्गनके लिए प्रतिनिवृत्त
होता है, तब मैं अपनेको प्रोपितपतिका पृथ उमको प्रवासी समझती हूँ ॥ ९८ ॥

अविश्वहृयेऽपिर्द्धं समस्तुहृत्तुः विरप्यसम्भर्धं ।

अप्याप्यहिममहाप्य पुण्येहिं ज्ञानं ज्ञानं साह ॥ ११ ॥

[अविश्वहृयेऽपिर्द्धं समस्तुहृत्तुः विरप्यसम्भर्धं ।

अप्याप्यहिममहाप्य पुण्येहिं ज्ञानं ज्ञानं साह ॥]

जो दुष्टन प्यासी बनहीं है दुर्धरीय पुण्यपुण्य ज्ञानव सहायिताप्य
कर्म रई वरावराह दुर्धरीय कय होये सीमा है ऐसे दुष्टनो कर्त्तु को नये
आन है ही प्यो है ॥ ११ ॥

हुन्क देतो वि सुह ऊचेर जो अस्तु वहुहो हार ।

हरमवहृत्तुविमर्धं वि वहुह वप्यर्धं समस्तो ॥ १२ ॥

[हुन्क देतो वि सुह ऊचेर जो अस्तु वहुहो हार ।

हरमवहृत्तुविमर्धं वि वहुह वप्यर्धं समस्तो ॥]

जो विमर्ध विव है वह पुन विने कर्मक भी पुन वप्य कर्मा है ।
विरक वहुहो विव समस्तु भी रोमार्धं वहु कर्मा है ॥ १२ ॥

एहिमवहृत्तुविमर्धं कर्मावहृत्तुविमर्धं वहुहृत्तुविमर्धं विव ।

सप्तसप्तमि समस्त वप्यर्धं पादाप्यर्धं पर्म ॥ १३ ॥

[एहिमवहृत्तुविमर्धं कर्मावहृत्तुविमर्धं वहुहृत्तुविमर्धं विव ।

सप्तसप्तमि समस्त वप्यर्धं पादाप्यर्धं पर्म ॥]

अविश्वहृयेऽपिर्द्धं समस्तुहृत्तुः विरप्यसम्भर्धं
अप्याप्यहिममहाप्य पुण्येहिं ज्ञानं ज्ञानं साह ॥ १४ ॥

द्वितीय शतक

धरिओ धरिओ विअलइ उअएसो पिहसहीहिँ दिजस्तो ।

मअरइअयाणपहारजजरे तीएँ द्विअअग्नि ॥ १ ॥

[छतो छतो विगलत्युपदेश प्रियसखीभिर्दायमान ।

मकरध्वजवाणप्रहारजजरे तस्या हृदये ॥]

कामदेवके वाण प्रहारसे जर्जरित उसके हृदयमें प्रियसखियोंद्वारा दीयमान मान करनेका उपदेश बारबार ग्रहण करने पर भी विगलित हो जाता है ॥ १ ॥

तडसंठिअणीहेकन्तपीलुआरअन्त्रणेक्कदिण्णमणा ।

अगणिअदिणिवाअमया पूरेण समं घइइ काई ॥ २ ॥

[तटस्थितनीद्वैकान्तशावकरचणैकदत्तमना ।

अगणितविनिपातमया पूरेण सम वहति काकी ॥]

तटस्थित नीदमें घर्त्तमान शावककुलके रचणमें एकान्त मनोनिवेशकारिणी काकी तट तटके भजनान्तर अपने गिरनेके भयको न गिनकर जलप्रवाहके साथ हूँसती जा रही है ॥ २ ॥

बहुपुप्फभरोणामिअभूमीगतसाह सुणसु विण्णत्ति ।

गोलातडविअडकुडङ्ग महुअ सणिअं गलिज्जासु ॥ ३ ॥

[बहुपुष्पभरावनामितभूमीगतशाख शृणु विज्ञप्तिम् ।

गोदातटविकटनिकुञ्जमधूक शनैर्गलिष्यसि ॥]

हे गोदावरीके तटस्थ विकटनिकुञ्जस्थित मधूकवृक्ष, तुम्हारी शाखाएँ अनेक पुष्पोंके भारसे पृथ्वीपर्यन्त झुक गयी हैं, तुम मेरी विज्ञप्ति सुन लो— तुमको धीरे-धीरे विगलितपुष्प होना पड़ेगा ॥ ३ ॥

णिप्पच्छिमाई असाई दुःखालोआई महुअपुप्फाई ।

चीए वन्धुस्स घ अट्ठिआई रुअई समुच्चिणइ ॥ ४ ॥

[निष्प्रक्षिमान्यसती दुःखालोकानि मधूकपुष्पाणि ।

चितायां बन्धोरिवास्थीनि रोदनशीला समुच्चिनोति ॥]

फालेइ अच्छमहं च उअह कूग्गामदेउलदारे ।
 हेमन्तआलपदिओ विज्झाअन्तं पलालग्गि ॥ ९ ॥
 [पाटयत्यच्छमहमिध परपत्त कुग्गामदेवकुलदारे ।
 हेमन्तकालपधिको विष्मायमान पलालाग्गिम् ॥]

सुम लोग देखो, घुरे ग्रामके मन्दिर द्वारपर हेमन्तकालीन पधिक निर्वाण-
 प्राय पलालाग्गिको भालूकी भौंनि पाट रहा है ॥ ९ ॥

कमलाअरा ण मलिआ हंसा उट्ठाविआ ण अ पिउच्छा ।
 केणोवि गामतडाए अन्नं उत्ताणमं ब्रूहं ॥ १० ॥
 [कमलाकरा न मृदिता हसा उट्ठायिता न च पितृष्वस ।
 केनापि ग्रामतडागे अभ्रमुत्तानित सिसम् ॥]

हे घुआ, नहीं जानता गाँवकी तलैयामें आकाशको तानकर किसने गिरा
 दिया है, तथापि वहाँपर कमलकुल उपमर्दित नहीं हुआ है, इस भी वहाँसे
 उड़ नहीं गये हैं ॥ १० ॥

केण मणे भग्गमणोरहेण संलाविअं पवासो त्ति ।
 सविसाहं च अलसाअन्ति जेण बहुआएँ अझाहं ॥ ११ ॥
 [केन मन्ये भग्गमनोरथेन सलापित प्रवास इति ।
 सविषाणीवालसायन्ते येन नवध्वा अझानि ॥]

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे किसीने भग्गमनोरथ होकर प्रवासगमनके
 सम्यग्धमें बात किया है । इसी कारण, वधूके अग प्रत्यगोंने जैसे विषदग्ध होनेसे
 कार्यपट्टताको छोड़ दिया है ॥ ११ ॥

अज्जवि वालो दामोअरो त्ति इअ जम्पिअ जसोआए ।
 कल्लमुदपेसिअच्छं णिहुअं हसिअं चअवहृदि ॥ १२ ॥
 [अद्यापि वालो दामोदर इति इति जल्पिते यशोदया ।
 कृष्णमुखप्रेषिताद्य निमृत्त हसित प्रज्वधूमि ॥]

आजतक दामोदरका मेरे निकट बचपन ही रह गया है, यशोदाके ऐसा
 कहनेपर प्रज्वधूमिटीर्यो कृष्णके मुखकी ओर आँख फिराकर गोपनभावसे हँसी ॥ १२ ॥

ते विरला सप्पुरिसा जाण सिणेहो अहिण्णमुहराओ ।
 अणुदिअह चट्ठमाणो रिणं ध पुत्तेसु संकमह ॥ १३ ॥

[ते विवस्वतः कानुवत्तयेनां स्नेहोद्यमिभ्यः सुखरागाः ।
अनुविषमपर्यमाय कथमिह दृष्टेः पर्यममिति ॥]

हे अनुवत्त ये भाई हो हैं विवस्वत नाम्नीयत्त सुखरागपुत्र स्नेह बहिर्दिष्ट
पर्यमिह होकर शिष्ट नामकी योंकि दृष्टीमें भी पर्यमन्त होता है ॥ ११ ॥

प्राप्यसक्त्याह्वयमिहेव पासपरिर्त्तयिष्या विवस्वतोऽपि ।
सरिसर्गविभार्यै सुम्भार कथोक्तपद्विमायार्त्तं कथं ॥ १४ ॥
[वर्यवत्तकथनमिहेव पार्त्तपरिर्त्तयिष्या विवस्वतोऽपि ।
कथनमोदीनां सुम्भार कथोक्तपद्विमायार्त्तं कथं ॥]

रागमें कही हुई विवस्वत कोही कथनकथने बहाये अनुवत्त नामक नामकी
कैसी कोसियोंके कथोक्तपर परिर्त्तयिष्या कथनकी कथिमाकी कथविषयमायार्त्त पद
रही है ॥ १ ॥

सम्भार्य विस्वामुहपसंरिपदि अन्धोन्धकद्वन्द्वमोर्द्धि ।
कथं न्य सुम्भार विष्मो मेहेहि विस्ववत्तमोर्द्धि ॥ १५ ॥
[कथं विस्वामुहपसंरिपदि अन्धोन्धकद्वन्द्वमोर्द्धि ।
कथंमिह सुम्भारि किन्तो मेहेविस्ववत्तमोर्द्धि ॥]

कथनके प्रतिविषयमें अन्ध, कथनमें विस्ववत्त होकर सारी विस्ववत्तमें कैने
हुए वेकनमुरको देखनेका देखा लीक होता है कथने किन्तुवत्तकथने
कथोक्ते किन्ती कथ रहा है ॥ १५ ॥

अन्धोन्धमिह सुम्भार्य पश्यन्तिद्वन्द्वमोर्द्धि अन्धोन्धमिह ।
द्विपद्वन्द्वमोर्द्धि न विष्मो सुम्भार्य अन्धोन्धमोर्द्धि ॥ १६ ॥
[अन्धोन्धमिह सुम्भार्य पश्यन्तिद्वन्द्वमोर्द्धि अन्धोन्धमिह ।
द्विपद्वन्द्वमोर्द्धि किन्तो सुम्भार्य पश्यन्तिद्वन्द्वमोर्द्धि ॥]

कथनके विषय का अनुवत्त कथन कैने हुए द्विपद्वन्द्वमोर्द्धि किन्तो कथनको
द्विपद्वन्द्व कथन कथनका पद वेकनका हाता परिर्वर्त्तमान देखने हैं ॥ १६ ॥

अन्धोन्धमिह सुम्भार्य पश्यन्तिद्वन्द्वमोर्द्धि अन्धोन्धमिह ।
सौम्यमन्धमिह सुम्भार्य पश्यन्तिद्वन्द्वमोर्द्धि अन्धोन्धमिह ॥ १७ ॥
[अन्धोन्धमिह सुम्भार्य पश्यन्तिद्वन्द्वमोर्द्धि अन्धोन्धमिह ।
सौम्यमन्धमिह सुम्भार्य पश्यन्तिद्वन्द्वमोर्द्धि ॥]

कथनमिह कैने हाता प्रतिविषय कैने कथन किन्तुवत्तकथन कथन वेकनमुर

द्वारा आकृत होकर, शीरसागरके मथनमें उछाले हुए दुग्ध द्वारा सिक्त मधु मयनविष्णुकी भाँति शोभा पा रहा है ॥ १७ ॥

चन्दीअ णिहअधन्धवचिमणाइ वि पफ़लो त्ति चोरजुआ ।

अणुराएण पलोइओँ, गुणेषु को मच्छरं वहइ ॥ १८ ॥

[वन्धा निहितघान्धवचिमनस्कयापि प्रवीर इति चोरयुवा ।

अनुरागेण प्रलोकितो गुणेषु को मत्सर वहति ॥]

घान्धर्वोंके मारे जाने पर विमनस्का यन्दिनी युवती चोर युवकको शीर्षादि-
गुण सम्पन्न प्रवीर समझकर अनुरागसे देख रही थी—गुणवैभव देखने पर
मात्सर्य प्रदर्शन कौन करता है ॥

अज्ज ऋमो वि दिअहो वाहवह रुवजोव्वणुम्मत्ता ।

सोहग्गं धणुरुम्पच्छलेण रच्छासु विकिरइ ॥ १९ ॥

[अद्य कतमोऽपि दिवसो व्याधवधू रूपयौवनोन्मत्ता ।

सौभाग्य धनुस्तएवक्षलेन रथ्यासु विकिरति ॥]

आज कितने दिन हो गए, रूप एवं यौवनमें उन्मत्त व्याधवधू धनुके सूक्ष्म-
त्वके निक्षेपके सहाने अपने सौभाग्यको रथ्यापर निक्षेप कर रही है ॥ १९ ॥

उप्पिजप्पइ मण्डलिमारुपण गेहङ्गणाहि वाहीए ।

सोहग्गवअवडाअ व्व उअइ धणुरुम्परिच्छोली ॥ २० ॥

[उत्पिच्यते मण्डलीमारुतेन गेहाङ्गणाद्वाधस्त्रियाः ।

सौभाग्यध्वजपताकेव पश्यत धनुः सूक्ष्मत्वव्यपत्तिः ॥]

व्याधवधूके गृहाङ्गणसे अपने सौभाग्यके ध्वजपताकारुपिणी धनुकी सूक्ष्म-
त्वव्यपत्ति मण्डलवायुद्वारा उड़ायी जा रही है—देखो ॥ २० ॥

गअगण्डरयलणिहसणमअमइलीकअकरअसाह्वहिं ।

एत्तीअ कुलहराओ णाणं वाहीअ पइमरणं ॥ २१ ॥

[गजगण्डस्थलनिघर्पणमदमलिनीकृतकरअसाक्षाभिः ।

आगच्छन्त्या कुलगृहाज्ज्ञात व्याधस्त्रियापतिमरणम् ॥]

पिताके घरसे छोटकर व्याधवधूने हाथीके गण्डस्थलकेघर्पणसे उत्पन्न
मदद्वारा मलिनीकृत करअ साक्षात्समूहको देखकर अपने पतिके मृत्युको समझाया ॥

णववहुपेम्मत्तणुइओ पणअं पढमघरणीअ रक्खन्तो ।

आत्तिहिअदुप्परिछं पि जेइ रणं धणुं वाहो ॥ २२ ॥

एव मै तुम्हारा द्वेष्य हूँ—हे बालक, स्पष्टतः कहती हूँ कि प्रेम अनेक प्रकारोंसे विकार युक्त होता है ॥ २६ ॥

अहं लज्जालुङ्घनी तस्स अ उम्मच्छराई पेम्माई ।
सहिआअणो वि णिउणो अत्ताहि किं पाअराएण ॥ २७ ॥

[अहं लज्जालुस्तस्य चोन्मत्तराणि प्रेमाणि ।
सखीजनोऽपि निपुणोऽपगच्छ किं पादरागेण ॥]

मैं स्वयं लज्जाशीला हूँ, उसका प्रेम भी अत्यंत उत्कट है एव सखियाँ भी प्रेमाधिष्कारमें अत्यन्त निपुण हैं । अतः निषेध करती हूँ, पादरागप्रयोगकी आवश्यकता नहीं है ॥ २७ ॥

महुमासमारुआहअमहअरद्धकारणिअरे रण्णे ।
गाअइ विरहवस्तरावद्धपहिअमणमोहण गोवी ॥ २८ ॥

[मधुमासमारुगाहसमधुकरक्षकारनिर्मरेऽरण्ये ।
गायति विरहाक्षरावद्धपथिकमनोमोहन गोपी ॥]

वसन्त-वायुसे आहत हो मैंने अरण्यको क्षकारसे परिपूर्णकर रहे हूँ । वहाँ उनके साथ साथ गोपी भी विरहाक्षरयुक्तपदद्वारा आकृष्ट पथिकोंके मन सुगंधकर गान गा रही हैं ॥ २८ ॥

तह माणो माणघणाएँ तीअ एमेअ दूरमणुवद्धो ।
जह से अणुणीअ पिओ एकगाम विअ पउत्थो ॥ २९ ॥

[तथा मानो मानघनया तथा एवमेव दूरमनुषद्ध ।
यथा तस्या अनुनीय प्रिय एकग्राम एव प्रोपितः ॥]

मानधना उस प्रियाका मान इतनी दूरतक अनुषद्ध हुआ है कि उसका प्रिय उसका अनुनय करनेके उपरान्त एक ही गाँव में प्रवासीकी भाँति होगया है ॥ २९ ॥

सालोएँ विअ सूरै घरिणी घरसामिअस्स घेत्तूण ।
णेच्छन्तस्स वि पाए धुअइ हसन्ती हसन्तस्स ॥ ३० ॥

[सालोक एव सूर्ये गृहिणी गृहस्वामिनो गृहीत्वा ।
अनिच्छतोऽपि पादौ चावति हसन्ती हसतः ॥]

सूर्यका आलोक रहते ही गृहिणी हँसमुख होकर हँसते हँसते अनिच्छुक गृहस्वामीके दोनों चरणोंको धो डाल रही है ॥ ३० ॥

[वसति यत्रैव खल पोष्यमाण स्नेहदानै ।

समेवालय दीपक इवाचिरेण मलिनयति ॥]

जिस घरमें स्नेहदानद्वारा खलजन सवर्द्धित होते हैं, स्नेहदानद्वारा पोषित दीपककी भाँति वे उसी घरको शीघ्र ही मलिन बनादेते हैं ॥ ३५ ॥

होन्ती वि निष्फलश्चिअ धणरिद्धी होइ किविणपुरिसस्स ।

गिह्मावसतत्तस्स णिअच्छादि च्च पहिअस्स ॥ ३६ ॥

[भवत्यपि निष्फलैव धनश्रद्धिर्भवति कृपणपुरुषस्य ।

ग्रीष्मातपसतस्य निजकच्छायेव पथिकस्य ॥]

कृपणकी प्रभूत धनवृद्धि होनेपर भी यह ग्रीष्मके आतप से सतत पथिककेलिपु अपनी छायाकेसमान निष्फल मिट्ट होती है ॥ ३६ ॥

फुरिअ वामच्छि तुअ जइ एहिइ सो पिअो ज ता सुइरं ।

संमीलिअ दाहिणअं तुइ अवि एहं पलोइस्सं ॥ ३७ ॥

[स्फुरिते वामाक्षि स्वयि यद्येप्यति स प्रियोज्य ससुचिरम् ।

समीक्ष्य दक्षिण स्वयैवैत प्रेक्षित्ये ॥]

हे बायें नेत्र, तुम्हारे स्फुरित होनेसे यदि वह प्रिय आज्ञही आज्ञाय तो मैं अपनी दायें नेत्रको मूँदेरहकर केवल तुमसे बहुतदेरतक उसे देखूँगी ॥ ३७ ॥

सुणअपउरम्मि गामे हिण्डन्ती तुह कण सा वाला ।

पासअसारिच्च घरं घरेण कइआ वि खज्जिहिइ ॥ ३८ ॥

[श्रुतकप्रचुरे ग्रामे हिण्डमाना तव कृतेन सा बाला ।

पाशकशारीव गृह गृहेण कदापि स्वादिप्यते ॥]

बृहत्प्रचुरग्राममें वह बाला तुम्हारेलिपु इस घरसे उस घर जाते आते कभी न कभी पासाकी गोटी अथवा पाशमेंआवइ सारिकापक्षीकीभाँति खा डाली जायगी ॥ ३८ ॥

अणणणं कुसुमरसं जं किर सो महुइ महुअरो पाउं ।

तं णिरसाणं दोसो कुसुमाणं णेअ भमरस्स ॥ ३९ ॥

[अन्यमन्य कुसुमरस यत्किल स इच्छति मधुकर पातुम् ।

तद्भीरसानां दोष कुसुमानां नैव भ्रमरस्य ॥]

वह मधुकर जो अन्यान्य पुष्पोंसे रस चूसनेकी इच्छा करता है, इसमें रसशून्य पुष्पोंका ही दोष है, मधुकरका किसीप्रकार दोष नहीं है ॥ ३९ ॥

[यः क्षयमपि मम सखीभिश्छिद्रं लक्ष्म्या प्रवेक्षितो हृदये ।
म मानसोरकामुक इव हटे प्रिये नष्ट ॥]

प्रणयकलहरूप छिद्र देवकर सखियोंने मेरे हृदयम जो मान प्रविष्ट
करा दिया है, वह मान प्रियवरको दखते ही चोर कामुककी भाँति भाग
गया है ॥ ४४ ॥

सद्विवाहिं भण्णमाणा थणप लग्गं कुसुम्भपुष्पं च्चि ।
मुद्धवहुआ हसिज्जइ पप्फोडन्ती णहवआइ ॥ ४५ ॥

[सखीभिर्भण्यमाना स्तने लज्ज कुसुम्भपुष्पमिति ।

मुग्धवधूर्हस्यते प्रस्फोटयन्ती नखपदानि ॥]

स्तनमें क्या कुसुम्भ कुसुम लगा हुआ है ?—सखियों द्वारा ऐसा
पूछा जाने पर मुग्धवधूने स्तनपरसे नखचिह्नको हटानेकी चेष्टाकी निमसे
सखियों हँस पड़ीं ॥ ४५ ॥

उन्मूलेन्ति च हिअञ्जं इमाइँ रे तुह विरज्जमाणस्स ।
अवधीरणवसचिसंठुलवलन्तणअणडदिट्ठाइँ ॥ ४६ ॥

[उन्मूलयन्तीश्च हृदय इमानि रे तव विरज्यमानस्य ।

अवधीरणवशविसृलवल्लयनार्धदृष्टानि ॥]

अरे तुम्हारे मेरेप्रति विमुक्तहोनेपर तुम्हारी उपेक्षावश लक्ष्यविहीन हो
परावर्तनशील नयनाङ्गद्वि मेरे हृदयको उन्मूलित कर रही है ॥ ४६ ॥

ण मुअन्ति दीहसासं ण रुअन्ति चिरं ण होन्ति किसिआओ ।
धण्णाओ ताओ जाणं यहुवल्लह वल्लहो ण तुमं ॥ ४७ ॥

[न मुअन्ति दीर्घश्वासात्तरुदन्ति चिरं न भवन्ति कृशा ।

धन्यास्ता यासां बहुवल्लभ वल्लभो न एवम् ॥]

हे बहुवल्लभ, तुम जिसके प्रिय नहीं हो—ऐसा कहकर जो तुम्हारे विरहमें
दीर्घनि श्वास नहीं छोड़ती, बहुतदेरतक रोदन भी नहीं करती एव कृश भी
नहीं होती—वे ही रमणी धन्य हैं ॥ ४७ ॥

णिहालसपरिधुम्मिरतंसवलन्तद्धतारआलोआ ।

कामस्स वि दुव्विसहा दिट्ठिणिआवा ससिमुद्धीए ॥ ४८ ॥

[निद्रालसपरिधूर्णनशीलतिर्यग्बलद्धतारकालोकाः ।

कामस्यापि दुर्विषहा दृष्टिनिपाताः दाक्षिमुण्याः ॥]

विरहकरवत्तदुसहफालिज्जन्तम्मि तीअ दिअमम्मि ।

अस्स फज्जलमइलं पमाणसुत्तं अ पडिहाइ ॥ ५३ ॥

[विरहकरवत्तदुसहपाठ्यमाने तस्या हृदये ।

अधु फज्जलमलिन प्रमाणसूत्रमिव प्रतिभाति ॥]

दुःसह विरहरूप करवत्तद्वारा उपाठ्यमान उसके हृदयके ऊपर उसका फज्जलमलिन अधु प्रमाणसूत्रकी भाँति प्रतिभात हो रहा है ॥ ५३ ॥

दुण्णिअन्नेअमेअं पुत्तअ मा साहसं करिज्जासु ।

एत्थ णिहिताइँ मण्णे दिअआइँ पुण्णे ण लज्जन्ति ॥ ५४ ॥

[दुर्निशेषकमेतत्पुत्रक मा साहस करिष्यसि ।

अत्र निहितानि मन्ये हृदयानि पुनर्न लम्पन्ते ॥]

हे पुत्रक, यह हृदय रूप निशेष वा अर्पण दुर्निशेष कहा जा सकता है, अर्थात् तुम्हारे हृदयके फिर छोट पानेकी सम्भावना नहीं है, सुतरां तुम साहसपूर्ण कार्य करना मत । जान पड़ता है कि इस नायिकामें निहित मन फिर पाया नहीं जाता ॥ ५४ ॥

णिबुत्तरआ वि चह् सुखविशमट्ठिइँ अआणन्ती ।

अधिरअहिअआ अण्णं पि किं पि अत्थि त्ति चिन्तेइ ॥ ५५ ॥

[निर्दुत्तरतापि यधुः सुरतविरामस्थितिमजानती ।

अधिरतद्वद्वयान्पदपि किमप्यस्तीति चिन्तयति ॥]

अनुभूतरमणा होनेपर भी यधूटी सुरतावसानपर क्या करना चाहिए, यह न जानकर अधिरत हृदय लेकर, इसके बाध और कुछ है, ऐसा विचार करती है ॥ ५५ ॥

णन्दन्तु सुरअसुखरसतझावहराइँ सअललोअस्स ।

चहुकैअवमग्गविणिम्मिआइँ वेसाणं पेम्माइँ ॥ ५६ ॥

[मन्दन्तु सुरतसुखरसतृष्णापहराणि सकललोकस्य ।

चहुकैतवमार्गविनिर्मितानि वेश्यानां प्रेमाणि ॥]

सभीके सुरतसुखरसकी तृष्णाका अपहरणकरनेवाला एवं अनेक प्रकारके कपटमार्गद्वारा रचित वेश्याओंका प्रेम रसिकोंके लिए अमिनन्दनीय हो ॥ ५६ ॥

अप्यपत्तमण्णुदुक्खो किं म किसिअत्ति पुच्छसि हसन्तो ।

पावसि जइ चलच्चित्तं पिअं जणं ता तुह् कद्विस्सं ॥ ५७ ॥

[अग्रहणमुद्रुय किं न्नीं हुयेति हुयति हुयम् ।

अपत्यमि वदि कयतिरं निर्वं कयं तदा तप कयतिष्वादि ॥]

विद्युत्तमकय हुय कभी हुयै वही मिय है, हुयीये हुयम् हुयी हो 'मै हुय कभी हो गयी हूँ' 'चकचिह मिय कय हुयै मिह कयका हुयी हुयने अरका कय हुयी ॥ ५ ॥

अग्रहणमुद्रुय सहिअमिभार्ह कय कय रमिभोति ।

एभार्ह तार्ह सोनभार्ह संसभो सेहै बीमस्स ॥ ५८ ॥

[अग्रहणमुद्रुय अग्रहणमुद्रुय वेरा हुये व रमिभोति ।

एवमि कयि सेकयि संसोय सेहैकय ॥]

विद्युत्तमकय हुय कभी हुयै वही मिय है, हुयीये हुयम् हुयी हो 'मै हुय कभी हो गयी हूँ' 'चकचिह मिय कय हुयै मिह कयका हुयी हुयने अरका कय हुयी ॥ ५ ॥

ईसाकुमो परै से रति महुमं व वेह उचयेहं ।

उचयेह अयय विद्युत्तम मय मरुत्तमुद्रुयमुद्रुय ॥ ५९ ॥

[ईसाकुमो रतिकयता रती महुमं व ररत्तमुद्रुय ।

उचियेयमयय मयमिहमुद्रुयमुद्रुय ॥]

ईसाकुमो रतिकयता रती महुमं व वेह उचयेहं ।
उचयेह अयय विद्युत्तम मय मरुत्तमुद्रुयमुद्रुय ॥ ५९ ॥

अग्रहणमुद्रुय सहिअमिभार्ह कय कय रमिभोति ।

एभार्ह तार्ह सोनभार्ह संसभो सेहै बीमस्स ॥ ५८ ॥

[अग्रहणमुद्रुय अग्रहणमुद्रुय वेरा हुये व रमिभोति ।

एवमि कयि सेकयि संसोय सेहैकय ॥]

विद्युत्तमकय हुय कभी हुयै वही मिय है, हुयीये हुयम् हुयी हो 'मै हुय कभी हो गयी हूँ' 'चकचिह मिय कय हुयै मिह कयका हुयी हुयने अरका कय हुयी ॥ ५ ॥

ईसाकुमो परै से रति महुमं व वेह उचयेहं ।

उचयेह अयय विद्युत्तम मय मरुत्तमुद्रुयमुद्रुय ॥ ५९ ॥

[ईसाकुमो रतिकयता रती महुमं व ररत्तमुद्रुय ।

उचियेयमयय मयमिहमुद्रुयमुद्रुय ॥]

विद्युत्तमकय हुय कभी हुयै वही मिय है, हुयीये हुयम् हुयी हो 'मै हुय कभी हो गयी हूँ' 'चकचिह मिय कय हुयै मिह कयका हुयी हुयने अरका कय हुयी ॥ ५ ॥

जैसे काल विलम्बके साथ जलपान कर रहा है, प्याऊपालिका जैसे जैसे ही क्षीणजलधाराको क्षीणतर कर जल ढाल रही है ॥ ६१ ॥

मिच्छाअरो पेच्छद्द णाहिमण्डलं सावि तस्स मुहम्मदं ।
तं चट्ठमं अ करद्धं दोह वि कासा विलुम्पन्ति ॥ ६२ ॥
[मिच्छाअर प्रेक्षते नाभिमण्डल सापि तस्य मुखचन्द्रम् ।
तच्छट्ठमं च करद्धं द्वयोरपि काका विलुम्पन्ति ॥]

मिच्छाजीवी नायिकाके नाभिमण्डलकी ओर दृष्टिपात कर रहा है, यह नायिका भी उसके मुखचन्द्रकी ओर देखरही है । इस अवसरपर कौए दोनोंके चट्ठमं पक्ष करद्ध अर्थात् मिच्छादान पात्र एवं मिच्छाग्रहण पात्रसे अन्नको ले भागते हैं ॥ ६२ ॥

जेण विणा ण जिविज्जइ अणुगिज्जइ सो कआवराहो वि ।
पत्ते वि णअरटाहे भण कस्स ण वल्लहो थग्गी ॥ ६३ ॥
[येन विना न जीव्यतेऽनुनीयते स कृतापराधोऽपि ।
प्राप्तेऽपि नगरदाहे भण कस्य न वल्लमोऽपि ॥]

जिसे छोड़नेपर जीवनयापन संभव नहीं है, कृतापराध होनेपर भी उसे अनुनीत करना उचित है । वताओ तो, सारेनगरके जलनेपर भी अग्नि किसे प्रिय नहीं है ॥ ६३ ॥

वक्कं को पुलइज्जउ कस्स कहिज्जउ सुहं व दुप्पखं वा ।
केण समं व हसिज्जउ पामरपउरे हअग्गामे ॥ ६४ ॥
[वक्र कः प्रलोभयतां कस्य कथ्यतां सुखं वा दुःखं वा ।
केन समं वा हस्यतां पामरप्रसुरे हस्तग्रामे ॥]

किसकी ओर मैं वक्रभावसे देखूँ, किससे सुखदुःखकी बातें कहूँ एवं हम पामरप्रसुर दुष्ट ग्राम में किसके साथ परिहास करूँ ? ॥ ६४ ॥

फलहीवाहणपुण्णाहमङ्गलं लङ्गले कुणन्तीप ।
असईअ मणोरह्मगमिणीअ हत्था यरहरन्ति ॥ ६५ ॥
[कार्पासीचैत्रकर्पणपुण्याहमङ्गलं लाङ्गले कुर्वत्याः ।
असत्या मनोरथगमिण्या हस्तौ थरथरायेते ॥]

कपासका खेत चुननेके शुभारम्भदिवसकी मङ्गलक्रिया सम्पादन करनेकेसमय मनोरथधारिणी असतीके हस्तद्वय थरथरा रहे हैं ॥ ६५ ॥

[क्षत्रावातोत्तृणीकृतगृहविवरप्रपतरसलिलधाराभिः ।

कुट्यलिखितावधिदिवसं रक्षार्या करतलै ॥]

क्षत्रावातमें तृणके उड़ानेपर गृहविवरद्वारपर्यन्त जल यह रहा है, साधवी आर्या भित्तिलिखित स्वामीके प्रवासकाल अवधिसूचक दिनसंख्याकी दोनों हाथोंद्वारा रखा कर रही है ॥ ७० ॥

गोलाणश्च कच्छे चक्षन्तो राश्याश्च पक्षाई ।

उपफडश्च मकडो स्त्रोक्स्त्रपश्च पोष्टं च पिष्टे ॥ ७१ ॥

[गोदावरी नद्याः कच्छे चर्वयन् राजिकाया पत्राणि ।

उपतति मर्कटं स्त्रोक्स्त्रपश्च करोत्युदरं च ताडयति ॥]

गोदावरीके किनारे राजिकाका पत्र चर्वणकर यन्दर उछल रहे हैं, स्त्रोक् शब्द कर रहे हैं पृथ अपने पेट पीट रहे हैं [सकेत स्थानमें भयकी आशङ्का है] ॥ ७१ ॥

गह्वद्वया मुमसैरिहदुण्डुमदामं चिरं वहेऽण ।

वगसत्वाश्च जेऽण जवरिश्च अज्जाघरे घट्टं ॥ ७२ ॥

[गृहपतिना मृतसैरिमृहद्वन्टादामं चिरमूढ्वा ।

वर्गशतानि नीत्वा नन्तरमार्यागृहे घट्टम् ॥]

गृहपतिने मृत महिषके गृहव घण्टाकी मालाको अनेकदिन तक सुरक्षित रखकर शतशतपशुओंको खरीदकर भी, पूर्व सदृश महिष न पाकर उस मालाको आर्याके आयतनमें बाँध रखा । [सुभगा पूर्वपक्षीके आभूषणादिको अन्य प्रेयसीको देना उचित नहीं] ॥ ७२ ॥

सिंहिपेहुणावअंसा बहुआ वाहस्स गध्विरी भमइ ।

गममोत्तिअरइअपसाहणाणं मज्झे सचत्तीणं ॥ ७३ ॥

[सिंहिपिष्ठावतसा वधूर्याधस्य गर्विता भ्रमति ।

गममौक्तिकरचितप्रसाधनानां मध्ये सपत्नीनाम् ॥]

मयूरपुच्छद्वारा विभूषित होकर भी ग्याधवधू गर्वके साथ गममुक्तासे निर्मित आभूषणोंको धारणकर सपत्नियोंके बीच भ्रमण कर रही है ॥ ७३ ॥

चङ्कुच्छिपेच्छिरीणं उङ्कुलचिरीणं चङ्कुममिरीणं ।

उङ्कुहसिरीणं पुत्तय पुण्णेहि जणो पिओ होइ ॥ ७४ ॥

[चक्राक्षिप्रेक्षणशीलानां चक्रोल्लापनशीलानां चक्रभ्रमणशीलानाम् ।

चक्रहासशीलानां पुत्रक पुण्यैर्जनः प्रियो भवति ॥]

हे कुम्भ, जो समीप मिलैक्यबरो देखैक्यही बजबजरो वरीरगकीअ
बजबजिरो जलजकीका बज बजबजो के ईक्यकीकाअ मिल होमेकेमिह कोमेके
कुम्भका बज होमा आबबज है ॥ ३ ॥

मम बमिम धीसानी सी सुखनो मज्ज मारिषी तेव ।

गोत्रामदविमदकुदकुपासिआ बरिमसीहेव ॥ ७५ ॥

[मम बमिम विजम्मा व कुम्भमेव मारिबलेव ।

कोदाअविमदकुपासिआ बरिमहेव ॥]

हे बमिम, तुम मज्जान्तपावरो जम्मा जम्मा की कोदाअकीके वीरवरी
विमदकुपरी बज करैक्यके बज वज विद्वहारा बह कुपा मात्र ही मता
मता है ॥ ७५ ॥

आपरिपव मरिमं बरिमं कचकरउम्यकरपव ।

कुम्भतो बरिमं कुम्भता को सि देवमं ॥ ७६ ॥

[बलेमिरेव बुरमवि कर्मचोत्तमकता ।

कुम्भमेवमं कुम्भमेवमि देवमाव ॥]

बलुहता बलिउम्यकुपकी जम्माजम्माकी दुर्मनवरी कुम्भ करे
कच करुलविमकाके कुम्भ करैक्यके तुम देवमीके कोई देव हो ॥ ७६ ॥

छहि हुस्मेमि कउम्यारं अह मं उह व सोसकुसुमारं ।

दूरं इमेसु रिमहेसु बहव गुहियमपुं वमो ॥ ७७ ॥

[छहि आवममि कउम्यमि मता मं उता व केकुमुममि ।

दूरमेसु रिमहेसु बहवि गुहियमपुं कउम्य ॥]

जो लकी कउम्यके कुम हमी विजम्मा जम्मा कह देवे हैं जम्मा कुम कउमा
मही देवे । मरिमि विमीमें मज्जेव विजम्मा ही कउम्यकुमकप गुहिय वा
विमववातीबकुप जम्माहममें का रहे हैं ॥ ७७ ॥

आई दूरं व तुम पिमी सि की ममद मय्य मपाटी ।

छा मरद तुज्ज अमसी तेव व मय्यमपारं मयिमो ॥ ७८ ॥

[आई दूरी व मं मिव इवि कोअमाजम्मा मताता ।

छा मय्यमे मय्यमपमोव व मय्यदूरं मताता ॥]

हैं मय्य दूरी मही हैं, तुम भी कउम मिव मही हो, तुमरी मय्यमपममें
मय्यमेमीकी कुम मही मता है । मय्य बह ममी मय्यमी और तुमरी मय्यमपम

चर्चा भी चलेगी, इसीसे मैंने स्त्रीवधनिवारणके निमित्त यह धर्मपार्श्व चलायी ॥ ७८ ॥

तीव्र मुहाहिं तुह मुहँ तुज्य मुदाओ अ मज्ज चलणम्मि ।
हत्थाहत्थीअ गओ अइदुक्करआरओ तिलओ ॥ ७९ ॥

[तस्या मुक्ताक्षय मुग तय मुक्ताक्ष मम चरणे ।

हस्ताहस्तिकया गतोऽसिद्धुक्करकारकस्तिलकः ॥]

अत्यन्त दुष्कर कार्यकरनेवाली उम नायिकाका तिलक आछिन्ना करते समय उसके मुगसे तुम्हारे मुखमें एव प्रणतिके समय तुम्हारे मुखसे मेरे चरणोंमें प्रतियोगिताभावसे हस्तान्तरित हो सलग हुआ है ॥ ७९ ॥

सामाह सामलिज्जइ अज्जच्छिपलोइरीअ मुहसोहा ।
जम्बूदलकअकण्णावअंसभरिण हलिअपुत्ते ॥ ८० ॥

[श्यामाया श्यामलायतेऽर्धाधिप्रलोकनशीलाया मुखशोभा ।

जम्बूदलकृतकर्णावतसधमणशीले हलिकपुत्रे ॥]

जम्बूकिमलयको कर्णावतसरूपमें व्यवहृतकरनेवाले हलिकपुत्रको देवदर अधखुले नयनोंसे देखनेवाली श्यामाकी मुखशोभा साँवली हो गई ॥ ८० ॥

दूइ तुम विअ कुसला कफ्फउमउआहँ जाणसे चोल्लुं ।
कण्हइअपण्डुरँ जह ण होई तह तं फरेज्जासु ॥ ८१ ॥

[दूति एवमेव कुदाला कर्कशमृदुकानि जानाति वक्तुम् ।

कण्हयितपाण्डुर यथा न भवति तथा स करिष्यति ॥]

हे दूती, तुम्हीं यही कुदाला हो, एव तुम्हीं जानती हो कि किसप्रकार कर्कश एव मृदुवचन बोलाजाता है, किन्तु देखो, उसे यात तो लगे पर वह पीला न पड़ जाय ॥ ८१ ॥

महिलासहस्सभरिण तुह द्वियण सुहअ सा अमाअन्ती ।
दियहँ अणण्णकम्मा अङ्ग तणुअं पि तणुपइ ॥ ८२ ॥

[महिलासहस्रमृते तव हृदय सुभग सा अमान्ती ।

दियसमभन्यकर्मा अङ्ग तनुकमपि तनूकरोति ॥]

हे सुभग, सहस्रों महिलाओंद्वारा मेरे हृदय तुम्हारे हृदयमें स्थान न पाकर वह अन्य वैनिक कृत्योंको छोड़कर अपनेकृत्य अङ्गोंको कृत्यतर कर रही है ॥ ८२ ॥

स्नणमेत्तं पि ण फिट्ठइ अणुदियहविहण्णगरुअसंतावा ।

पच्छण्णपावसङ्के व्व सामली मज्झ द्वियआओ ॥ ८३ ॥

नायकके आ जानेपर मैं क्या कहूँगी, उसे क्या कहूँगी एवं कैसे अभिसार होगा ? ऐसा सोचकर प्रथमोद्गतसाहस अवलम्बनकरनेवालीका हृदय धरधर कर्पिता है ॥ ८० ॥

णेउरकोडिविलगं चिउरं दइअम्स पाअपटिअम्स ।
द्विअर्थं पउत्थमाणं उम्मोअन्ती विअ फहेइ ॥ ८८ ॥

[नूपुरकोटिविलग्न धिगुर दयितम्य पादपतितस्य ।
हृदय प्रोषितमानमुन्मोचयन्त्येष कथयति ॥]

नूपुरके अग्रभागमें सलग्न पादपतितप्रियजनके केनवा उन्मोचनकरके ही, वह नायिका अपने हृदयके मानयुक्त होनेकी सूचना दे रही है ॥ ८८ ॥

तुज्जङ्गन्नाअसेसेण सामली तह खरेण सोमारा ।
सा किर गोलाऊले हाआ जम्बूकसापण ॥ ८९ ॥
[तवाद्गराग दोषेण श्यामला तथा खरेण मुकुमारा ।

सा किल गोदाधूले स्नाना जम्बूकपायेण ॥]

मुकुमाराक्षी वह श्यामा तुम्हारे अद्गरागदोष तीक्ष्ण जम्बूकपायद्वारा गोदा-
वरीनदीके किनारे नहला दी गयी है ॥ ८९ ॥

अज्ज ज्वेअ पउत्थो अज्ज विअ सुण्ण आई जाआई ।
रत्थामुहदेउलचत्तराई अहं च द्विअआई ॥ ९० ॥
[अद्यैव प्रोषितोऽद्यैव शून्यकानि जातानि ।

रथामुहदेयकुलचत्तराण्यस्माक च हृदयानि ॥]

आज ही वह नायक प्रवासाय चला गया है और आज ही गौवका
मार्गमुत्त, देवकुल तथा प्राङ्गणसमूह एवं माय-माय हमलोगोंका हृदयसमूह
शून्य हो गया है ॥ ९० ॥

चिरहिं पि अवाणन्तो लोआ लोएहिं गोरवब्भहिआ ।
सोणारत्तुले च्व णिरफ्फरा वि खन्वेहिं उब्भन्ति ॥ ९१ ॥
[वर्णावलीमप्यजानन्तो लोका लौकैर्गौरवाम्यधिकाः ।

सुवर्णकारमुला इव निरधरा अपि स्कन्धैरुद्भन्ते ॥]

अनेक व्यक्ति वर्णमालाके ज्ञानरहित अनेक व्यक्तियोंको गौरवमें अधिक
समझकर, स्वर्णकारकी निरधरमुलाकी भाँति, कन्धेपर मुलाकर होते हैं ॥ ९१ ॥

आअम्बरन्तकवोलं खल्लिअफ्फरजम्पिरिं पुरन्तोट्ठि ।
मा छिवसु त्ति सरोस समोसरन्ति पिअं भरिमो ॥ ९२ ॥

[आशावांछा करोमि स्वकितावरूपवशीनां सुरशोभिन् ।
वा सुशोभिं तरोर्न जगत्सर्वनीं भिन्नां समाम् ॥]

ईन्द्र बाह्यायनाय करोकपिडिह्य, एकविंशत्यार्ये कल्पयन्त्यारिषी सुमीश-
यरा एवं 'हृष्टे कृता मत्त' कश्चन रोषवर्धित जन्म्य इत्येवास्ती कल्पनीयिनाम्
तै सत्यम् अस्ति ॥ ११ ॥

मातापितृमोक्षरण्योप जग्या जगन्मि से मुक्तये ।

मण्डुमन्त्रादिहोसं तथै वि सा आहमुपमन्त्र ॥ १३ ॥

(जोड़ावरी विद्यमानताअनुसंधाना करति करत हुन ।

अनुकूलपरिचयः । हेयानि वा गन्धद्वयम् ।]

सौदागरीय व्यवसाय विषय है। इसी प्रकार वाणिज्य अर्थात् कारोबार के लिये आवश्यक सौदा विधा एवं कदमों की अनुकूलता विशेष-
वास्तव्य इसे देखते प्राप्तिविशेष किया है १३ ।

सप्त त्वा सप्तत्यधिकं भवति वि ते सुहृन् गण्यन्ति ॥४॥

सुप्रसिद्धमयात्रापरिचये १४ श्रीमन्मन्त्रिभूष बहुर १४ ॥

[वा त्वया त्वहस्तद्वयमजातिं च धृष्ट्या सम्भारद्विजम्भति ।

अनुविष्टमगपुद्गलैः । अथवाचि । अद्वि ।]

हे सुप्रिय कर्मणि गन्धर्विक होवेल्याची तुम्हारी वाचछाय पावी कुई
माझ्या बहु परीमवळ वयापरुईक्याची माई, माझ जी हो रही है ॥ ११ ॥

येहीम पि इशेरं न तीरए तामि बुद्धिपण्थमि ।

आहव्येति च मास्य इमेति क्वसेति अहर्हि ॥ ५५ ॥

[केवलमपि एभिः] न कदाचिद् दण्डिः कृतमिति ।

भाषितव्येति च अत्रोक्तिरुक्तैः ॥ १]

बारी बाबा, जबके विष्णुपुत्रीदेवकी, भुजोद्गाता भौकालमें लखी
 हई गलुकी कौंछि की अवसत बहोकी केंकिनेहल्लोकी मुद बारी बिवा
 या हल्लो ॥ १२ ॥

अङ्कुलिष्वर वेङ्कट मा नं वरपेरि होत पण्डितः ।

मम आदयमाएभई पुरिसाकन्ती विविमिदिद ॥ ९९ ॥

[कानुनविज्ञाना विषयस्य शीर्षे अथवा अधो अथवा मध्यस्थे स्थितम्]

॥ अथ अथर्ववेदस्य सूक्तानि ॥

यह बालिका वाफुसिका नामक स्त्रीकाकर खेले, हमे रोकना मत, हमे कुछ चीज होने दो, जिससे लघननारणीगुरुता लेकर विपरीतविहार करते समय क्लान्ति अनुभव न करे ॥ ९६ ॥

पउरञ्जुवाणो गामो मधुमामो जोअणं पई ठेरो ।
जुण्णसुरा साद्धोणा असई मा होउ किं मरउ ॥ ९७ ॥

[प्रचुरयुवा ग्रामो मधुनामो यौवन पति स्थविरः ।
तीर्णसुरा स्वाधीना असती मां भवतु किं त्रियताम् ॥]

गाँवमें अनेक युवक रहते हैं, माम भी मधुनाम है, नायिकाका यौवन पूर्ण है, किन्तु उसका पति स्थविर है, सुराभी पुरानी है, जिसको हतनी स्वाधीनता है, वह युवती अमती नहीं होगी तो क्या मरेगी ? ॥ ९७ ॥

बहुसो वि कहिज्जन्तं तुह वअणं मज्झ हृदयसंदिट्ठ ।
ण सुअं त्ति जम्पमाणा पुणरुत्तसअं कुणइ अज्जा ॥ ९८ ॥

[बहुशोऽपि कथ्यमान तव वचन मम हस्तमदिष्टम् ।
न धृतमिति जहन्ती पुनरुत्तरत करोत्यार्या ॥]

मेरेद्वारा प्रेरित सुहृदारी यात अनेक बार अनेक प्रकारसे उसमे कहे जानेपर भी, 'यह नहीं सुना गया' ऐसा कहकर वह आर्या ही सैकड़ोंबार पुनरुक्ति कर रही है ॥ ९८ ॥

पाअडिअणेहसवभावणिअमरं तीअ जह तुमं दिट्ठो ।
संवरणवावडाए अण्णो वि जणो तह व्वेअ ॥ ९९ ॥

[प्रकटितस्नेहसद्भावनिर्भरं तथा यथा ख इष्ट ।
सवरणव्यापृतया अन्योऽपि जनस्तथैव ॥]

स्नेहप्रकटन एवं पूर्णसद्भावसे नायिका जिसप्रकार सुहृद भी देख रही है, प्रेमको छिपानेकेलिए बाध्य हो, वह अन्यलोगोंको भी उसीप्रकार देखती है ॥ ९९ ॥

गेदह पलोअह इमं पइसिअवअणा पइस्स अप्पेइ ।
जाआ सुअपदमुअिण्णदन्तजुअलद्धिअं चोरं ॥ १०० ॥

[गृहीत प्रलोकयतेऽप्रहसितवदना पश्युरप्यपि ।
जाया सुतप्रथमोन्निवदन्तयुगलाङ्कित वदरम् ॥]

प्रकार गणमाकर प्रथम दिनार्द्धमें ही मेरी सखीने गृहभित्तको रेखाङ्कन द्वारा चित्रित किया है ॥ ८ ॥

ण वि तद् पदमसमागमसुरवसुदेपाविण्वि परिवोसो ।
जह वीथदिवहसचिलक्खल्लिखण घअणकमलम्मि ॥ ९ ॥
[नापि तथा प्रथमममागमसुरतमुखे प्राप्तेऽपि परितोष ।
यथा द्वितीय दिवससचिल्लिखिते घदनकमले ॥]

प्रथम समागममें सुरतमुखसे भी उस प्रकारका मुख नहीं मिला, जिस प्रकारका सन्तोष दूसरे दिन उसके सलज अवलोकनसे भूषित घदनकमलको देखकर मिला था ॥ ९ ॥

जे संमुद्दागव्वोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिचिच्छोहा ।
अम्हं तेअअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥
[ये संमुद्दागतव्यतिक्रांतवलितप्रिमप्रेषिताश्चिविशोभाः ।
अस्माकं ते मदनसरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

अन्य लोगोंके निकट जैसा हो होवे, हमारे निकट किन्तु प्रथमतः अनुनयार्थ सम्मुद्दागत होकर सत्यव्याप्त्य व्यतिक्रान्त होनेके समय विचलित होकर प्रियतम जय विशोभित इष्टि डालते हैं, तब वे मदनशर जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

इअरो जणो ण पाघइ तुह जहणारुहणसंगमसुदेह्लि ।
अणुहवइ कणअडोरो हुअवहवरुणणौ माहप्पं ॥ ११ ॥
[इतरो जनो न प्राप्नोति तव जघनारोहणसंगममुखकेलिम् ।
अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोमांहात्म्यम् ॥]

तुम्हारे जघनपर आरोहणरूप सङ्गममुखकेलि अन्य कोई अनुभव नहीं कर पाता । केवल कनकसुग्रही भूमि एवं वरुणके माहात्म्यका अनुभव कर सकते हैं ॥ ११ ॥

जो जस्स विहवसारो तं सो देइ त्ति किं तथ अरुछेरं ।
अगहोन्तं पि खु दिण्ण वोहग्ग तइ सवत्तीणं ॥ १२ ॥
[यो यस्य विभवसारस्त स ददातीति किमप्राश्चर्यम् ।
अभवदपि खलु दत्त दोर्भाग्य स्वया सपरमीनाम् ॥]

जिसका जो विभव है वह उसे ही देसकता है, इसमें क्या आश्चर्य ? किन्तु तुम्हारे पास जो नहीं है, ऐसा प्रियप्रणयमें वक्षितता तुम सपरिनियोंको दे सके हो, यही आश्चर्यका विषय है ॥ १२ ॥

प्रकार गणनाकर प्रथम दिनाईमें ही मेरी सखीने गृहभित्तको रेखाङ्कन द्वारा चित्रित किया है ॥ ८ ॥

ण वि तद् पद्मसमागमसुरवसुदेपाविण्वि परिओसो ।

जद्ध चीथदिअहसविलक्खलक्खिण्ण चअणकमलम्मि ॥ ९ ॥

[नापि तथा प्रथमममागमसुरतमुखे प्राप्तेऽपि परितोषः ।

यथा द्वितीय दिवससविलङ्घलक्षिते वदनकमले ॥]

प्रथम समागममें सुरतमुखसे भी उस प्रकारका सुख नहीं मिला, जिस प्रकारका सन्तोष दूसरे दिन उसके मलज अवलोकनसे भूषित वदनकमलको देखकर मिला था ॥ ९ ॥

जे संमुहागअचोलन्तवलिअपिअपेसिअच्छिचिच्छोद्धा ।

अम्हं तेमअणसरा जणस्स जे होन्ति ते होन्तु ॥ १० ॥

[ये संमुखागतव्यतिक्रांतवलितप्रियप्रेयसाक्षिविद्योभाः ।

अस्माकं ते मदनशरा जनस्य ये भवन्ति ते भवन्तु ॥]

अन्य लोगोंके निकट जैसा हो होवे, हमारे निकट किन्तु प्रथमतः अनुनयार्थ सम्मुखागत होकर तरपश्चात् व्यतिक्रान्त होनेके समय विचलित होकर प्रियतम जय विद्योभित दृष्टि डालते हैं, तब वे मदनशर जैसे प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

इअरो जणो ण पावइ तुद्द जहणारुद्धणसंगमसुहेल्लि ।

अणुहवइ कणअडोरो हुअवहवरुणाणं मादप्पं ॥ ११ ॥

[इधरो जनो न प्राप्नोति तव जघनारोद्धणसंगममुखकेलिम् ।

अनुभवति कनकदोरो हुतवहवरुणयोर्माहात्म्यम् ॥]

तुम्हारे जघनपर आरोद्धणरूप सङ्गममुखकेलि अन्य कोई अनुभव नहीं कर पाता । केवल कनकसूत्रही अग्नि एवं वरुणके माहात्म्यका अनुभव कर सकते हैं ॥ ११ ॥

जो जस्स विहवसारो तं सो देइ त्ति किं त्थ अच्छेरं ।

अगहोन्तं पि खु दिण्णं दोहग्ग तद्द सवत्तीणं ॥ १२ ॥

[यो यस्य विमवसारस्त स वधातीति किमत्राश्चर्यम् ।

अभवदपि खलु दध दीर्भायै स्वया सपत्नीनाम् ॥]

जिसका जो वैभव है वह उसे ही देखकता है, इसमें क्या आश्चर्य ? किन्तु तुम्हारे पास जो नहीं है, ऐसा प्रियमण्यमें वञ्चितता तुम सपत्नियोंको दे सके हो, यही आश्चर्यका विषय है ॥ १२ ॥

[तन्मिथ कर्तव्य यत्किञ्च व्यसने देशकालेषु ।
आलिखितभित्तिपुस्तकमिथ न पराङ्मुखं विप्रति ॥]

जो मिथ उपयुक्त देश पक्ष कालमें व्यसन उपस्थित होनेपर भित्तिपर
आलिखित पुस्तकिकाके समान पराङ्मुख हो खड़ा नहीं होता, ऐसा ही मिथ
बनाने योग्य है ॥ १० ॥

बहुआह णइणिठञ्जे पढमुग्गयसीलणण्डणविलक्खं ।
उट्ठेइ विहंगउलं हाहा पक्खेहिं च भणन्तं ॥ १८ ॥
[वध्वा नदीनिकुञ्जे प्रथमोद्गतशीलसण्डनविलक्षम् ।
उद्घोष्यते विहगकुल हा हा पक्षैरिव भणत् ॥]

निम्नत नदीतटस्थित निकुञ्जमें वधूके प्रथम सघटित शीलमङ्गसे लजित हो
पत्ता संचालनद्वारा ही जैसे 'हा हा' करते-करते पक्षी उड़ गये ॥ १८ ॥

सच्चं भणामि बालअ णत्थि असक्क वसन्तमासम्स ।
गन्धेण कुरवआणं मणं पि असइत्तणं ण गमा ॥ १९ ॥
[सत्य भणामि बालक नास्त्यक्षय वसन्तमासस्य ।
गन्धेनकुरवकाणामनागप्यसतीत्य न गता ॥]

अरे बालक, सच ही कह रहा हूँ कि वसन्त मासकेलिए अकरणीय कार्य
कोई भी नहीं है, तथापि कुरवककुसुमके गन्धसे यह रमणी ईषत् असतीत्यको
भी प्राप्त नहीं हुई ॥ १९ ॥

एकैकमवइवेठणविवरन्तरदिण्णतरलणअणाए ।
तइ धोलन्ते बालअ पञ्जरसउणाइअ तीण ॥ २० ॥
[एकैकवृत्तिवेष्टनविवरान्तरदत्तवरलनयनया ।
एवमि व्यसिक्रान्ते बालक पञ्जरशकुनायित तथा ॥]

हे बालक, तुम चले गए, एक-एक कमसे वृत्तिवेष्टनके समस्त विवरान्तरमें
तरल नेत्र प्रदानकर तुम्हें देखनेकेलिए यह रमणी पिञ्जरेमें स्थित पक्षिणी
जैसा आचरण कर रही थी ॥ २० ॥

ता किं करेउ जइ तं सि तीअ वइवेट्टपेलिअथणीए ।
पाअङ्कुट्टप्पिखत्तणीसहङ्गीअ वि ण दिट्ठो ॥ २१ ॥
[सर्कि करोमु यदि ध्यमसि तथा वृत्तिवेष्टनप्रेरितस्वनया ।
पादाङ्कुष्ठार्थचिन्तितःसहाङ्गयापि न इष्ट ॥]

इतिवैदिक काल सेमी कर्मीको व्यापिकर रैरके काले अगुदेके वि काल
अत्राचार्यक कमी होवैवत जी, यदि कद कमी सुद्धे न देखे को कद जीव काल
अद कमी है १० ११ १२

विधर्मप्रवृत्तस्तो ह्यनवाह्यारमिषायपीड्यम् ।

रिज्जद बहुगीणायें श्रीबन्ध पदिमप्रभार ॥ ३२ ॥

[विष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य अष्टमोऽध्यायः]

दीर्घाने कायली ह्या शीतका शिबिर कायदा ।

विषयका सत्य ज्ञानेन नन्दनं कुरुते कामधामादे दीवदर विमले
अमृतं जपमे श्रीं हो विषयका श्रीवादी हेतव्य मान्यहीन अथा गद्दी है ॥

સાદુર અભિપ્રાય મિત્રોના આગ્રહ પર આ બુક બંધાયેલી છે.

अहं पुनिसमस्तविभक्तकालव्यपन्ने हीसन्ति ॥ १३ ॥

[त्वन्नि ज्योतिषाद्यभि वाक्येन शब्दा वाक्येति शब्दा नु सन्निवृत्तिरिति ।

मन्त्राङ्गणमभिरुच्यते ॥ १ ॥

हे बाबाद, तुम्हारे लगे जानेके समय तुमने देवानेदेकिन् बल्ले अपने हाथोंमें
हृद अर्थात् निष्कियन कर्ण पहिनुव दिया था कि ऐसा क्या बननी चानचला
बनानी कीरने कहा हो। पिली ३ १३ ४

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

આદિ રિપ્પા સધારા બસા સદેશ સુખબા ધર્મસન્તો ॥ ૧૪ ॥

[अथानन्तरं पुनः श्रीगुरुभक्त्याम्नां प्रशंसासिद्धिः ।

मया हस्तपुस्तकसिद्धयः। इति सूत्रमिदं समाप्तम् ॥]

[illegible]

अङ्गुलिहरेष्वङ्गं स्यात् करदि स्यादापिञ्ज एकोऽपि ।

सो वि सारिपुं होदिह तुमं पि मुखा बलिजिह्विहि ॥ २५ ॥

[अर्थोपनिषद्सिद्धिं तत्राह भगवन् ।

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

[illegible]

दिअहं खुडक्किआप तीण काऊण गेहवावारं ।

गरुप वि मण्णुदु खे भरिमो पाअन्तसुत्तस्स ॥ २६ ॥

[दिवस रोपमूकायास्तस्या कृत्वा गेहव्यापारम् ।

गुरुकेऽपि मन्थुदु खे स्मराम् पादान्तसुप्तस्य ॥]

सारे दिन घरके काम-काजमें लगे रहकर रोपसे नीरवा मेरी प्रिय कामिनीका चित्तफलेन आत्यन्त भारी होनेपर भी, अपने पादान्तमें उसके शयनकी धात स्मरण करता हूँ ॥ २६ ॥

पाणउडीअ वि जलिरुण हुअवहो जलइ जण्णवाडम्मि ।

ण हु ते परिहरिअवा विसमदसासंठिआ पुरिसा ॥ २७ ॥

[पानकृत्यामपि ज्वलित्वा हुतवहो ज्वलति यज्ञघाटेऽपि ।

न खलु ते परिहर्तव्या विषमदशासंस्थिता पुरुषा ॥]

मद्यपानकुटीमें प्रज्वलित होकर भी अग्नि यज्ञ वेदीमें भी प्रज्वलित होती है । विषम अवस्थामें संस्थित जैसे पुरुषोंका भी कमी त्याग नहीं करना चाहिए ॥ २७ ॥

जं तुज्ज सई जाआ असईओ जं च सुहअ अहो वि ।

ता किं कुट्टउ थीअं तुज्ज समानो जुआ णत्थि ॥ २८ ॥

[यत्तव सती जाया असत्यो यच्च सुमग वयमपि ।

तर्किं स्फुटतु थीज तव समानो युवा नास्ति ॥]

हे सुमग, तुम्हारी जाया तो सती है और मेरी अमती, इसका मूल कारण क्या प्रकट होता है ? तुम्हारे समान युवक कोई नहीं है, क्या यही कारण नहीं है ? ॥ २८ ॥

सत्त्वस्सम्मि वि दद्धे तहवि हु हिअअस्स णिव्वुद्धि व्वेअ ।

जं तेण गामडाहे हत्थाहत्थि कुडो गहिओ ॥ २९ ॥

[सर्वस्वेऽपि दग्धे तथापि खलु हृदयस्य निर्धृतिरेव ।

पत्नेन ग्रामदाहे हस्ताहस्तिकया कुटो गृहीत ॥]

गाँवके जलने में सबकुछ अल जानेपर भी मेरे हृदयमें अत्यन्त सुख अनुभूत हो रहा था, कारण, उसने मेरे हाथसे अपने हाथ में चढ़ा ग्रहण किया था ॥ २९ ॥

जापज्ज वणुहेसे कुल्लो वि हु णीसाहो झडिअपत्तो ।

मा माणुसम्मि लोप तार्ह रसिओ दरिहो अ ॥ ३० ॥

[वाचसां वसोदेवैः पुनरोधैः सप्त विंशत्या विहितम् ।

४४ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

ब्रह्मनिर्णयं ज्ञात्वा ह्यस्य एवं गच्छिष्यसि कुत्रापि यदि ज्ञानं होला है तो ही, किन्तु ज्ञानब्रह्मोन्मेषं ज्ञात्वाहीनं एवं वसिष्ठस्य वदतीं इति न ही ॥ ३ ॥

हस्त च साहस्यार्थं ममद्विषयसिद्धिं च साहसं मया ।

आपदा गालाड्या वासाएचो दुखा अ.म.१.१

[सत्य व श्रीकल्याणप्रसन्नप्रियदर्शनं च सादृष्टं मया ।

काम्यसि योगपुरी कर्मावधारणसूत्रम् ॥]

सीढ़ाकलीया प्रचण्ड अस्त्रमय दूर गर्द-अस्त्रों कायल रहित भी मापी
राखीं बसके सीढ़ाकलीया काय दूर भी अस्त्रिकाय कायल कायलकी काय
कायले हैं ॥ ३३ ॥

हे वेदविभ्यः ब्रह्मस्य शब्द इत्यादि पञ्चमः शेषः ।

कथं वि ममवत्तया मत्तुप्तेर्ष गत वैर्ष ॥ ३२ ॥

[ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।]

क्या कहें ? क्या कहें ? क्या कहें ? क्या कहें ? क्या कहें ?

के बारे में सारांश भी कर दें। उस छुट्टी में ईश्वरकृपा हो कर रा
गया है। कुछ निराशाजनक भी होना शुरू हो गया है ॥ ३२ ॥

एषाग्रजपिअमोवीर पाउण्ड मज्जमर्ले वधिय्यर्ले ।

उत्पत्तिश्चैव विनाशश्चैव ॥ ३३ ॥

[सायबसदसिद्धन्तोषी वयातु वनकवली वसिष्ठकव ।

वाणिज्यविभाग, मुंबई १९४७ ॥

[illegible]

अस्मिन् काले विष्णु पदार्थं विष्णुम् अङ्गुलिम् विष्णुद्विष्य विष्णुः ।

सर्वस्य तादृशि क्षेत्रे हिमा सम्यक् क्षेत्रे चि न्निर्दिष्टं ॥ १४ ॥

[**सत्यं वाचं धेनुमुपासीत ।**]

कल्प कर्मसिद्धिः कर्माणि वैशेषिके च दृश्यन्ते ।

कम कपड़ोंवाले किंग बनकर निकलीं एलि अभिनेता सुश्री है। वही मर्जी

उसकी दृष्टि गढ़गयी है, इसी कारण, कोई उसके सारे अङ्गोंको नहीं देख सका है ॥ ३४ ॥

विरहे विसं व विसमा अमममया होइ संगमे अदिशं ।
किं विहिणा समअं चिअ दोहिं वि पिआ विणिम्मिअया ॥ ३५ ॥
[विरहे विपमिअ विपमामृतमया भवति सगमेऽधिकम् ।
किं विधिना सममेव ब्राम्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

प्रिया विरहावस्थामें विपके समान विपमा एव सङ्गममें अत्यधिक
अमृतमयी समस्त पड़ती है, तब क्या विधाताने इन दोनों वस्तुओंद्वारा समान
भावसे ही उसका निर्माण किया है ॥ ३५ ॥

अहंसणेण पुत्तअ सुट्ठु वि नेहाणुयन्धघडिआइं ।
दत्थउडपाणिआइं व कालेण गलन्ति पेम्माइं ॥ ३६ ॥
[अवर्शनेन पुत्रक स्रष्टुपि स्नेहानुयन्धघटितानि ।
हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

हे पुत्रक, हस्ताञ्जलिस्थित जल जिसप्रकार समय पाकर गलित हो जाता
है, उसीप्रकार स्नेहानुयन्धनमें स्रष्टु सघटित प्रेम भी बहुत दिनतक न दिखायी
पड़नेके फलस्वरूप विलुप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

पइपुरओ व्विअ णिज्जइ विच्छुअदट्ठेत्ति जारवेज्जहरं ।
णिउणसहीकरधारिअ भुअज्जुअलन्दोलिणी वाला ॥ ३७ ॥
[पतिपुरत एव नीयते वृश्चिकदष्टेति जारवैद्यगृहम् ।
निपुणसखीकरघृता भुजयुगलान्दोलनशीला वाला ॥]

वृश्चिक दशनसे कातर होनेके बहाने वह वाला पतिके समीपसे ही चतुर
सखियों द्वारा घृत अवस्थामें ही भुजयुगलको आन्दोलित करने-करते जारवैद्यके
घर ले जायी जारही है ॥ ३७ ॥

विकिणइ माहमासम्मि पामरो पाइडिं घइल्लेण ।
णिद्धूममुम्मुरव्विअ सामलीअ थणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥
[विक्रीणीते माघमासे पामर प्रावरण बलीवर्देन ।
निर्धूमसुसुरनिभौ श्यामश्या स्तनौ पश्यन् ॥]

माघके महीनेमें पामरमन, धूमरहित धानकी भूसीकी अग्निके समान

[वाधवां वधोदेहे कुम्भोदरी कङ्क निजाला विविधरथ ।

मा माधुने कङ्क लज्जी रक्षितो वृद्धिः ॥]

वधपुत्रिणी वाधादुत्पन्न एवं वधिवरत्न कुम्भोदर वधि वाध होकर है
हो, किन्तु माधवधोदेहीमें वाधकी व एवं रक्षितरत्न वही वधि व हो ॥ १ ॥

तस्मै च सोद्विग्नार्थं ममहितासरितं च सादृशं मङ्ग ।

जायते पाप्मादरी वासास्तादृशो यः ॥ ११ ॥

[तस्य च वीरान्वयुक्तवद्विषयार्थं च सादृशं मङ्ग ।

जायते योद्विग्नो वधोद्विग्नार्थः ॥]

योद्विग्नोक्त वधवत् वधवत् एवं वधोद्विग्नोक्त वधवत् रथि वी वधि
वधो वधो वीरान्वयुक्त वध एवं वी वधवत् वधवत् वधवत् वधवत् वधवत्
जायते है ॥ ११ ॥

ते वीरिण्या वधस्तथा वाध कुम्भोदर वाधुष्य सेवा ।

माझे वि वधवत्तमो वृत्तुष्योक्तं वध वेम् ॥ १२ ॥

[वे वीरिण्या वधवत्तमो कुम्भोदर वधवत् वीर ।

वधवत् वधवत्तमो वृत्तुष्योक्तं वध वेम् ॥]

वे वी वधवत् वध है वध कुम्भोदर वृत्तुष्योक्त वी वध व
वध है । वध वधवत्तमो वी वधवत् वृत्तुष्योक्त वी वध है ॥ १२ ॥

वधवत्तमो वधवत्तमो वीर वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ।

वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ॥ १३ ॥

[वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ।

वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ॥]

वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो
वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो
वधवत्तमो है ॥ १३ ॥

वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ।

वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ॥ १४ ॥

[वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ।

वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो ॥]

वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो
वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो वधवत्तमो
वधवत्तमो है ॥ १४ ॥

ससकी इटि गदगयी है, इसी कारण, कोई उसके सारे अङ्गोंको नहीं देख सका है ॥ ३४ ॥

विरहे विसं व विसमा अमममया होइ संगमे अहियं ।

किं विहिणा समअं विअ वोहिं वि पिआ विणिम्मिअया ॥ ३५ ॥

[विरहे विपमिव विपमामृतमया भवति सगमेऽधिकम् ।

किं विधिना सममेव ह्याभ्यामपि प्रिया विनिर्मिता ॥]

प्रिया विरहावस्थामें विपके समान विपमा एव सङ्गममें आयधिक अमृतमयी समस्त पड़ती है, तब क्या विधाताने इनदोनों वस्तुओंद्वारा समान भावसे ही उसका निर्माण किया है ॥ ३५ ॥

अहंसणेजं पुत्तअ सुट्ठु वि जेहाणुयन्धघड्डिआइं ।

हत्यउडपाणिआइं च कालेण गलन्ति पेम्माइं ॥ ३६ ॥

[अदर्शनेन पुत्रक स्रष्टुपि स्नेहानुयन्धघटितानि ।

हस्तपुटपानीयानीव कालेन गलन्ति प्रेमाणि ॥]

हे पुत्रक, हस्ताङ्गलिस्थित जल जिसप्रकार समय पाकर गलित हो जाता है, उसीप्रकार स्नेहानुयन्धनमें स्रष्टु सघटित प्रेम भी बहुत दिनतक न दिखायी पड़नेके फलस्वरूप विलुप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥

पहपुरओ विय गिज्जइ विच्छुअदट्ठेत्ति जारवेज्जहरं ।

गिउणसहीकरघारिअ भुअज्जुअलन्दोलिणी वाला ॥ ३७ ॥

[पतिपुरत एव नीयते ब्रुश्चिकदष्टेति जारवैद्यगृहम् ।

निपुणसखीकरघृता भुज्रयुगलान्दोलनशीला वाला ॥]

ब्रुश्चिक दशनसे कातर होनेके बहाने वह वाला पतिके समीपसे ही चतुर सखियों द्वारा घत अवस्थामें ही भुज्रयुगलको आन्दोलित करने-करते जारवैद्यके घर ले जायी जारही है ॥ ३७ ॥

विक्किणइ माहमासम्मि पामरो पाइडिं चइल्लेण ।

गिद्धममुम्मुरव्विअ सामलीअ थणो पडिच्छन्तो ॥ ३८ ॥

[विक्षीणीते माघमासे पामर प्रावरण बलीवर्धेन ।

निर्धूममुर्मुनिभौ श्यामवया स्तनौ पश्यन् ॥]

माघके महीनेमें पामरवन, धूमरहित धामकी भूत्तीकी अग्निके समान

मी दूमेरेके हृदयको सन्तोष देनेवाले प्रियपाष्य होनेगिने व्यक्ति ही जानते हैं ॥ ४२ ॥

उज्जइ पट्टस्स ललितं पिआइ माणो खमा समत्थस्स ।

जाणन्तस्स अ भणितं मोणं च अआणमाणस्स ॥ ४३ ॥

[शोभते प्रभोर्ललित प्रियाया मान खमा समर्थस्य ।

जानतश्च भणित मौन आजानात ॥]

प्रभुकी स्वेच्छाक्रीदादि, प्रियाके मान, ममर्थों की खमा, जानियों का कथन एवं अज्ञानीका मौन शोभा पाते हैं ॥ ४३ ॥

वेविरसिण्णकरङ्गुलिपरिग्गह्वरसिअलेहणीमगे ।

सोत्थि विअ ण समप्पइ पिअसहि लेहम्मि किं लिद्धिमो ॥ ४४ ॥

[वेपनशीलस्त्रिकराङ्गुलि परिग्रहस्थितिलेखनीमार्गे ।

स्वस्येव न समाप्पते प्रियसखि सेरे किं लिप्ताम ॥]

अरी प्रियसखि, लेख में मैं और क्या लिखूंगी ? मेरे कम्पनशील एवं स्वेद्युक्त अङ्गुलीके परिग्रहसे स्थलित लेखनीके मार्गमें 'स्वस्ति' लिखना ही समाप्त नहीं होता ॥ ४४ ॥

देव्वम्मि पयहुत्ते पत्तिअ घडिअं पि विहडइ णराणं ।

कज्जं चालुअवरणं एव कहुं यन्धं विअ ण एइ ॥ ४५ ॥

[दैव पराङ्मुख्ये प्रतीहि घटितमपि विघटते भराणाम् ।

कार्यं चालुकावरण इव कथमपि बन्धमेव न ददाति ॥]

दैव यदि पराङ्मुख हो तो मानवकृत कार्य भी नष्ट हो जाता है, इसपर विश्वास करना, इस अवस्थामें चालुकानिर्मित दीवालकी नाई कोई कार्य रोक नहीं मानता ॥ ४५ ॥

मामि हिअअं घ पीअं तेण जुआणेण मज्जमाणाए ।

ण्हाणहलिहाकहुअं अणुसोत्तजलं पिअन्तेण ॥ ४६ ॥

[मातुलानि हृदयमिव पीत तेन यूना मज्जन्याः ।

स्नानहरिद्राकटुकमनुस्रोतो जल विषता ॥]

हे मामी, मानशीला मेरे स्नान हरिद्रा द्वारा कटुक जलके प्रवाहगत होनेपर उसे पीकर उस युवकने जैसे मेरेही हृदयको पी डाला है ॥ ४६ ॥

मिथिम् कस्यासम् मिथ न विवसद् औप्यर्चं अतिहर्त्त ।

दिग्धा दिग्धेरिं सप्ता न दाम्नि किं विठ्ठुणे कोधो ॥ ४३ ॥

[औपिष्ठमद्याज्यमेव न विवर्तते औप्यर्चमिति श्रुत्यन्तम् ।

विपसा दिग्धैः कृता न न्यस्यति किं विपुरो कोधः ।

आपन औप्यर्च को न्यसित है औप्यर्च दृष्टान्त नहीं आयेगा औप्यर्च नहीं जाता कभी दिग्ध कृतार्थ नहीं होते कि औ औप्य विपुर्च नहीं है ? यह क्या नहीं का कृता ॥ ४३ ॥

उप्यर्ह्यद्वयार्थं वि सङ्गार्थं यो मामर्थं ललो कर्त्तव्य ।

पञ्चार्हं वि विम्वपञ्चार्हं पञ्चार्हं कल्पदि कल्पमि ॥ ४४ ॥

[उत्तरादित्रयमावाहयि कल्पार्थं को मामर्थं कल्प दृष्ट ।

कल्पमि विम्वपञ्चमि कल्पं कर्त्तव्यं कल्पम् ॥]

को उप्यर्ह्यद्वयार्थं ललो है, कन कल्पिका दान-दान औप्य ही कल्प है—
केवल कल्प । विम्वपञ्चक कल्पेव ही केवल औप्य ही उप्यर्च कल्पमि
करते हैं ॥ ४४ ॥

मज्ज मयं मज्जार्थं धम्ममयार्थं वि लस्स सुखमस्स ।

मज्जा विम्वील्लिखच्छी वज्जपरिवाहि धरे कुम्भर ॥ ४५ ॥

[मज्ज मया मज्जार्थं धम्ममयार्थमिति उत्तरमुक्तम् ।

मज्जा विम्वील्लिखच्छी वज्जपरिवाहि धरे कुम्भर ॥]

मज्ज मये मज्जमयार्थं को कुम्भर वज्ज सुखमये वज्ज अतिवृत्तमिति कथा
नयेगा, यह औप्यर्च आवां औप्य औप्य मयों ही वज्जपरिवाहि मज्जमय
रही है ॥ ४५ ॥

सुखयो न कुम्भर मिथम् मज्ज कुम्भर विप्यिम् न विम्वर ।

मज्ज विम्वीर न अम्भर मज्ज अम्भर लज्जिमो होर ॥ ४६ ॥

[सुखयो न कुम्भरमेव मज्ज कुम्भरि विम्विं न विम्वरमिति ।

मज्ज विम्वरमिति न अम्भरि कल्पिमे मज्जमिति ॥]

सुखम कभी कुम्भर नहीं होते कुम्भर औप्यर्चमिति अतिवृत्तमिति कभी
विम्वर नहीं करते, विम्वर करते भी हैं को यह सुखमे अम्भरमिति नहीं होकर,
अम्भरमिति करते भी हैं को अम्भर होते हैं ॥ ४६ ॥

सा मज्जो आ इत्थं तं मिर्त्तं कं विम्वरं वसम् ।

तं कम् अम्भर सुखा तं विम्वरं कदि यम्मा ॥ ४७ ॥

[सोऽर्थो यो हस्ते तस्मिन् यन्निरन्तरं भवत्यने ।

तद्रूपं यत्र गुणास्तद्विज्ञां यत्र धर्मं ॥]

वही वास्तविक अर्थ है जो हस्तगत हो गया है, वही मित्र है जो व्यवसनमें निरन्तर समीप रहे, वही रूप है जिसमें गुणोंका मयोगमी हो, एवं वही विज्ञान है जिसमें धर्ममी रहे ॥ ५१ ॥

चन्द्रमुहि चन्द्रघण्टा दीहा दीहन्ति नुह विओत्रम्मि ।

चउजामा सअजाम च जाणिणी कए वि घोलीणा ॥ ५२ ॥

[चन्द्रमुहि चन्द्रघण्टा दीर्घा दीर्घाणि तथ विओने ।

चतुर्धामा दत्तयामेव यामिनी कथमप्यतिमान्ता ॥]

हे दक्षिणदेने, दीर्घलोचने, तुम्हारे शिरह में चन्द्रघण्ट दीर्घ एवं चतुर्धाम विशिष्ट होनेपर भी दत्तयामपरिमित रूपमें प्रतिभामित यामिनीको मैंने किस प्रकार धिताया है ? ॥ ५२ ॥

अउलीणो दोमुहओ ता मएरो भोअणं मुहे जाय ।

मुरओ च गल्लो जिणम्मि भोअणे विरसमारसइ ॥ ५३ ॥

[अकुलीनो द्विमुल्लन्तायन्मधुरो भोजनं मुग्धे यावत् ।

मुरज इव गल्लो जीर्णं भोजने विरसमारसति ॥]

जय तक सुखमें भोजन द्रव्य रहता है, सभी तक अकुलीन द्विमुख खलगण मृदङ्गकी नाई मधुर बातें करते हैं, किन्तु भोज्य वस्तुके जीर्ण होजानेपर विरस बातों में निन्दा आदि करते हैं ॥ ५३ ॥

तह सोणहाइ पुलइओ दरवलि अन्तइतारअं पहिओ ।

जह चारिओ वि घरसामिण्ण ओलिन्दए घसिओ ॥ ५४ ॥

[तथा स्तूपया प्रलेकितो दरवलिताघंसारक पथिक ।

यथा चारितोऽपि गृहस्वामिना अलिन्दके सुतः ॥]

आँखके आधे तारेको घोड़ा चल देकर गृहस्थकी पुत्रवधूने पथिकको इस प्रकार देखा है कि गृहस्थामीद्वारा वर्जितहोकरभी यह गृहके अलिन्दमही घास करने लगा ॥ ५४ ॥

लहुअन्ति लहु पुरिसं पच्चअमेत्तं पि दो वि कज्जाइं ।

णिच्चरणमणिच्चूदे णिच्चूदे जं अ णिच्चरं ॥ ५५ ॥

[कवचप्री कवच इत्येव कवचमाचक्षते इति अत्रि उच्यते ।

निर्वाणमणिर्हि मणिर्हि यथा निर्वाणम् ।]

पर्वकले सहायक अथवा व्यक्तियों की की कर्मों की ओर ही अनुक्रम लागते हैं—(प्रथम) कार्यके अविपन्न होवैवासी आत्मसुखीय विवेक पूर्व (द्वितीय) कार्यके विपन्न होवैवासी आत्मसहायक विवेक ॥ ५५ ॥

ॐ गङ्गाय नमः ।

॥ अथ मन्त्रः ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

[४८]

समाधिपत्रकसहित विवाहसंस्कारोंके लिये ०]

हे हृदि, कलक कलहप्रसवे कलर निवेष्टित प्रकाशकरी भाँठि जसने
हृद लभप्रसवेक्षण कल्पितप्रसवे लभ प्रसाधनर कर्षी होऊ हृद भिक्षकी
हेर गरी हो ॥ ५६ ॥

वाचिस्पतिमिश्रमहाशयः एषः साहस्यः सः सः सः ।

पृष्ठ परे इतिमन्त्रः पृष्ठमेतापनी कसर ॥ ५० ॥

॥ इति विष्णुस्मृत्यादिभिः कृतं सत्यं धर्मसंज्ञकं सत्यं ॥

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय काशी

वेदमते दिवसे एक निमेषकाल आत्मद्वय एक एककाशीने निमेष एक
कृत्स्नकाल रहा है कि एक जगत् द्वय एककालीन इन्द्रियद्वय आत्मद्वय
रहा है ॥ ५ ॥

ममकथा इन्द्रासीपिब्रह्मपौषभिरुत्तरेदि तद्वेदि ।

कल्पसिद्धिं वि च शीघ्रं हि क्वचि ननु ह्यन्यथैहि ॥ ५८ ॥

[अथ कलकत्ताप्रदेशविषयक नीच विवरणदाता]

अथानुपदिश्यामि ॥ जीवस्य हि दुर्गन्धं दृष्टव्यमप्यहम् ॥

इतिहासके अनुसार, पञ्चविंशति, बीस, विंशति एवं द्वादश नामके यह दसवीं शताब्दी-समाप्तका कार्य है। सम्प्रति नहीं कर पानेही है, कार्यही प्राप्त हो कर नहीं है ॥ १ ॥

मन्त्रपश्यन् हम्ममस्तनमिमिनि पञ्चदिग्गजपरिजितम् ।

एतच्छिष्यं च विमं पुण्यम कथयन्तभी होहि ॥ ५९ ॥

[illegible]

राष्ट्रपति का पिता हज़रत अल्लखानजी मल्लू हैं।

हे पुत्रक, माममात्र प्रसूता, छह मास गर्भिणी, एक दिनके ज्वरसे आतुरा
एव रङ्गभूमिसे प्रत्यागता, इस प्रकार प्रियाओंके प्रति कामयमान होना ॥ ५९ ॥

पडिवप्स्वमण्णुपुञ्जे लावण्यउडे अणङ्गगअकुम्भे ।

पुरिस्ससअद्वियअवरिय कीस थणन्ती थणे वहसि ॥ ६० ॥

[प्रतिपद्यमन्युपुञ्जौ लावण्यकुटायनङ्गाजकुम्भौ ।

पुरुषशतद्वयघृतौ किमिति स्तनन्ती स्तनौ वहसि ॥]

सपरनीरूप प्रतिपद्यके मनस्तापविधायक, लावण्यकलश सदृश, मदन
हस्तीके कुम्भ तुल्य एव शतशत पुरुषोंके हृदयमें अभिलपित अपने स्तनद्वय
किस कारण काँखने जैसे शब्दोंके साथ वहन कर रही हो ॥ ६० ॥

घरिणिघणत्थणपेह्लणसुहेल्लिपडिअस्स होन्तपडिअस्स ।

अवसउणङ्गारअवारविट्ठिदिअहा सुहावेन्ति ॥ ६१ ॥

[गृहिणी घनस्तनप्रेरणसुखकेलिपतितस्य भविष्यत्पथिकस्य ।

अपशकुनाङ्गारकवारविट्ठिदिवसा सुखयन्ति ॥]

गृहिणीके स्थूलस्तनपीडनजनित सुखकेलिमें निमग्न अचिर भविष्यमें
प्रवासगामी नायकके पथमें शकुनशास्त्र विरोधी मङ्गलवार एव भद्रादौषमें अशुभ
दिवस यात्राविरोधी होनेके कारण सुखदायक प्रतीत होते हैं ॥ ६१ ॥

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा ।

ओस्सई वन्दणमालिअ व्व दिअहं विअ घराई ॥ ६२ ॥

[सा तव कृतेन बालकानिदा गृहद्वारतोरणनिषण्णा ।

अवशुष्यति वन्दनमालिकेव दिवसमेव घराकी ॥]

हे बालक, तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षामें वह दीना नायिका सर्वदा
वन्दनमालिकाकी नाई गृहद्वारके तोरणपर बैठी रहकर एक दिनमें ही शुष्क
होती जा रही है ॥ ६२ ॥

हसिअं सहत्थताल सुक्खवड उवगएहिं पडिपहिं ।

पत्तअफलाणं सरिसे उड्डीणे सूअविन्दम्मि ॥ ६३ ॥

[हसिसं सहस्तताल शुष्कघटमुपगतै पथिकै ।

पत्रफलानां सदृशे उड्डीने शुक्लवृन्दे ॥]

शुष्क घटवृक्षके तले उपस्थित पथिक, पत्र एव फलके समान शुकोंके उड़
जानेपर, हाथ से ताली बजाकर हँसे थे ॥ ६३ ॥

[कथ नाम मय्यानया म रमाकगुणोऽपि मनसाः पतित ।

भयया मदिलानां दिर कोऽपि न हृदये मरिष्ठमेत]

उम नायिकाके जगने रमाकगुण रमनसाः विमलकार भयगत द्वय ?

भयया मदिलानां दिर हृदये कोर्द्ध निराकार दिर रहीं रद मरणा ॥ ६८ ॥

मुअणु यअण छिअन्तं मूर्त्तं मा साउत्ताज जगिति ।

एअम्म पदुअम्म अ जाणउ कअरं मुअण्णत्तं ॥ ६९ ॥

[सुतनु पदन रमनत्त मूर्त्तं मा मयाअयेन पाराय ।

पमय पदुअय न माअणु नगरासुममरंम् ॥]

८ मुगदु, करने पदमसो मूर्त्तस्तरवाले मूर्त्तसो मुन मयाअय द्वारा

रोचना मत, मुगदो पदम और कमलमें विमलकारनं अथिर मुगद है, पद
मूर्त्तसो जानलेने हो ॥ ६९ ॥

माणंमहं प पिअइ पिअइ माणंमिणीअ दइअम्म ।

फरसंपुअरलिउअणणाइ मइराइ गण्णम्मो ॥ ७० ॥

[मानौकमिष गीयने प्रियया मनमियन्या द्रवितम् ।

करमपुअरलितोर्णानमया मदिराया गण्णयः ॥]

प्रियपक्षिके करमपुट द्वारा ऊपर उठावे गण मुमदेवाली मनमियनी प्रिया
प्रियतमप्रदत्त मदिरागण्णयसो मान दूर करनेकी औपधिन्ग सं पी रही है ॥७०॥

फहँ सा निअयणिजइ जीअ जहा लोइअम्मि अअम्मि ।

दिट्ठी दुअलगाइ एर पदुअलिआ ण उत्तरइ ॥ ७१ ॥

[कथ मा निर्यण्यतां यस्या यथालोकिनेऽन्ने ।

दृष्टिर्दुर्बला गौरिय पद्ववतिता नोत्तरति ॥]

जिम रमर्गाके जिम अअपर जिम किमीकी दृष्टि पद जाती है, पदोंमे
पद्ववतिता दुर्बल गायकी भौति पद फिर ऊपर नहीं उठती, {उमके समप्र
पौन्दर्यका वर्णन किस प्रकार हो सकता है ? ॥ ७१ ॥

कीरन्ती विअ णामइ उअय रद्वय सत्तअणे मेत्ती ।

सा उण सुअणम्मि कआ अणहा पाआणरेइ वय ॥ ७२ ॥

[क्रियमाणं च नश्यद्युद्धके रेमेव मलजने मैत्री ।

मा पुनः सुजने कृता अनया पापाणरेमेव ॥]

उम नायकने अत्यन्तकष्टसे मेरे हृदभावसे मूलयन्धपनियमें प्रथित दोनों बाहुओंको छोड़ा था, एवं मैंने भी किमी प्रकार उसके चक्षुस्थलके ऊपर उभड़े हुए स्तनद्वय को छोड़ दिया है ॥ ७६ ॥

अणुणमपसाइआप तुज्ज घराहे चिरं गणन्तीप ।
अपहुत्तोहमदत्थजुरीअ तीप चिरं रुण्णं ॥ ७७ ॥

[अनुनयप्रसादितया तवापराधीश्चिर गणयन्त्या ।
अप्रभूतोभयहस्ताहुत्या तथा चिर रुदितम् ॥]

मेरे अनुनयसे प्रमत्त होकर भी वह बहुत देरतक तुम्हारे अपराधोंकी गणना करते करते, दोनों हाथोंकी अङ्गुलियोंको अममयं जान बहुत देर रोयी थी ॥ ७७ ॥

सेअच्छलेण पेच्छह तणुप अङ्गम्मिसे अमाअन्तं ।
लावण्णं ओसरइ व्व तिवलिसोवाणवत्तीप ॥ ७८ ॥

[स्वेदच्छलेन पश्यत तनुकेऽङ्गे तस्या अमात् ।
लावण्यमपसरतीध त्रिषलीसोपानपक्तिमि ॥]

देखो, उस नायिकाका लावण्य, उसके कृश अङ्गमें समा न सकनेपर जैसे स्वेदके बहाने त्रिषली (उदरभागकी लम्बी रोमरेखा) रूप सोपानपक्ति द्वारा उत्तर रहा है ॥ ७८ ॥

देव्वाअन्तम्मि फले किं कीरइ एत्तिअं पुणो मणिमो ।
कङ्केल्लिपल्लवाण ण पल्लवा होन्ति सारिच्छा ॥ ७९ ॥

[देवायस्ते फले किं क्रियतामियत्पुनर्मणाम ।
कङ्केल्लिपल्लवानां न पल्लवा भवन्ति सदृशा ॥]

कारण, फल देवाधीन है, अतः उस विषयमें और क्या किया जाय, किन्तु इतना कह सकती हूँ कि अशोकके पल्लवके सरीखे पल्लव नहीं होते ॥ ७९ ॥

धुअइ व्व मअकलङ्कं कपोलपडिअस्स माणिणी उअह ।
अणवरअवाहजलमरिअणअणकलसेहि चन्दस्स ॥ ८० ॥

[भावतीध मृगकलङ्क कपोलपतितस्य मानिनी पश्यत ।
अनवरतवाप्यजलमृतमयनकलशाभ्यां चन्द्रस्य ॥]

देखो, मानिनी कपोलपर प्रतिबिम्बित चन्द्रके मृगरूप कलङ्कको अनवरत प्रवाही वाप्यमलसे पूरा नयनकलशाद्वय द्वारा जैसे धो रही है ॥ ८० ॥

एतन्नेव उपपद्यते मासिमार्षे बोमासिष्य न इतिह ।

जय्यो को वि हय्यंसा मंसन्ता परिमन्म्यापो ॥ ८१ ॥

[पण्येपण्यस्यो मासिकानां वषमासिकानां च कृता वसिन्त्यदि ।

बन्धुत्वोद्दिष्टि एवमावा मीशक- परिश्लेषोऽत्र ॥]

कल्याण्डर पुष्पोंके साथ मासिकामें स्थित वषमासिक पुष्प कभी भी अपने मूलसे जुड़ ना जाय नहीं होता । हम इसका पुष्पचूने किसी अन्य प्रकारसे क्या परिणाम लिखकता है ॥ १ ॥

कलसंपत्तीय सम्प्रेषणार्थं तद्वार्त्तं कलविपत्तीय ।

हिममातृ सुपरिचार्य महाशयः च सिद्धयार्थं ॥ ८२ ॥

[सङ्कर्षणा लक्ष्यक्यादि व्यापि कृत्रिम्या ।

इदमस्मिन् समुद्रमार्गे लब्धमङ्गलमस्मिन् विज्ञातम् ॥]

महत्त्वशेषे विद्यमाने श्रीमि जगन्मूर्तेश्वर इत्यत्र एक-वचनसिद्धे कल्पान्तरात् एव कल्पविस्तारस्य वक्तव्यं दृश्यते । १॥

अध्यासार्थं परिचयार्थं परिचयस्थानीय परिचयस्थानम् ।

पितृपुत्रसंज्ञे पतिपुत्रसंज्ञौ ब्रह्मचरौ ॥ ८१ ॥

[वाचाद्वयं वरिष्ठं वरिष्ठवाचायाः वरिष्ठवाचायाः ।

विष्णुः शक्तिः ब्रह्मा ॥ १ ॥

परिचयकी कथा। जब कालांतो काल सुखद पात्रों के कथन बरकती है तब कथने संवसित हाथों सुखद बरकत का जन्म ही कथने जीवन के कथनमें परिचयोंको आत्मनित कथा है ॥ ३ ॥

दक्षो विष्णु इति सर्वो सर्वविधो व्यन्तिमासु चि ब्रह्मसु ।

अथमथमि वि एषो विरथा वरं विम पुण्डि ॥ ६४ ॥

[दृष्ट्वाभ्य ध्यायति कवी सत्यनिरयोऽन्तिमाश्रयि एवमुत ।

असहजमेवैषि त्वे विद्याद्वयमेव स्यात्वि ॥]

अन्तिम द्वायें की गणनीयता धन बचत की राह है । अन्त-प्राप्तके समय की पूर्ण की मिलें अन्त की सुखित होती है ॥ ३

पौष्ट मरुति सद्यः वि म्हात्म्य कल्पनी कल्पिनी ।

विदुःश्रवणतया इयन्ति नर के वि तप्युरिष्टा ॥ ८१ ॥

[उदर मिश्रति शङ्कुना अपि हे मातर आत्मनोऽनुद्दिग्माः ।

विह्वलोदरणस्वभावा भवन्ति यदि केऽपि साधुरपाः ॥]

हे माताओ, अन्यकी उदरपूर्तिकी चिन्ता किये बिना खग बिना किसी उद्वेगके अपना पेट भर लेने हैं, किन्तु कोई यदि साधुरप हो ता उसका स्वभाव दुर्गतजनोंके उद्वेगमें सलभ होना है ॥ ८५ ॥

ण विणा सद्भावेण ग्वेप्पड परमत्थजाणुओ लोओ ।

को जुण्णमज्जरं कखिण्ण वेआरिउं तरइ ॥ ८६ ॥

[न बिना सद्भावेन गृह्यते परपार्थजो लोक ।

को जीर्णमार्जार काञ्चिकया प्रतारयितु शक्नोति ॥]

सद्भावके अतिरेकसे किसीको परमार्थज्ञ नहीं माना जाता । कौन घृष्ट विदाल को केवल काञ्चिक (भिगोये भातके पानी) द्वारा ठग सकता है ? ॥ ८६ ॥

रण्णाउ तण रण्णाउ पाणिअं सव्वअं सअंगाहं ।

तह वि मआणँ मईणँ अ आमरणन्ताइँ पेम्माइँ ॥ ८७ ॥

[अरण्यात्तृणमरण्यात्पानीय सर्वत स्वयम्राहम् ।

तथापि मृगाणां मृगीणां चामरणान्तानि प्रेमाणि ॥]

मृग-मृगीको जङ्गलसे स्वतः प्राप्त वृण एव जल ही ग्रहण करना पड़ता है । फिर भी मृग मृगीका प्रेम आजीवन स्थायी होता है ॥ ८७ ॥

तावमवणेइ ण तद्वा चन्दणपङ्को वि कामिमिहुणाणं ।

जह दूसहे वि गिम्हे अण्णोण्णालिङ्गणसुहेल्ली ॥ ८८ ॥

[तापमपनयति न तथा चन्दनपङ्कोऽपि कामिमिथुनानाम् ।

यथा दू सहोऽपि ग्रीष्मे अन्योन्यालिङ्गन सुखकेलि ॥]

घिसा चन्दन भी कामियोंका ताप उतना दूर नहीं कर पाता, जितना ग्रीष्मकालमें भी परस्परेलिङ्गनरूप सुखकेलि दूर कर देता है ॥ ८८ ॥

तुप्पाणणा किणो चिट्ठसि त्ति पडिपुच्छिआपेँ वहुआप ।

विउणावेट्ठिअजहणत्थलाइ लज्जोणअं हसिअं ॥ ८९ ॥

[घृतलिप्तानना किमिति तिष्ठसीति परिपृष्टया यथा ।

द्विगुणावेष्टितजघनस्थलया लज्जावनत हसितम् ॥]

‘घी मुँहमें पोतकर क्यों घैठी हो’, इस प्रकार पूछी जानेपर घघू पहलेकी अपेक्षा अपने जघोंको दोहरा ढककर लज्जाघनत मुखसे हँसने लगी ॥ ८९ ॥

हे मामी, यही वह युवा पुरुष है जिसे गाँवकी असली गिर्याँ, प्रीतिमें
प्रानके सनिकटस्थ गृहोंके शीतल जलकीभीति अत्यन्त कष्टसे पाती है ॥ ९४ ॥

गामवडम्स पिउच्छा आवण्डुमुहीणं पण्डुरञ्छात्रं ।
द्विअण समं असईणं पडइ घायाद्वं पत्तं ॥ ९५ ॥

[ग्रामवटस्थ पितृष्वस आपाण्डुमुहीनी पाण्डुरच्छायम् ।

द्वयेन सममतीनां पतति याताहत पत्रम् ॥]

हे युवा, पीतमुखी असतियोंके मनक साथ ही साथ गाँवके वटवृक्षके
पीतवर्ण पत्रममूह हवासे आहत हो गिरे जा रहे हैं ॥ ९५ ॥

पेच्छइ अलङ्कलफणं दीहं णीससइ सुण्णअ हसइ ।
जइ जम्पइ अफुडत्तं तइ से द्विअट्टिअं किं पि ॥ ९६ ॥

[पश्यथलङ्कलक्ष्य दीर्घं निश्चिन्ति शून्य हसति ।

यथा नदरक्ष्यकुटार्थं तथा तस्या हृदयरिपत किमपि ॥]

जय युवती बिना लक्ष्यके ही दृष्टिपात कर रही है, दीर्घनिःश्वास फेंक रही
है, सूनी हँसी हँस रही है, एवं अस्वार्थ भावसे न जाने क्या आलाप कर रही
है, तब ऐसा लगता है कि नायक उसके मनमें कुछ न कुछ है ही ॥ ९६ ॥

गहवइ गओम्ह सरणं रक्खसु पअं त्ति अडअणा भणिरी ।
सइसागअस्स तुरिअं पइणो द्विअ जारमप्पेइ ॥ ९७ ॥

[गृहपते गतोऽस्माकं कारण रक्षैनमिष्यमती भणिषा ।

सहमागतस्य स्वरितं पश्युरेव जरमर्पयति ॥]

हे गृहस्वामी, यह पुरुष हमारा शरणागत हुआ है, इसकी रक्षा करो—
कहकर अमतीने सहसा आये हुए पतिके हाथों जारको सौंप दिया ॥ ९७ ॥

द्विअअट्टिअम्स दिज्जउ तणुआअन्ति ण पेच्छइ पिउच्छा ।
द्विअअट्टिओम्ह कतो भण्ड मोह गआ कुमरी ॥ ९८ ॥

[द्वयेऽप्येतस्य दीयतां तनूयन्ती न पश्यथ पितृष्वस ।

द्वयेऽप्येतोऽस्माकं कुतो भणिषा मोह गता कुमारी ॥]

अरी युवा, इस कुमारीको इसके मनोवाञ्छित व्यक्तिको ही समर्पित कर,
वह सुर्यल होता जा रहा है, क्या यह तुम्हें दीप्त नहीं रहा है ? 'मेरा हृदयहार
पुरुष कहाँ है', यह कहकर कुमारी मोहग्रस्त हो गयी है ॥ ९८ ॥

सिखस्सड्डर पदमा कथेर मिम्दापरण्हरमिम्सत्त ।

माही गजमगुत्तुम्मे चहापगुत्तुम्मे विडरमारं ॥ १९ ॥

[सिखसोदरि कपु-स्वावचनि श्रीमान्मार्गमिगत्त ।

माही गजगुत्तुम्मे गजमगुत्तुम्मे विडरमारम् ॥]

श्रीधरदासके अथारु नामर रत्नमन्त्रवेदाले भिन्न भित्ति के वर रत्न के उक्त
वद अथवा माही पतिगुत्तुम्मे एवं रत्नगुत्तुम्मेविडुत्त देवदत्त रत्नविड
वर गौ है ॥ १९ ॥

अह सरण्ममगुत्तुम्मेकदावपदिम्यगम्य मयच्छीय ।

अन्ता सिम्भूरितसदुपत्तकरयि बहर कम्हा ॥ १ ॥

[अन्तौ मातृगन्धमन्त्र कर्षोक्तविमन्त्रो सुपावना ।

अन्ता सिम्भूरितसदुपत्तमारयं वहमि कम्हा ॥]

सुवन्तपीके नामर रत्नगुत्तुम्मेकदावपदिम्यगम्य मयच्छीय हो पन्त्र
दीपति सिम्भूरितसदुपत्त अन्ता की समावका वा जाता है ॥ १ ॥

सिम्भूरितसदुपत्तमारयं बहर कम्हा ॥ १ ॥

सुवन्तसदुपत्त मयच्छी तीर्थ गाहासार्थ वय ॥ १ ॥

[सिम्भूरितसदुपत्तमारयं बहर कम्हा ॥ १ ॥

अन्ता के अन्ता सुतीर्थ गाहासार्थ वय ॥]

कविदास मन्त्र सुवन्तपीके गाहा रत्न, रत्नपी के सुवन्तपी के सुवन्तपी
में यह सुतीर्थ अन्तक अन्तक हुआ ॥ १ ॥

चतुर्थ शतक

अह अम्ह आश्रदो अज्ज सुलहरावो त्ति छेच्छई जारं ।

सहसागमस्स तुरिअं पणो कण्ठं मिलावेइ ॥ १ ॥

[असायस्माकमागतोऽद्य कुलगृहादिशयमग्री जारम् ।

सहसागमस्य स्वरित पायु कण्ठे एगयति ॥]

'यह व्यक्ति आज ही मेरे गृहमें आया है'—ऐसा कहकर असनी स्त्री अपने उपपतिको सहसागत पतिके गलेमें लगा देती है ॥ १ ॥

पुसिआ अण्णाहरणेन्द्रणीलकिरणाहवा सन्निमज्झा ।

माणिणिवअणम्मि सफज्जलंसुसद्धाइ दइण ॥ २ ॥

[प्रोद्दिग्ता कर्णाभरणेन्द्रनीलकिरणाहताः दक्षिमयूषा ।

मानिनीयदने सकज्जलाधुगङ्गया दयितेन ॥]

प्रिय पति मानिनीक यदनपर कर्णाभरणस्थित इन्द्रनीलमणिके प्रमामिश्रित चन्द्रकिरणममृहको आँसुकी धृंद समझकर पोंछ दे रहा है ॥ २ ॥

एहहमेत्तम्मि जण सुन्दरमहिला सहस्सभरिण वि ।

अणुहरइ णउर तिस्सा वामद्ध दाहिणद्धस्स ॥ ३ ॥

[एतावन्मात्रे जगति सुन्दर महिलामहदभृतेऽपि ।

अनुहरति केवल तस्या वामार्धं दक्षिणार्धस्य ॥]

महत्तों सुन्दरियोंसे परिपूर्ण इतने बड़े समारमें मौन्दर्यके विषयमें केवल इसका ही वामार्ध दक्षिणार्धका अनुकरणकर रहा है ॥ ३ ॥

जह जह वाएइ पिओ तह तह णय्यामि चञ्चले पेम्मे ।

घल्ली घलेइ अहं सहाचयद्धे वि रुक्खम्मि ॥ ४ ॥

[यथा यथा घादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि ।

घल्ली घलयत्यङ्ग स्वभावस्तम्बेऽपि घृसे ॥]

प्रेम मेरे आश्रयका विधायक है, वरन् मेरा प्रिय जैसे जैसे बजायेगा, मैं वैसे वैसे नाचूंगी अर्थात् उसकी इच्छाका पालन करूंगी। स्वभावस्तम्ब घृषमें भी चञ्चल होता लिपटी रहता है ॥ ४ ॥

शुक्लमेहि तस्मात् पिप्पा कञ्जो शुक्लमेहि दाह सार्दीषा ।

कञ्जो वि बलकञ्जो भिषग् अह अह दिवसं तत व होइ ॥ ५ ॥

[हुत्तेकनके मित्रो कञ्जो हुत्तेर्वसति स्वादीषा ।

राज्योन्मत्तव दृव यदि ववा हरणे कथा व मयति ॥]

इहै कहे मित्रकनीको जल दिया जाता है । जल करनेवा भी कहे कहे कहे स्वादीष दिया जाता है और यदि वे हरणके अनुकूल व हों तो कन्य होमैरा भी कहे कन्य ही भयका जाता है ॥ ५ ॥

कम्भो मधुममसुदकङ्किरीम मर्कटं कम्पुष्पस्तीर ।

सुरक्षसहावा वि पिप्पा मयिजम्ममर्क कक्षणीभ्यो ॥ ६ ॥

[कङ्कनपुनपुनकङ्कनकीनपातृर्न हतं कर्त्तव्य ।

काक्षसमाधोऽपि मितोऽर्कवचनार्थं कक्षणीता ॥]

इस हे मधुमम-मृगकी काक्षीकाय मिते कङ्क के द्वारा व मिते कम्पुष्प-मृगकी भी दिया गया कङ्क का कक्ष-वचन मित्रको भी कङ्कर्णक मयिजम के कार्यमें बीच रही हैं ॥ ६ ॥

हृत्प्रेषु भ पापसु व बहुक्षिणायणा अयथा विम्वरा ।

परिह वज कोच यथिञ्जल ति मयेह कम्प मुखा ॥ ७ ॥

[हृत्प्रेषेन वाह्योन्मत्तकृत्स्नवचनमिषय विम्वरा ।

हृत्प्रेषो मुवा वज कम्पकर्मिणि यथिञ्जला रोपिणि मुखा ॥]

इस वज केहि मित्र अनुक्षिणों द्वारा मयवाकर विषीको कम्प है । वज मित्रक कहते वह दिय मयवा कर्मको । ऐसा कङ्क हुम्मा रो रही है ॥ ७ ॥

कीरमुहसम्पदेहि रेहर वसुधा पक्षासपुष्पमेहि ।

शुद्धस वजयकम्पकर्मिणि व मित्रमुच्येहि ॥ ८ ॥

[कीरमुहसदेहि राज्ञे वसुधा पक्षासपुष्पमेहि ।

शुद्धस वजयकम्पकर्मिणि मित्रमुच्येहि ॥]

इहैवक वजयकम्पार्थं वसुधाकी मित्रुमीकी मिति शुद्धमुहसदेहि राज्ञे वसुधा हुम्मीके वसुधा कीमयिज हो रही है ॥ ८ ॥

अं अ विदुर्न मर्कं तं तं आय विसीमरि किल ते ।

अं अं तदुच्यं तं तं वि विदुर्न किं त्य मयैव ॥ ९ ॥

[यद्यष्टयुलमङ्ग तत्तज्जात कृशोदरि कृश ते ।

यद्यत्तनुक तत्तद्यपि निष्ठित किमत्र मानेन ॥]

हे कृशोदरी, तुम्हारे जो-जो अङ्ग स्थूल होते हैं, वे ही कृश हो गए हैं और जो जो अङ्ग स्वभावतः कृश होते हैं, वे-वे अङ्ग कृशताकी चरमसीमा पर पहुँच गए हैं, इसलिये मान द्वारा क्या मिलेगा ? ॥ ९ ॥

ण गुणेण हीरद्व जणो हीरद्व जो जेण भाविओ तेण ।

मोत्तूण पुलिन्दा मोत्तिआइँ गुज्जाओँ गेहन्ति ॥ १० ॥

[न गृणेन हियते जनो हियते यो येन भावितस्तेन ।

सुक्खा पुलिन्दा मौक्तिकानि गुज्जा गृहन्ति ॥]

कोई व्यक्ति केवल गुण द्वारा किसी के आकर्षणका विषय नहीं होता । जो व्यक्ति जिस वस्तु द्वारा प्रेम रूप लगता है, वह व्यक्ति उसी वस्तु द्वारा आकृष्ट होता है । उरकल के पर्वतवासी पुलिन्दगण सुक्काको त्यागकर गुज्जाको ही ग्रहण करते हैं ॥ १० ॥

लङ्कालयाणं पुत्तत्र वसन्तमासेकलद्धपसराणं ।

आपीअलोहिआणं वीदेइ जणे पलासाणं ॥ ११ ॥

[लङ्कायानां पुत्रक वसन्तमासैकलब्ध प्रसराणाम् ।

आपीतलोहितानां विमेति जन पलाशानाम् ॥]

हे पुत्रक, लङ्कानिवासी चर्ची, अब जब मास में अधिकतर प्रसून एवं अत्यधिक रुधिरपायी राजसौंकी भाँति शास्त्राम्पायी, वसन्त मासमें ही अधिकतर प्रसून एवं हँपन् पीत एवं लोहित वर्ण पलाशपुष्पों से सुन्दर नारियाँ ढरती हैं ॥ ११ ॥

घेत्तूण चुण्णमुट्ठिं हरिस्सूससिआए वेपमाणाए ।

मिसिणेमिसि पिअअमं हत्थे गन्धोद्वयं जाअं ॥ १२ ॥

[गृहीत्वा चूर्णमुष्टिं हर्षोत्सुकितया वेपमानाया ।

अवकिरामीति प्रियतम हस्ते गन्धोदक जातम् ॥]

हर्षसे उत्कृष्टमिश्र हो, सात्विक भावसे कौपवी कुछ नायिका गन्धद्रव्यकी चूर्णमुष्टि ग्रहणकर प्रियतमके ऊपर धिकीर्ण करेगी, ऐसा सोचते ही धर्मभावसे उसके हाथमें गन्धजल उत्पन्न हो गया ॥ १२ ॥

सुहृपुच्छिआह हलिओ मुहपहुअमुरहिपवणणिअविमं ।

तह पिअह पअइरुडुअं पि ओमहं जण ण णिट्ठाह ॥ १७ ॥

[सुअपृच्छिकाया हलिको सुअपट्ठजमुरभिपयननिर्घापितम् ।

तथा पियति प्रवृत्तिकटुकमप्यौषध यथा न तिष्ठति ॥]

हलिकने भी अनुरक्त शरीर सुअजिज्ञासाकारिणीके सुअकमएके समीर द्वारा शीतल किये हुए स्वभाव कटुभाषणिको हम प्रकार पी टाला कि उसका किंचिन्मात्र भी नेप नहीं रहा ॥ १७ ॥

अह सा तहिं तहिं विअ वाणीरवणम्मि लुक्कसंकेआ ।

तुह दसणं विमग्गह पम्मट्टणिद्धाणठाणं व ॥ १८ ॥

[अथ सा तत्र तत्रैव वानीरवन विस्मृतसङ्केता ।

तव दर्शन विमार्गति प्रव्रट्निधानस्थानमिव ॥]

यादमें वह नायिका सङ्केतस्थलकी बात भूलाकर विस्मृत आधारस्थानकी भाँति, उसी उसी वाणीकुञ्जमें तुम्हें खोज रही है ॥ १८ ॥

ददरोसकलुसिअस्स वि सुअणस्स मुहाहिं विप्पिअं कन्तो ।

राहुमुहम्मि वि ससिणो किरणा अमअं विअ मुअन्ति ॥ १९ ॥

[ददरोपकलुपितस्यापि सुजनस्य सुखादप्रिय कुतः ।

राहुमुखेऽपि दाशिन किरणा अमृतमेव सुश्रन्ति ॥]

अत्युक्त-रूपवशा कलुपित होनेपर भी भले आदमीके मुँहसे अप्रिय बात कहाँ निकलती है ? राहुके मुखमें पड़े हुए चन्द्र किरण अमृत ही देते हैं ॥ १९ ॥

अवमाणिओ वि ण तहा दुमिज्जइ सज्जणो विहवहीणो ।

पड्डिकाऊ असमत्थो माणिज्जन्तो जह परेण ॥ २० ॥

[अवमानिगोऽपि न तथा दूयते सज्जनो विमषहीन ।

प्रतिवर्तुं पमथो मान्यमानो यथा परेण ।

वैभवहीन सज्जन अपमानित होनेपर भी उतने शुन्ध नहीं होते, जितना कि दूमरों द्वारा माने जानेपर भी वैभवके अभावमें प्रत्युपकारसे असमर्थ होने पर व्यथित होते हैं ॥ २० ॥

कलहन्तरे वि अविणिग्गआहँ ह्विअअम्मि जरमुवगआहँ ।

सुअणकआह रहुस्साहँ उहह आउक्खण अग्गी ॥ २१ ॥

व्याकुलता एवं चिन्तानुरञ्जनके सहायक मदनके धारणोंको नमस्कार करती हैं, कारण वे सय प्रियकी अनुपस्थितिमें मनोव्यथा भी उत्पन्न करते हैं और सुख भी प्रदान करते हैं, वा कभी प्रेमानुराग बढ़ा देते हैं एवं कभी सौमनस्य उत्पन्न कर देते हैं ॥ २५ ॥

कुसुममग्रा वि अङ्गुरा अलङ्घ्यन्ता वि दूसहपआवा ।
भिन्दन्ता वि रङ्गुरा कामस्स सरा बहुविअप्पा ॥ २६ ॥
[कुसुममया अप्यसिखरा अलङ्घ्यस्पर्शा अपि दु सहप्रतापा ।
भिन्दन्तोऽपि रतिकराः कामस्य शरा बहुविकल्पा ॥]

कामदेवके धाण नाना प्रकार विशिष्ट अर्थात् परस्पर विरुद्धधर्मी हैं । कारण, कुसुममय होनेपर भी वे अत्यन्त विषम हैं, लक्ष्यवस्तुको स्पर्श किये बिना ही वे उससे दुःमह ताप प्रकट करते हैं एवं हृदय मेदन करनेपर भी रविसम्पादन कर्त्ता होते हैं ॥ २६ ॥

ईसं जणेन्ति दावेन्ति मम्महं विप्पिअं सहावेन्ति ।
विरहे ण देन्ति मरिउं अहो गुणा तस्स बहुभग्गा ॥ २७ ॥
ईर्ष्याजनयन्ति दीपयन्ति मन्मथ विप्रिय साहायन्ति ।
विरहे न ददति मर्तुमहो गुणास्तस्य बहुमार्गाः ॥]

अहो, प्रिय अधवा कामवाण की गुणावली बहुविध है—कभी तो ये ईर्ष्या उत्पन्न करते हैं, कभी मदनभाव उद्दीपित करते हैं, कभी अप्रियाचरण सहन कराते हैं एवं विरहमें भी मरनेका अवकाश नहीं देते ॥ २७ ॥

णीआइँ अज्ज णिक्खि व पिणद्धणवरङ्गआइँ वराईप ।
घरपरिवाडीअ पहेणआइँ तुह दंसणासाप ॥ २८ ॥
[नीतान्यद्य निष्कृप पिनद्धनवरङ्गकया धराक्या ।
गृहपरिपाट्या ग्रहेणकानि तव दर्शनाशया ॥]

हे निर्दय, तुम्हारे दर्शनकी आशामें यह क्षीनानायिका नूतन रक्तवस्त्र पहनकर आज यह घर घर घायन घाँट रही थी, किन्तु तुम्हारी अनुकम्पा उसे नहीं मिली ॥ २८ ॥

सूइज्जइ धेमन्तम्मि दुग्गओ पुप्फुआसुअन्धेण ।
धूमकविलेण परिविरत्ततन्तुणा जृण्णवढण ॥ २९ ॥

[अन्ते ऐक्ये दूर्यते करीषादिपुण्येन ।

एकपरिच्छेदपरिमितकृतानुवा नीर्भवत्येव ॥]

ऐक्यकर्मों कायकर्मों कोहरे की अति पुण्यविरहित, पूर्व के कर्म विरक्त कर्म एवं कभी प्रकार के विरक्तकृतमय नीर्भवकाहता वसे आपन्य इति सुचित किया जाता है ॥ २९ ॥

आरुतिप्रितरुतिविचारै ह्युपय पदिसो द्विगममपहाय ।

आयमपयप्रकोटिप्रहृत्यर्धसमसिचारै अङ्गारै ॥ ३० ॥

[हीयन्त्यन्त्योक्तिविचारि करोति पदिके द्विगममपहाये ।

आयमपयप्रकोटिप्रहृत्यर्धसमसिचारै ॥]

विचारिते कृतानामों कृतान् कृतान् पदिक हीयन् ह्युपयकाहता कृत कर्तव्ये आयमपय प्रकोटि कीड़े हान्ये कर्त्तव्यता अपराध कथना विवक्षा कर रहा है ॥ ३० ॥

नननननुदीर्घं सङ्गमाप्यहरि पद्मरत्न श्रीसम्मि ।

नन्दिमिह हीरन्ती ममरह्यमाय अमुसपन्ति ॥ ३१ ॥

[नकोत्पन्तिना ननननननी पद्मरत्न श्री ।

नन्दिमिह द्विगमना कृतानुवाचीमुसपन्ति ॥]

नननना अमुचित एवं कर्त्तव्यता विचार के कभी हुई नाननननीकीये नननना नननन पदिकों नननन ननननुवा कथना अमुकतय कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

एतन्मन्त्रेण पुनश्च कस्तुर्न मङ्गलि पश्यमेति ।

हासकाननुमिमन्त्रेण वा हन्ति देवान् लेखाय ॥ ३२ ॥

[एतन्मन्त्रेण पुनश्च कस्तुर्न मङ्गलि पश्यमेति ।

हासकाननुमिमन्त्रेण वा हन्ति देवान् लेखाय ॥]

हे इत्य, पुन पुनिके कथाने किनी मङ्गलिनीतेदुर प्रत्यामकर रहे ही । देवताकीये एतुकि हासक एवं कथाकहता विविक्ष हीये पोन्व चही है ॥ ३२ ॥

मुदपिगुधिमपर्वर्धं विद्वत्सप्त सप्तद्विमाहृत्य ।

सप्तदस मरुतिप्रार्थुं आरिमामिर्धं सुदधेर ॥ ३३ ॥

[मुदपिगुधिमपर्वर्धं विद्वत्सप्त सप्तद्विमाहृत्य ।

सप्तदस मरुतिप्रार्थुं आरिमामिर्धं सुदधेर ॥]

जिसमे सुखमात्र द्वारा दीपक दुस्ताया जाय, सोम अथरुद्र हो जाय, सप्तभ्रातृमावसे मलाप चले, एव दाग पापयहारा, अधरदशन वर्जित हो, यह चौर्यरमण सुख उरपत्र करना है ॥ ३३ ॥

नेत्रच्छलेण भरिडं कस्तुमं रुधसि णिम्भरुक्कण्ठं ।

मण्णुपडिरुद्धकण्ठद्धणिन्तरास्तिअक्कप्पसल्लावं ॥ ३४ ॥

[नेत्रच्छलेन स्मृत्वा कस्तुम एव रोदिति निर्मरोक्कण्ठम् ।

मन्त्रुप्रतिरुद्धकण्ठार्धनिर्यान्वलिताश्रोतृलापम् ॥]

गानेके ग्रहाने किसे स्मरणकर तुम रोती हो, इस रोदनसे तुम्हारी उरकण्ठा की अतिदायता प्रकट होती है एव इससे तुम्हारे शोकनिरुद्ध कण्ठसे अर्धनि सृत एव स्त्रलितापर प्रलाप सुनायी पड़ता है ॥ ३४ ॥

चहलतमा ह्वयगई अज्ज पडत्यो पई घरं सुण्णं ।

तह जग्गेसु सअज्जिअ ण जहा अम्हे सुत्तिज्जामो ॥ ३५ ॥

[चलदतमा हस्तराग्रिण प्रोपितः पतिर्गृह गूयम् ।

तथा आगृहि प्रतिपेक्षिण यथा यय सुप्यामहे ॥]

दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि गाढान्धकाराच्छन्न है, पति भी आज ही प्रवासाथ गया है, मेरा घर सूना है । हे पद्मोमी (उपपति), इस प्रकार जागृत रहना जिसमे हमारे यहाँ चोरी न हो ॥ ३५ ॥

संजीवणोसहिम्मिअ सुअस्स रक्खइ अणणवावारा ।

सासू णवम्मदम्मणकण्ठागअजीविअं सोहं ॥ ३६ ॥

[संजीवनीपत्रमिव सुतस्य रक्षत्यनन्यस्यावारा ।

अश्रूनंवाभ्रदर्शनकण्ठागतजीवितां स्नुषाम् ॥]

सास नवजलधर दर्शनके कारण, कण्ठागत प्राण पुत्रघर्भूको पुत्रकेलिए संजीवन औपधिके समान समझकर, अनन्यकर्मा होकर रक्षा करती है ॥ ३६ ॥

णूणं द्विअअणिद्विप्ताइ वससि जाआइ अम्ह द्विअअम्मि ।

अण्णह मणोरहा मे मुहअ कहं तीअ विण्णाआ ॥ ३७ ॥

[नून हृदयनिहितया यस्मि जाययात्माक हृदये ।

अन्यथा मनोरथा मे सुभग कथं तथा विज्ञाता ॥]

[हे सुभग, तुम निश्चय ही अपने हृदयमें निहित अपनी भार्याको साथ लेकर मेरे हृदय में यास कर रहे हो ; नहीं तो मेरे मनोगतभावको उसने कैसे जान लिया ? ॥ ३७ ॥

[अन्योन्यसदेशानुरागवर्धमानकौतूहलानि ।

दुःखमसमाप्तमनोरथानि तिष्ठन्ति मिथुनानि ॥]

दोनों प्रेमी परस्पर प्रेरित प्रणय वार्त्ताद्वारा उत्पन्न अनुरागमें कौतूहलके
बढ़जानेपर मिलन मनोरथ पूरा न कर सकनेके कारण दुःखमें रह रहे हैं ॥ ४२ ॥

जइ सो ण चल्लहो विवअ गोत्तग्गाहणेण तस्स सहि कीस ।

होइ मुहं ते रविअरफंसव्विसहं व तामरसं ॥ ४३ ॥

[यदि स न वल्लभ एव गोत्रग्रहणेन तस्य सखि किमिति ।

भवति सुख तव रविकरस्पर्शविकसितमिव तामरसम् ॥]

हे सखि, वह यदि तुम्हें प्रिय न होगा तो उसका नाम लेनेपर तुम्हारा
मुख सूर्यकिरणके स्पर्शमें विकसित पद्मकी भाँति प्रतीयमान क्यों होगा ? ॥

माणदुमपरुसपवणस्स मामि सव्वङ्गणिबुद्धअरस्स ।

अवऊहणस्स भइ रइणाडअपुध्वरङ्गस्स ॥ ४४ ॥

[मानदुमपरुसपवनस्य मातुलानि सर्वाङ्गानि घृतिकरस्य ।

अवगूहनस्य भद्र रतिनाटकपूर्वरङ्गस्य ॥]

मभी भट्ठोंके सुस्रविधायक, रतिनाटकके पूर्वरङ्गरूपी आलिङ्गनकी शुभ-
कामना करती हूँ ॥ ४४ ॥

णियअणुमाणणीसङ्क हिअअ दे पसिय विरम एत्ताहे ।

अमुणिअपरमत्थजणाणुलग्ग कीस म्ह लहुपसि ॥ ४५ ॥

[निजकानुमाननि शङ्का हृदय हे प्रसीद विरमेशनीम् ।

अज्ञातपरमाद्यजनानुलग्न किमित्यस्मांस्तु घयमि ॥]

हे हृदय, तुम अपने अनुमानद्वारा ही शङ्काशून्य हुए हो, सम्प्रति नायककी
खोजसे विरत होओ, ऐसे अज्ञात भर्म व्यक्तिमें आसक्त होना, हम जैसी
ललनाओंको इतना छोटा क्यों घना देता है ? ॥ ४५ ॥

ओसहिअजणो पइणा सलाहमाणेण अइचिरं हलियो ।

चन्दो च्ति तुज्झ घअणे विइण्णकुसुमाञ्जलिचिलक्खो ॥ ४६ ॥

[भावसधिकजनः परया श्लाघमानेनातिचिरं हमित्त ।

चन्द्र इति तव वदने वितोर्णकुसुमाञ्जलिचिलम्]

तुम्हारा मुख ही चन्द्र है, ऐसा मोचकर उसके प्रति कुसुमाञ्जलि देनेसे
छद्मित्त अवधानादिमें नियमित गृहस्थकी प्रशम्भाकर तुम्हारा पति बहुत देर
तक हँसा है ॥ ४६ ॥

पिप्तन्तेहि यणुदिर्भं पथनन्वमि वि तुममि अहेहि ।

वास्तम पुषिष्टज्जन्ती ये अयिमा कस्तस हि मजिमो ॥ ४३ ॥

[चीनमान्नेरुदिर्भं जन्नेयेयि अयय्यैः ।

वास्तम पुष्यजमाना य आनीया कस्तस हि जन्नामः ॥]

हे वास्तम, तुम्हारे स्वर्गिण होनेवा यी मजिदिन जन्नेको चीन होने देख
हमना कस्तम पुषी कानेज मैं किसे क्या कस्त हूँ ? यह यही जानती ॥ ४३ ॥

अङ्गायं मणुसारथ सिक्कापथ बीहरोरमप्यार्थ ।

विचक्करम्मप्यरम मा मा र्थं पम्हसिज्जासु ॥ ४८ ॥

[अङ्गन्ती मणुसारथ सिक्का बीहरोरिहमप्यार्थ ।

विचक्कानिज्जमप्यरम मा मा र्थं पम्हसिज्जासु ॥]

हे वास्तम, तुम कहीके जन्नेकी कुञ्जराक विमानक हो, कस्त बीहरोरम
मूक विचक र्थ चीनमणु कानेके कस्तम हो । तुम जन् कही कहे स्वर्ग य
कस्त ॥ ४८ ॥

अज्जह य तीरह विम परिचज्जन्तापदर्थ विजम्ममस्त ।

मरप्यविचोपय विवा विरम्ममैरं विरज्जुन्नर्थं ॥ ४९ ॥

[अज्जह य अज्जह य य विचर्म्ममप्यरुहं विजम्ममस्त ।

मरप्यविचोपय विवा विरम्ममैरं विरज्जुन्नर्थं ॥]

मरमकन पुषि वास्तमके मजिदिन किमी पुनरे कस्तसे विचठमने
मिहर्भं कानेवाका यारी तु न जन्म य होया ॥ ४९ ॥

अज्जन्तीहि तुह गुणं बहुसा अग्नि विम्हर्म्मपुण्यो ।

वास्तम सम्येय कप्पासि तुत्तहा कस्तस कुप्पमो ॥ ५० ॥

[अज्जन्तीविचठम तुम्हमपुण्योऽग्निविचठमपुण्यो ।

वास्तम सम्येय कुप्पासि तुत्तहा कस्तस कुप्पमो ॥]

अज्जन्ती के कप्तमने मी ही तुम्हारी तुम्हारी या बहुत कर्म्म किया है ।
हमने कस्तमकन, हे वास्तम, स्वर्ग मीने तुम्हें कुर्म्म कपाकिया है । किसे कोर
मिहर्भे ॥ ५० ॥

आथा सो वि विज्जन्तो मर वि अस्सिज्जम मावमुकपूरो ।

एहमोसग्निमस्त विमंसकस्त अग्नि विममज्जो ॥ ५१ ॥

[आथा सोवि विज्जन्तो मर वि अस्सिज्जम मावमुकपूरो ।

एहमोसग्निमस्त विमंसकस्त अग्नि विममज्जो ॥]

पहले ही मेरे विगलित वस्त्रकी गाँठ खोजनेको उद्यत हो, (सुनकर) वह भी लज्जित हो गया और मैंने भी हँसकर उसका गाढ़ालिङ्गन कर लिया ॥ ५१ ॥

कण्डुज्जुआ घराई अज तप सा कआवराहेण ।
अलसाइअरुणविअम्मिआइँ दिअहेण सिक्खविआ ॥ ५२ ॥
[कण्डर्जुका घराकी अद्यधया सा कृतापराधेन ।
अलम्पायितरुदितविअग्निमतानि दिवसेन शिचिता ॥]

सम्प्रति अपराधकर तुमने चाण अथवा कान्तकी भौंति सरलम्बभाव दीन रमणीको एक दिनमें औदाम्नीय, रोदन एवं विस्तारकी शिक्षा दे दी है ॥ ५२ ॥

अवराहेहिँ वि ण तद्वा पत्तिअ जह मं इमेहिँ दुम्मेसि ।
अवद्वट्ठियअसव्भावेहिँ सुहअ दक्खिण्णभणिणहिँ ॥ ५३ ॥
[अपराधैरपि न तथा प्रतीति यथा मामेभिर्दुनोपि ।
अपहस्तितन्नाथै सुभग दाक्षिण्यभणितै ॥]

हे सुभग, मेरी बातका विश्वास करना । तुम अपने अपराधद्वारा मुझे उतना दुःखी नहीं कर सकते हो जितना अपने इस सद्भावशून्य दाक्षिण्यभाषण द्वारा कर सकते हो ॥ ५३ ॥

मा जूर पिआलिङ्गणसरहसममिरीणँ बाहुलइआणं ।
तुद्धिक्कपरुणणेण अ इमिणा माणंसिणि मुहेण ॥ ५४ ॥
[मा कुप्यस्व प्रियालिङ्गनसरभमग्रमणशीलाभ्यां बाहुल्यतिकाभ्याम् ।
तूष्णीकप्ररुदितेन चानेन मनस्विनि मुत्सेन ॥]

हे मनस्विनी, नीरवमें रोनेवाले इस मुत्तको लेकर तुम प्रियके आलिङ्गन-जनित सुखसे कम्पायमान बाहुल्यताद्वयके ऊपर खेद मत प्रकट करना ॥ ५४ ॥

मा वच्च पुप्फलाधिर देवा उअअज्जलीदिँ तूसन्ति ।
गोआअरीअ पुत्तअ सीलुम्मूलाइँ कूलाइ ॥ ५५ ॥
[मा अथ पुष्पलवनशीला देवा उदकाजलिभिस्तुष्यन्ति ।
गोदावर्याः पुत्रक शीलोन्मूलानि कूलानि ॥]

हे कुसुमचयनकेलिष्वप्यग्र पुत्रक, गोदावरी किनारे मत जाना, देवता जलाजिलसे ही गूट होते हैं । गोदावरीका तीर शीलोन्मूलनकारी है ॥ ५५ ॥

वअणे वअणम्मि चत्तन्तसीससुण्णावद्वाणहुद्धार ।
सहि वेन्ति णीसासन्तरेसु कीस म्हु दुम्मेसि ॥ ५६ ॥

[वचने वचने चान्द्रीर्गुणावसानमुद्रितम् ।

मनि दृश्री विचमन्तोषु विविचमन्तोषु ॥]

हे मनि चन्द्रेण वचने वि चान्द्रीर्गुणावसानमुद्रितम् ।
वृत्तिं वचनं वचनिकं वचनिकं वचनं वचनं वचनं ॥ ५१ ॥

राघवार्थं वृत्तिली वचनं रोमाधिप्यं वृत्तं विचम ।

वृत्तिं विचम वचनार्थं वृत्तिली वचनं ॥ ५२ ॥

[वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ॥]

हे वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।
वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।
वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ॥ ५३ ॥

[वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ॥]

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।
वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ॥ ५४ ॥

[वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ॥]

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।
वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।
वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ॥ ५५ ॥

[वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ।

वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं वचनं ॥]

भाग गया, किंचिद् भिन्ना हुआ फूल घृन्तसमूहके भारमे भयनत होकर कार्पासी भी मानो हँसने लगा ।

गीसासुक्रम्पिअपुल्लइहिं जाणन्ति णधिउं धण्णा ।
अम्हारिसीहिं दिट्ठे पिअम्मि अप्पा वि चीसरियो ॥ ६१ ॥
[निःश्वासोत्क्रम्पितपुलकितैर्जानन्ति नतिषु धन्या ।
अस्मादनाभिरदृष्टे प्रिये आत्मापि विस्मृतः ॥]

नृत्यके समय प्रेमीके अङ्गस्पर्शसे जो निश्वास उत्क्रम्प एष पुलकके साथ नृत्य करना जानती हैं, वे धन्या हैं; किन्तु मेरी जैसी रमणीके प्रियको देय पाते ही आत्मविन्मृत हो जाती हैं ॥ ६१ ॥

तणुपण वि तणुइज्जइ स्त्रीपण धि पिस्रज्जए वला इमिण ।
मज्झत्येण वि मज्झणे पुत्ति फहं तुज्ज पडिचक्खो ॥ ६२ ॥
[तनुकेनापि तनूयते स्त्रीणेनापि स्त्रीयते यत्नादनेन ।
मध्यस्थेनापि मध्येन पुत्रि कथं तत्र प्रतिपद्य ॥]

हे पुत्रि, तुम्हारी कमर दुबली पड़ पतली है, इस कमरकेद्वारा तुम अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको दुबली पतली बनानेमें किस प्रकार समर्थ हो रही हो ? ॥ ६२ ॥

वाहिच्च वेज्जरहिओ धणरहिआ सुअणमज्जवासो व्व ।
रिउरिद्धिदंसणम्मिव दूसइणीओ तुह विओओ ॥ ६३ ॥
[व्याधिरिव वैद्यरहितो धनरहितः स्वजनमध्यवास इव ।
रिपुष्वद्विदर्शनमिव दुःसहमीपसमय वियोग ॥]

तुम्हारा विरह मेरेलिख वैद्यरहित व्याधिकी भाँति, स्वजनोके बीच निर्धन हो वासकरनेकी भाँति तथा अपने नेत्रद्वारा शत्रुभोंकी समृद्धि देखनेके समान प्रतीत होता है ॥ ६३ ॥

को तथ जअम्मि समत्थो यइउं चित्थिण्णणिम्मलुत्तुहं ।
द्विअमं तुज्ज णराद्वि गअणं च पओद्धरं मोत्तु ॥ ६४ ॥
[कोऽत्र जगत्तिसमर्थं स्वगणितु विस्तीर्णनिर्मल्लोत्तुङ्गम् ।
हृदयं तत्र नराधिप गगनं च पयोधरागमुक्त्वा ॥]

हे राजन्, पयोधर (स्तन वा मेघ) के अभिरक्षित कौनसी वस्तु इस जगत्में विस्तीर्ण, निर्मल एवं उत्तुङ्ग तुम्हारे हृदय एवं गगनपर अधिकार करनेमें समर्थ है ? ॥ ६४ ॥

आमभ्येह यदमवा दुःखदोहूमि विभक्तयेमा ।

अवापयेतिमार्त्तं ममरथं दुःखपचार्य ॥ १५ ॥

[आकर्षणपटी दुःखाद्यो दृष्टयेमा ।

अवापयेतिमार्त्तं ममरथं मीर्ययत्नात् ॥]

विद्वज्जके दृष्टयेमा जन्मी दुःखमे वापय हारा मन्त्रे मीर्ययत्नात् ज-
नर कर सुख रही है ॥ १५ ॥

अहिमेतिन सुतद्विषीससिचपरिमज्जतयमभ्यर्त्तं ममय ।

अमुनिमन्त्रपरिहर्त्तं अमुन्मन्त्रार्त्तं मुर्त्तं तिष्ठत्य ॥ १६ ॥

[अहिमेतिन सुतद्विषीससिचपरिमज्जतयमभ्यर्त्तं ममय ।

अमुनिमन्त्रपरिहर्त्तं मुर्त्तं वस्तुतः ॥]

अर्त्तं मन्त्रके अमय अहिमेतिन को मुर्त्तं ममी को मन्त्रके अहिमेतिन को
हारा, अमुनिमन्त्रपरिहर्त्तं अमुन्मन्त्रार्त्तं मुर्त्तं तिष्ठत्य अहिमेतिन को
(अमुन्मन्त्र) अमुनिमन्त्र अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को ॥ १६ ॥

योऽपचमिषीम वि सुदमयपुरमे दुर्म्मा वासीत्ये ।

पहिमा से अहिमेतिनमिषीमयेव पमहिमेतिन वासीत्ये ॥ १७ ॥

योऽपचमिषीम वि सुदमयपुरमे दुर्म्मा वासीत्ये ।

अहिमेतिनमिषीमयेव पमहिमेतिन वासीत्ये ॥]

दुर्म्मा को अहिमेतिन, सुदमयपुरमे अमुनिमन्त्रपरिहर्त्तं अहिमेतिन को
अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को ॥ १७ ॥

मरिमी से अमयपुरमुदीम विमन्त्रमायपत्तय ।

अमयपुरमुदीम विमन्त्रमायपत्तय विमन्त्रमायपत्तय ॥ १८ ॥

[अमयपुरमुदीम विमन्त्रमायपत्तय विमन्त्रमायपत्तय ।

अमयपुरमुदीम विमन्त्रमायपत्तय विमन्त्रमायपत्तय ॥]

अहिमेतिन अमयपुरमुदीम को अहिमेतिन को, अहिमेतिन अमयपुरमुदीम को
अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को
अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को अहिमेतिन को ॥ १८ ॥

अमयपुरमुदीम विमन्त्रमायपत्तय विमन्त्रमायपत्तय ।

अमयपुरमुदीम विमन्त्रमायपत्तय विमन्त्रमायपत्तय विमन्त्रमायपत्तय ॥ १९ ॥

[फाशुनोत्सवनिर्दोष केनापि क्वर्मप्रसाधन दत्तम् ।
स्तनकलशमुखप्रलुठस्वेदधौत किमिति धावयसि ॥]

नजाने किसने फाशुनोत्सव में तुम्हें निर्दोष विचारे बिना कीचड़ लगा दिया है । अपने स्तनकलशके मुखसे विगलित स्वेदद्वारा धोये हुए उस कीचड़को पुन क्यों धो रही हो ? ॥ ६९ ॥

किं ण भणिओ सि बालअ गामणिधूआइ गुरुअणसमक्खं ।
अणिमिसमीसीसिवलन्तवअणअणद्धदिट्ठेहिं ॥ ७० ॥
[किं न भणितोऽसि बालक ग्रामणीपुत्र्यागुरुजनसमक्षम् ।
अभिमिपमीपदीपद्वलङ्घननपनार्धरट्टैः ॥]

हे बालक, गुरुओंके सम्मुख अभिमिपनयनसे मुखको तिरछाकर कदाच-
द्वारा तुम्हें देखकर ग्रामिणीकी कन्याने तुमसे क्या नहीं कहा ? ॥ ७० ॥

णअणम्मन्तरघोलन्तवाहभरमन्थराइ दिट्ठीए ।
पुणरुत्तपेछिरीए बालअ किं जं ण भणिओ सि ॥ ७१ ॥
[नयनाभ्यन्तरघूर्णमानवाप्पभरमन्थरया इष्ट्या ।
पुनरुत्तप्रेक्षणाशीलया बालक किं यन्नभणितोऽसि ॥]

नयनाभ्यन्तरमें घूर्णमानवाप्पभरित मन्थर रट्टिमे तुम्हें बारबार देखकर,
हे बालक, उस नायिका ने ऐसा क्या है जिसे तुमने कह न दिया हो ? ॥ ७१ ॥

जो सीसम्मि विहण्णो मज्झ जुआणेहिं गणवई आसी ।
तं विअ एहिं पणमाणि हवजरे होहि संतुट्ठा ॥ ७२ ॥
[य स्त्रीर्षे विलीर्णो मम युवभिर्गणपतिरासीत् ।
तमेवेदानीं प्रणमामि हतजरे भव सतुष्टा ॥]

युवकोंने मेरे मिरपर जिस गणपतिको दान किया था, अब यौवन विगत
होनेपर उन्हींको प्रणाम कर रही हूँ । हे हतभाग, तुम सन्तुष्ट होओ ॥ ७२ ॥

अन्तोहुत्तं डजइ जाआसुण्णे घरे हल्लियउत्तो ।
उक्खत्ताअणिहाणाइं घ रमिअट्ठाणाइं पेच्छन्तो ॥ ७३ ॥
[अन्तरभिमुख दद्यते जायाशून्ये गृहे शालिकपुत्र ।
उत्खातनिधानानीय रमितस्थानानि परयन् ॥]

जायाशून्य घरमें रमणके स्थानोंको, उत्खात सज्जित निधिके उत्पाटित



स्वाध्यायी धर्मि कर्मकर्मैकं गायनं च वैभवं हविर्गुणैकं हृदयं दमस्त
अनुभव हो रहा है ॥ ३ ॥

विदामहो ध्यायन्तु सर्वे शीघ्रं च जीवन्मुक्ताः ।

आर्षान्ति अस्स विरहे तेष समं कीरिणां मया ॥ ७५ ॥

[विष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम्]

आपलें कळ विरहे तेच कळीं व्हरचो नासो.]

शिक्षण विभाग में विद्यार्थी सम्बन्धित एवं शैक्षणिक विकास के लिये
 विद्यार्थी द्वारा विद्यार्थी सम्बन्धित सम्बन्धित कार्य १ २ ३ ४

तैष्य च मन्त्रमि मन्त्रबुद्धि पुरित्त्य मन्त्र क्षेत्रै सुहृत् ।

होयसमन्तमपि मरुतो मा तुल्यं पुण्यं वि कथिस्त ॥ ७५ ॥

[कृपया यह प्रश्न सन्तुष्टि प्रणाली से पूछें]

एतदुक्तमपि विचिन्तयन्तः सा केन पुनरपि कल्पितव्यमि ॥

हे कुल, तुमको हृदयेकी होकर कलेज की चर्दी में तुम्हें रक्षित करें
 व धर्म की कोकिल कीचड़ों होकर की कला की काइसी ॥ ७७ ॥

ਧਿਆਨਸ਼ੁਰ ਭੀ ਬਰਯੋ ਬਰਯੋ ਤੇ ਸੁਭਾਜ ਵਿਸਾਖਿਯੋ ਬਰਯੋ ।

एषाविष्णुपत्तिरिति विज्ञेयं पश्चिम दीक्षा न शक्यते ॥ ४५ ॥

[अन्तर्गत विषयों में है प्रत्यक्ष विपणन के अन्तर्गत]

पुनर्निर्माण इत्यस्य अर्थोऽस्ति योषा न नाशितः ।

हे प्रभय, विचार्य होकर बसावसि आस्ताम करो, मैं तुम्हारा सब हाथ
जबन करीकी, तुम विचार्य कया कि तुम्हारी कुलीहारा एवं केत। कयन तुम्हारी
कोपी को कया न ही कयेता ॥ ५ ॥

परिदुःखान्तपक्षरिण्यपि नृत्तमखपि सुखो वर्तते ।

परिवाहो विम सुखकरत वाह नमस्तस्मिन् वाहो ॥ ७७ ॥

[सुतोऽस्यैवमिदं विदुर्वाचो वराहपाद ।

करीबान् इयं ह्युक्तान् पदसि कथयस्मिन्तो वाच्यम् ॥

हीनारमन्त्रीकी कक्षाओंमें निज पाल्य समिर्त्य होकर निजकमेके साथ ही पाल्य सुहायकत्वामें निज की लक्ष्मि का निजक करके-करके हु कमे मन्त्रक प्रदाय की कार्य प्रवाहित हो रहा है ॥ ७७ ॥

जं जं करेसि जं जं जंपसि जह तुम णिअच्छेसि ।
तं तमणुसिक्खिरीए दीहो दिअहो ण संपडइ ॥ ७८ ॥
[यथाकरोपि यथाज्जलसि यथा त्व निरीक्ष्यते ।
तत्तदनुशिष्यणशीलाया दीर्घो दिवसो न सपद्यते ॥]

तुम जो-जो करते हो, जो-जो बोलते हो एवं जिस प्रकार देखते हो
उसका अनुसरण करने जानेपर देखती हूँ कि मेरे दिन दूसर नहीं प्रतीत
होते ॥ ७८ ॥

भण्डन्तीअ तणाइं सोत्तु दिण्णाइं जाइं पडिअस्स ।
ताइं च्चेअ पहाए अज्जा आअट्ठइ रुअन्ती ॥ ७९ ॥
[भर्त्सयन्त्या तृणाणि स्वसु उत्तानि यानि पथिकस्य ।
तान्येव प्रमाते आर्या आकर्षन्ति रुदती ॥]

भर्त्सनाकर रात्रिमें पथिकको मोनेकेलिए रमणी ने पुआल दिया था, सबेरा
होनेपर उसे ही रोते-रोते बटोररही है ॥ ७९ ॥

वसणम्मि अणुव्विग्गा विह्वम्मि अग्गव्विआ भए धीरा ।
होन्ति अहिण्णसहावा समेसु विसमेसु सप्पुरिसा ॥ ८० ॥
• [व्यसनेऽनुद्विग्ना विभवेऽगर्विता भवे धीराः ।
भवन्त्यभिन्नस्वभावा समेषु विषयेषु सप्पुरषा ॥]

सज्जन व्यक्ति विपदामें अनुद्विग्न, सम्पदमें अगर्वित एवं भयमें धीर रहकर
अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियोंमें समस्वभावशील (स्थितप्रज्ञ) रहते हैं ॥ ८० ॥

अज्ज सहि केण गोसे क पि मणे वल्लहं भरन्तेण ।
अंम्हं मयणसराहअहिअअव्वणफोडनं गीअ ॥ ८१ ॥
[अथ सखि केन प्रातः कामपि मन्य वल्लभां स्मरता ।

अस्माक मदनशराहतद्वयवर्णस्फोटनं गीतम् ॥]

अरी सखी, प्रतीत होता है कि आज प्रातः कालही जैसे कोई प्रियतमाको
स्मरणकर इस प्रकार मानकर रहा है जिससे मदनबाणद्वारा आहत मेरे
हृदय का घाव विदीर्ण हो रहा है ॥ ८१ ॥

उट्ठन्तमहारम्भे यणए दट्ठण मुद्धवहुआए ।
ओसण्णकवोलाए णीससिअं पढमघरिणीए ॥ ८२ ॥
[उत्तिष्ठन्महारम्भौ स्तनौ दृष्ट्वा मुग्धवत्त्वा ।
अवसन्नकपोलया निःश्वसितं प्रथमगृहिण्या ॥]

एष्य कणोक विविधा वनस्पतिषु सुगन्धसु भातस्य अङ्गभित्तान् वने
इह सखीषु वैचित्र्यं विचित्रं कुरु गच्छेत् ॥ १ ॥

नदभूपुण्यशक्तियस्तु वि बहुरूपिणीपुर्नं प्रणमस्तु ।

सरसो मुवाळबबळो गमत्स इत्ये पिबब मिळावो ॥ ८१ ॥

[सुप्रसन्नः प्रकृतिकल्पवृक्षे पश्यन्महामुनिर्ब्रह्मा ।

सहस्रौ शुभाङ्कमन्त्रो मन्त्रस्य हस्तस्य च मन्त्रस्य ॥ ३ ॥

अन्यत्र प्रमाण होनेपर भी विधायक कमिटीका पूर्व आशयका हाकीने
 विधायक निवा माल सुप्रीमकोर्टकी म्काय होता था तदा है प्रविष्ट नहीं
 हो रहा है ४ ५ ६ ७

पश्चिम दिग्वा कृषिभ्यां सुखेषु तूर्मं परधनमिच्छते धनवान् ।

॥ ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥

[अजीब जिसे वह दुनिया सुझाए लं राजने का दोष]

का कस्तूरी को काज की सिमिलानुभाषी है कवि ।]

हे जिने मलम होओ। कीज सुनिज हुआ है ? सुनहु, तुमने कोय जिबा है ? पात्रोंके उमि कोय बीजा ? ओ पापा कीज है ? हे पाप तुम्ही पापा हो। होओ ? सोरे अमुन्य की कवि के कहत ॥ ७४

एहिसि तुमं सि विमिसं च अभिषं अभिषीय एहमसं ।

હેલો શ્રીતાતપવિષ્ણુસાર ગરિષ્ઠ વ વાહીર્ણ ॥ ૧૨ ॥

[कर्मचारी आदिपति विधिपति कर्मचारी कर्मचारी कर्मचारी]

॥ १ ॥

‘सुख साझेदारी’ का अर्थ यह है कि जो व्यक्ति अपने जीवन के सुख-सुविधाओं का आनंद लेता है, वह अपने सुख-सुविधाओं का आनंद अपने साथियों के साथ साझा करता है। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति अपने सुख-सुविधाओं का आनंद अपने साथियों के साथ साझा करता है। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें व्यक्ति अपने सुख-सुविधाओं का आनंद अपने साथियों के साथ साझा करता है।

अथवाग्यं न स्यात् न तदा गदसङ्घातः परिष्कृतः ।

अथवा ॥ ८५ ॥

[कल्पवृक्षस्य वा कल्पवृक्षे वै वा अयमस्ति वा परिज्ञायति ।

आत्मनिवृत्तिरुत्तममार्गः । ॥

इस रकम की वसूली, कीर्ति आकाशवाणी कर रही, वह अद्वैत द्वारा आयोजित होकर वित्तियत नहीं कर रही है। इस वित्तियतता का हृदय आधुनिक वैकल्पिक द्वारा अद्वैत होकर प्राप्त हो गया है। ४ ५ ६

केसररजविच्छेदे मकरन्दो ह्येव जेत्तिओ कमले ।

जह भमर तेन्तिओ अण्णहिं पि ता सोहसि भमन्तो ॥ ८७ ॥

[केसररज समूहे मकरन्दो भवति यावान्कमले ।

यदि भमर ताषानन्यत्रापि तदा शोभसे भमन् ॥]

रे औरै, कमलके केसरपराग समूहमें जितना मधु होता है, यदि अन्य पुष्पों में भी उतना ही मधु हो तो तुम्हारा चहों जाना अच्छा लगता है ॥ ८७ ॥

पेच्छन्ति अणिमिसच्छा पद्धिआ हलिकस्स पिट्ठपण्डुरिमं ।

धूअं दुद्धसमुद्धुत्तरन्तलच्छि विअ सअह्मा ॥ ८८ ॥

[प्रेक्षन्तेऽनिमिषाणाः पथिका हलिकस्य पिष्टपण्डुरिताम् ।

दुहितर दुग्धसमुद्धोत्तरलक्ष्मीमिव सत्पुष्पा ॥]

अनिमिषलोचन देवताओंने क्षीरमागरसे उर्ध्वगत पीतवर्णं लक्ष्मीकीक्षोर जिसप्रकार सत्पुष्पभावसे देखा था, तण्डुलादि चूर्णलेपनद्वारा पीतवर्णप्राप्त हलिक पुत्रीके प्रति राहगीर भी उसी प्रकार निर्निमिष एव सत्पुष्प होकर दृष्टिपात कर रहे हैं ॥ ८८ ॥

कस्स भरिसि त्ति भणिण को मे अत्थि त्ति जम्पमाणाए ।

उव्विग्गरोद्धरीए अम्हे वि रुआचिआ तीए ॥ ८९ ॥

[कस्य स्मरसीति भणिते को मेऽस्तोति जल्पमानया ।

अद्विग्नरोदनक्षीलया वयमपि रोदितास्तथा ॥]

‘कित्ते स्मरणकर रही हो ?’ ऐसा पूछे जानेपर, ‘मेरा कौन है’ ऐसा उत्तर दे, उद्वेगसे रोनेवाली उस रमणीने हमलोगोंको भी रुझाया है ॥ ८९ ॥

पाअपडिअं अह्वे किं दाणिं ण अट्टवेसि भत्तारं ।

एअं चिअ अवसाणं दूरं पि गयस्स पेम्मस्स ॥ ९० ॥

[पादपतितममण्ये किमिदानीं नोत्थापयति भर्तारम् ।

एतदेवावसानं दूरमपि गतस्य प्रेम्ण ॥]

हे अनुचित व्यवहार करनेवाली, अभीतक तुम पैरोंपर गिरे हुए भर्तारको उठा नहीं रही हो ? अत्यन्त वृद्धि प्राप्त प्रेमकी भी यही चरमसीमा है ॥ ९० ॥

तडविणिद्धियग्गहत्था वारित्तरद्धेहिं घोलिरणिअम्या ।

सालूरी पडिअिम्ये पुरिसाअन्तिव्व पडिदाह ॥ ९१ ॥

[तदविनिहिताग्रहस्ता वारितरङ्गैर्धूर्णनक्षीलनितम्बा ।

शालूरी प्रसिधिम्ये पुरुषायमाणेष प्रतिभाति ॥]

कण्ठ्यज्जल जगता ह्यत्र रज्जकर एवं कण्ठराजह्वता विठम्बायैकको दिक्क-
कर मेघको करके प्रतिविम्बों माथो हुपरीविठ जम्बाकर रही है देखा ज्योत
होवा है ॥ ११ ॥

सिद्धरिममभिममुहयैविमार्हं शुभहृत्पसिद्धिभम्भार्हं ।

सिद्धबन्धु बांझहीनो ह्रस्वम्प ह्रस्व व्यस्यपन्न ॥ १२ ॥

[कौकुत्तमभिममुहयैविमार्हं ह्रस्वहृत्पसिद्धिभम्भार्हं ।

सिद्धबन्धु ह्रस्वर्षो ह्रस्वम्प ह्रस्वज्ज्वादीय ॥]

हे ह्रस्वम्प, तुम्हारी ह्रस्वघेरी ह्रस्वमिर्षो कीक्यन ममित्तपामक ह्रस्व-
मिर्षेय ह्रस्वर्षीपाक्य एवं ह्रस्वज्ज्वादीय ह्रस्व ज्वाक्य ज्वाये भी
जिहा लगे ॥ १२ ॥

वेत्तिम्यैसा रप्पन्न विमम्प कद्द सत्तिमां यं जामो सि ।

जं छिन्नार गुकमचक्षुक्षिभ्यो सत्पत्ती वि लो सुहजो ॥ १३ ॥

[वाक्यमात्मा रप्पा विमम्प कर्त्तं पापन्न जामोमक्षि ।

वेत्त सत्तपत्ते गुकमचक्षुक्षिभ्योमक्षि यं ह्रस्वम्प ॥]

हे विमम्प रप्पा जामोत् रप्पलेका विमम्पा परिमम्प है जहवा परिमम्प
केकर ह्रस्वमे जाम्प कर्त्तों कर्त्ती जिहा । जाम्प गुपत्ती के जाम्पमे कर्मित होकर
ह्रस्वमेपर भी कद्द ह्रस्वमे ह्रस्वार्हता ह्रस्व भी जिहा जामा है ॥ १३ ॥

मत्पमसूर्तिविर्द्धं यं मोत्तिमं विमम्प मापममयीमो ।

मोत्तो पाउसम्भोजे तपमज्जम्पं दमम्पविर्द्धं ॥ १४ ॥

[मापमसूर्तिविर्द्धमिव लीविर्द्धं विमम्पममयीमो ।

मत्पम जाम्पमम्पे दमाम्पमज्जम्पममयीमो ॥]

मयीमो मोर विमम्प मीय होकर मापमममि मूर्तिहता विमम्प ह्रस्वमे जमाप
विमम्पी देवेमम्प विमम्प मद्द जाम्पे कर्त्ते ह्रस्व जाम्पममयीमो जाम्प कर रहा है
[मय्यमा दूर ही कर्त्तेत पाम है ।] ॥ १४ ॥

जम्भार बीलकज्जुमपरिउम्पारिभं विहार पापमर्द्धं ।

जम्भमरिभज्जम्भरन्तापम्पमार्गं कम्पविमम्प ॥ १५ ॥

[मयीमो बीलकज्जुममयीमोमिर्द्धं विमम्पे तपमज्जम्प ।

जम्भमरिभज्जम्भरन्तापम्पमार्गं कम्पविमम्प ॥]

जम्भार रपमज्जु बीलकज्जुम हता जाम्प हीमैर भी (मयीमिर्द्ध वा

उद्धृष्टत) उर्ध्वगत होकर जलभृत मुनीए जलधरके घीघसे ईपत् उद्धृत चन्द्र-
मण्डलकी नाई शोभा पा रहा है ॥ ९५ ॥

रात्रविरुद्धं च कद्वं पद्मिओ पद्मिअस्स साहद्व मसद्धं ।

जत्तो अम्याण् दलं तत्तो दरणिग्गअं किं पि ॥ ९६ ॥

[राजविरुद्धामपि कयां पथिक पथिकस्य कथयति सप्ताहम् ।

यत आग्राणां दलं तत ईपस्त्रिगतं किमपि ॥]

‘आम्रबृचके जिस स्थानसे पत्तेका उद्गम होता है, उम स्थानसे थोड़ा थोड़ा
निफला हुआ (अहुर) न जाने क्या दिखायी दे रहा है ? राजविरुद्ध
चर्चाकी भौंति हम यातको भी एक पथिक दूसरेसे अत्यन्त नाश्चित होकर
कहता है ॥ ९६ ॥

धण्णा ता महिल्लाओ जा दइअं सिविणए वि पेच्छन्ति ।

णिह्विअ तेण विणा ण एह का पेच्छए सिविणं ॥ ९७ ॥

[धन्यास्ता महिला या दयित स्वप्नेऽपि प्रेक्षन्ते ।

निद्रैव तेन विना नैति का प्रेपते स्वप्नम् ॥]

जो प्रियको स्वप्नमें भी देखलेती है, येही नारी धन्य है; उमके विरहमें मुने
निद्रा ही नहीं आती, स्वप्न कौन देखे ? ॥ ९७ ॥

परिरद्धकणअकुण्डत्यलमणहरेसु सवणेसु ।

अण्णअसमअवसेण अ पद्मिरज्जइ तालवेण्टज्जुअं ॥ ९८ ॥

[परिरब्धकनककुण्डलगणहस्थलमनोहरयोः श्रवणयो ।

अन्यसमयवशेन च परिध्रियते तालघृन्तयुगम् ॥]

कनक कुण्डलसुम्बित गण्डस्थलमें शोभित कर्णद्वयमें कालान्तरवश
तालपत्रनिर्मित कर्णाभूषणयुगल भी धारण होता है ॥ ९८ ॥

मज्झरूपत्थियस्स वि गिम्हे पद्मिअस्स हरइ संतावं ।

द्विअअट्ठिअजाआमुहअद्धजीह्वाजलप्पवहो ॥ ९९ ॥

[मध्याह्नप्रस्थितस्यापि ग्रीष्मे पथिकस्य इति सतापम् ।

हृदयस्थितजायामुल्लसृगाङ्गज्योत्स्नाजलप्रवाह ॥]

अपने हृदयस्थित जायाके मुखचन्द्रकी ज्योत्स्ना-जलप्रवाह, ग्रीष्ममें
मध्याह्नके समय पथमें रुकेहुए पथिकका सन्ताप दूरकर देता है ॥ ९९ ॥

भण को ण रुस्सइ जणो पत्थिअज्जन्तो अपसकालम्मि ।

रतिवायडा रुधन्तं पिअं वि पुत्त सवइ माआ ॥ १०० ॥

[यत्न को न कल्पति यत्नः कल्पनाधीनोऽप्यस्यते ।

रतिव्याख्या वदन्ति विदमति ॥३॥ चाली आता न ।

अनुपपन्न एवम् एवं जन्मपक्षे अनुपपन्न होवेत्त कौन न
होता, यत्नामी सो ? रतिव्याख्या आतामी विदुषके होवेत्त न
देवी है ॥ १ ॥ ॥

यत्न कर्तव्य विदमत् गाहार्थं सार्थं सहाय्यमपिर्ज ।

सौम्यं न न जन्मद विदमत् सहाय्यमेव अपिर्ज पि ॥ १ ॥

[यत्न चतुर्थ (आमलि पादार्थं कर्तं स्वभावान्मयीयम् ।

ज्ञाना यत्न कल्पति इत्येव सहाय्यमेवमपि ॥]

स्वभावान्मयीय यावा सहाय्यं चतुर्थं कर्तव्यं यहाँ सहाय्य हो तब
सहाय्यमेव इत्येवमो अमुक भी कर्तव्य सहाय्य यहाँ कल्पता ॥ १ ॥ ॥

पञ्चम अतक

उज्जसि उज्जसु कट्टसि कट्टसु भद फुट्ठमि दिवम ता फुट्ठसु ।

तद धि परिसेसिओ च्चिअ म्माहु मए गतिअमग्गभावो ॥ १ ॥

[दण्डम दण्डरथ दण्डम दण्डम अथ भुग्मि दण्डय तागुट्ट ।

तथापि परिसेयिअ एए म मनु मया गतिअमग्गायः ॥]

अरे दण्डय, दण्ड होना हो सो हो जाओ, दण्डित या पण होना हो तो हो जाओ, किन्तु तब भी उमे मैने म्मेह या सजाय विगटित ही निर्धारित किया है ॥ १ ॥

दट्ठणु गन्धतुण्डग्गणिग्गअं णिअसुअस्मन् दाढग्गं ।

भोण्डी विणायि कज्जेण गामणिअडे जये चरद ॥ २ ॥

[इष्टा विनासुण्डाप्रनिगम नित्तमुत्तस्य दृष्टाप्रम ।

मूकरी विनापि कार्येण प्रामनिष्टे यवाक्षरि ॥]

अपने पुत्रके विशाल सुताग्रमे निकले हुए दाढ़ोंका देखकर मूकरी विना किसी कामके गौंधके निकटस्थ जयके गेगोंम विशरणपररही है ॥ २ ॥

हेलाकरग्गअट्टिअजलरिक्क स्वाधर पआसन्तो ।

जअइ अणिग्गअचडवग्गि मरिअगगणो गणादिउई ॥ ३ ॥

[हेलाकराग्राकृष्टजलरिक्क सागरं प्रबानपम् ।

जयस्यनिग्रहवटवाग्निभृतगगनो गणाधिपति ॥]

हृष्टद्वारा अवज्ञापूर्णक जलपान किये जानेपर रिक्क या शून्य सागरको प्रकानित कर निग्रहममर्थ गणाधिपति अनिमृहीत यक्षबामल द्वारा गगनमण्डल को परिपूर्ण करत-करते अययुक्त हो रहे हैं ॥ ३ ॥

एएण च्चिअ कंकेहि तुज्झ तं णरिथ जं ण पज्जत्तं ।

उचमिज्जइ ज तुह पल्लवेण चरकामिणी हत्थो ॥ ४ ॥

[एतेनैव कङ्केखे तव सखास्ति यत्त पर्याप्तम् ।

उपसीयते यत्तव पल्लवेन चरकामिमीहस्त ॥]

हे अशोककृष्ण, तुम्हारे पल्लवकेसाथ सुन्दरी कामिनीका साथ उपमित होता है, इससे प्रतीत होता है कि तुम्हारे पास यह है ही नहीं जो पूर्ण न हो ॥

रक्षिमविमदु रितासिध समधन्यम सुधर्म असौम्ये सि ।

बहुमरचसकमलाह्वय पि र्भ विमससि सपुत्र ॥ ५ ॥

[रक्षि रक्ष्य विजयिभ्यश्च यज्यमहोमीभ्यि ।

बाहुवतिषामकमलाह्वयेभ्यि बहुवमसि कर्णम् ॥]

हे रक्षि, हे रक्ष्य, हे विजयी, हे बाहुवत्यमममम सुधर्म दास्यवर्ग
तुम अहोय अथवा ओकरहित हो अत्यन्त, ओह पुत्रादी के वात्सल्यक द्वारा
आहत होवैय की तुम कर्ण नामके विरहित होने हो अर्थात् देखते
रहते हो ॥ ५ ॥

वसिषो वासवभ्यो योगं विद्वज्जप्यं च पमदन्तो ।

सुरसत्पद्मभ्यो वासवदधौ हरी जगद् ॥ ६ ॥

[वसेर्वाचभ्यो वासर्षे विपुषां च जगद् ।

सुरार्णवभ्यो वासवदधौ हरिर्वसति च]

वसवानी द्वारावर्गों के वासववर्गच अर्थात् विरधीकृत्य के विरधर्मे
वासर्षे तुम एवं विपुषा है—इसे अत्यन्त अत्यन्त करते-करते सुरार्णव
वचनप्ररोहद्वारा जगत् को आच्छिन्न कर विधीय अथवा वासव वासावदधी
विजयी हो । वसिष्ठा के वासवभ्यो के विरधमके वसर्षे—अर्थात् बहुत
दिना एवं वैकुण्ठ नाम अत्यन्त करते-करते देवर्षि की आच्छिन्न करनेवाले
वासवकी विष्णु विजयी हो ॥ ६ ॥

विज्ञाविज्ञा जज्ञो गार्ग्यरभूमा रित्यमसिधो वि ।

अयुमरचसप्राप्तिह्वयविषममसुहसिक्लिष्टीर ॥ ७ ॥

[विज्ञां च जज्ञो गार्ग्यरभूमा रित्यमसिधो वि ।

अयुमरचसप्राप्तिह्वयविषममसुहसिक्लिष्टीर ॥]

जग्री होने के विष्णु विज्ञान वेदी गार्ग्यरभूमा हविषा अयुमरभ्यो समम
विषमके प्राप्तिह्वयविषम सुहसि अत्यन्त लोहविष्णुओं के वात्स्य कीवर्गोंकी
हो विष्णुविकाराधिके भी हुआ रही है ॥ ७ ॥

आर्यसोमसमुष्मन्मूरुहृष्यसिक्लिष्टीर ।

च समप्यर चसप्राप्तिह्वय अयुमरचसमो ॥ ८ ॥

[आर्यसोमसमुष्मन्मूरुहृष्यसिक्लिष्टीर ।

च समप्यर चसप्राप्तिह्वय अयुमरचसमो ॥]

आर्ये रचसप्राप्तिह्वय अयुमरच होने के सुह द्वारा अत्यन्त

स्वेदसमुद्रमसे शीतलाद्रिनी नवकापालिकप्रतधारिणी रमणी स्वेदनिवारणके
लिपि भस्मानुलेपन कार्यको समाप्त नहीं कर पा रही है ॥ ८ ॥

पक्वो पण्डुवद् यणो वीओ पुलपद् णहमुद्दालिद्विओ ।

पुत्तस्स पिअअमस्स अ मज्झणिसण्णापे घरणीए ॥ ९ ॥

[एक प्रस्तौति स्तनो द्वितीय पुलकितो भवति नयमुग्धालिखित ।

पुत्रस्य प्रियतमस्य च मध्यनिषण्णया गृहिण्या ॥]

पुत्र पय प्रियतमके बीच घँठनके कारण गृहिणीका एक स्तन दुग्धपात कर
रहा है और दूसरा स्तन पनिप्रेममें नलाप्रसे विद्वित हो पुलकित हो
रहा है ॥ ९ ॥

पत्ताइच्चिअ मोहं जणेइ चालत्तणे वि वट्टन्ती ।

गामणिधूआ विसकन्दलिव्व वट्ठीओ काहिइ अणत्थं ॥ १० ॥

[पत्तावायेव मोह जनयति यादृत्वेऽपि वर्तमाना ।

ग्रामणीदुहिता विपकन्दलीव वर्धिता करिष्यत्यनर्थम् ॥]

यालिकाकी अस्थामें डम प्रकार वर्तमान रहकर भी ग्रामपतिकी दुहिता
मोह उत्पन्न कर रही है, विपकन्दली अर्थात् विपवृक्षकी भाँति वद्वित होकर
अनर्थ ही करवावेगी ॥ १० ॥

अपहुप्पन्त महिमण्डलमि णहसंठिअं चिरं हरिणो ।

तारापुप्फण्णवरञ्चिअ च तइअं पअं णमह ॥ ११ ॥

[अग्रमधन्महीमण्डले नभःस्थितः चिरं हरे ।

तारापुष्पप्रकराञ्जितमिव मृतीय पदं नमत ॥]

महिमण्डलमें अपरिमित होनेके कारण बहुत देरतक नभोमण्डलमें स्थित
तारारूप पुष्परजि द्वारा सज्जित त्रिविक्रम विष्णुके मृतीय चरणको नमस्कार
करो । [गुप्तस्थानमें अतर्मुक्ता वयस्याके प्रश्नके उत्तरमें नायिका रात्रिमें
उपयुक्ता त्रैविक्रमवन्ध्यास्य रमणकलाके विषयमें दूसरेके यहानेमे पतासी है ॥]

सुप्पउ तइओ वि गओ जामोत्ति सहीओ फीस मं भणह ।

सेहालिआणं गन्धो ण देइ सोत्तु सुअह तुम्हे ॥ १२ ॥

[सुप्पतो मृतीयोऽपि गतो याम इति सत्यः किमिति मां भणथ ।

शेफालिकानो गन्धो न वृदाति स्वप्नु स्वपित यूयम् ॥]

सखियो, तुम मुझसे यह क्यों कह रही हो कि “तीसरा याम भी बीत गया,
तुम सोओ” शेफालिकाकी गन्ध मुझे सोने नहीं दे रही है, तुम सब सो जाओ ॥

चैद स्तो ष संमरिज्जह मा मे तह सँडिम्मरं भङ्गा ।

विम्वसिणं वि सुरप विज्जहाअर सुरमपसिम्मप ॥ १३ ॥

[एवं य म संमर्यति सो मम तत्कार्यविपत्ताभ्यानि ।

विचरिष्येति द्वाराणि विज्जायन्ति सुरागराणि इव ॥]

जो व्यक्ति सुरागराणिके समान सुराकरियाऽऽकलित होवेन जो मी
जडोंको बचानेविना समझकर बचने उक्ति जानि जगती बचता है बने हैये
स्वाय न कई] ॥ १३ ॥

सुखकामावदसहस्रममम विमृगगतमदप्यधीय ।

रिदं परिदुग्ध्यं कालेय तर्हं तज्जामस्त ॥ १४ ॥

[सुखदुःखसहस्रमममविमृगगतमदप्यधीयत् ।

तामरादहं कालेय तर्हं तज्जामस्त ॥

मौल्यगत तत्तामस उत तादहं तज्जामसो देव जाता है जिससे बरा
कीचह हवता जा रहा है एवं जिसमें तामस कमल मली कट्टर एवं
ताम्रमाला जमी कल या रहे हैं ॥ १४ ॥

बोरिअरमसन्नामुह मा पुत्ति प्यमसु जल्लभाप्तिमि ।

अहिमधरं कस्मिज्जसि तमप्परेण दीवसीदम्भ ॥ १५ ॥

[बोरिअरमसन्नामुहे मा पुत्ति जल्लभाप्तिमे ।

अविज्जतां कल्लये जल्लेकुने दीवसिनेव ॥]

हे दीवसिने कामावत् पुत्ति जल्लभाप्तिमे जल पुनः, जल्लभाप्ति
श्रेष्ठमे दीवसिकापी मार्गं जलीजल्लभाप्ति अविज्जतां विज्जानी दे बाओपी ॥

बाहिता पडिबमर्थं न देह कालेय पक्षमेकस्त ।

असई कालेय विभा परण्यमाने पारिदप्ये ॥ १६ ॥

[बाहिता प्रतिपत्तयं न देहति कल्लमेवैवस्य ।

असई कालेय विभा पडिबमर्थे पडिबमर्थे ॥

पडिबमर्थे कल्लमेवै विज्जतां करेवर जो कल्लमेवै पडि बर पडि दे
रही है एवं कालेयविज्जतां जो कल्लमेवै विज्जतां करेवर जो हो रही है ॥

अम अलाह इ मोला परण्य प तुह मरिज्जमहोत्त ।

किं कल्ल अकल्ल जाल्ल जाल्ल ता न प्यमेमो ॥ १७ ॥

[अम अलाहो कल्लमेवै पडिबमर्थे न कल्ल मरिज्जमहोत्त ।

किं कल्लमेवै कालेय पडिबमर्थे तावत् कल्लमेवै ॥]

ठीक है, हमलोग क्या हुआ असती ही हैं । हे पतिव्रते, तुम हट जाओ । तुम्हारा गोत्र अर्थात् नाम वा कुल मलिन नहीं हुआ है; तब भी किसी व्यक्ति के जायाकी भाँति हमलोगोंने कभी नाईकी कामना नहीं की है ॥ १७ ॥

णिदं लहन्ति कद्विअं सुणन्ति खलियक्खरं ण जम्पन्ति ।
जाहिँ ण विट्ठो सि तुम ताओ च्चिअ सुदअ सुदिआओ ॥ १८ ॥

[निद्रां लभन्ते कथित शृण्वन्ति खलिताक्षर न जल्पन्ति ।

यामिर्न दृष्टोऽसि त्वं ता एव सुभग सुक्षिता ॥]

हे सुभग, जिन रमणियों ने तुम्हें देखा नहीं है, वे ही सुक्षी हैं । कारण वे सो सकती हैं, दूसरेकी बातें सुन सकती हैं, एव उन्हें अक्षरस्खलनके साथ बातचीत नहीं करनी पड़ती ॥ १८ ॥

बालअ तुमाइ दिण्णं कण्णे काऊण घोरसद्धादिं ।
लज्जालुइणी वि बहू घरं गआ गामरच्छाप ॥ १९ ॥

[बालक स्वया दत्तां कर्णे कृत्वा वदरसद्धाटीम् ।

लज्जालुरपि बधूगृह गता ग्रामरक्षया ॥]

हे बालक, लज्जाशील होनेपर भी बधू तुम्हारे दिये हुए घेरगुच्छको कानमें धारण कर गाँवके पथसे घर चली गई ॥ १९ ॥

अह सो विलक्खद्विअओ।मए अहव्वाएँ अगहिआणुणओ ।
परघज्जणच्चरीहिँ तुहोहिँ उवेक्खिअओ णेन्तो ॥ २० ॥

[अथ स विलक्षद्वयो मया भगव्यया भगृहीतानुनय ।

परवाद्यनर्तनशीलामिर्युष्माभिरुपेक्षितो निर्यन् ॥]

अरे, मैंने अशिष्टा होकर उसका अनुनय स्वीकार नहीं किया, इससे विधुर-हृदय हो वह क्या घरसे निकलने समय तुमलोगों द्वारा उपेक्षित हुआ है ? कारण, तुम्हारा काम ही है याजा घजाकर दूसरोंको नचा डालना ॥ २० ॥

दीसन्तो णअणसुहो गिबुइज्जणओ करेहिँ वि छिवन्तो ।
अव्भत्थिअओ ण लव्भइ चन्दो व्व पिओ कलाणिलओ ॥ २१ ॥

[दृश्यमानो नयनसुखो निर्वृत्तिजनन कराम्यां [अपि] स्पृशन् ।

अभ्यर्षितो न लभ्यते चन्द्र इव प्रिय कलानिल ॥]

दृष्टिपथमें आनेपर नयनके सुखका उत्पादक, कर अथवा फिरन द्वारा सस्पर्श

करवैरा संसारहर वल्लभपुद्गल अर्थात् वीरवक्त्रकालक भोता विष कानोद्वेग
वन्द्यो भक्ति वर्धित होकर भी दुःखान्त है ॥ ११ ॥

जे वीरवक्त्रमरमरनामांशभा मासि वारमनुच्छेदे ।

काक्ष्य वज्रका पिप्रमयस्त तं वज्रशुभा आभ्य ॥ १२ ॥

[ये वीरवक्त्रमरमरनामांशभा आलङ्करीकृतोत्तरे ।

काक्ष्य वज्रका विषयवत्त के कानोद्वेग कातक ॥]

हे विषयवत्त वही० किन्तु जो वज्रक वन्द्य वैन कानोद्वेग वीरवक्त्रके
काममें होते करते के ये वक्त्रके प्रभावसे जलान्दीन वृष के समान लीन ॥
हो है ॥ १२ ॥

वज्रमहुरेव वैष्णवे माउष्य पुष्पिमम्ह वत्ताहे ।

सिद्धिप्राप्तविदिकाम्येव व विदुपयहेव साम्प्रति ॥ १३ ॥

[वज्रमहुरेव वेष्णा जलान्दीन वृषय एव वत्ताहे ।

सिद्धिप्राप्तविदिकाम्येव विदुपयहेव साम्प्रति ॥]

वही लीन लयमें वज्र वत्तरे विविधी भक्ति वज्रमहुरेवसे मैं वन
संसारमें आनन्द हुआ जोय वही है ॥ १३ ॥

वाचा सहायसर्वा विधिकार सरं गुणमि वि पञ्चमं ।

वृत्तस्त वज्रमस्त व सचम्य वि विरं होय ॥ १४ ॥

[वाच सहायसर्वा विविध वि विरं गुणमि वत्ताहे ।

वज्रमस्त वज्रमस्त व सचम्य वि विरं भवति ॥]

वज्रमही वहीके वर सत्तामि सहायसर्वा वाचको वृ पञ्चम, वज्र
वृत्त वत्त व वहीका आनन्द वना वही विरताकी हो लयता है ? ॥ १४ ॥

पञ्चम वाचमविदिक पञ्चम वृ वज्रो विमम्हमायेव ।

वज्रमहुरेव वहीव महुमहुरेव व वज्रमहुरेव ॥ १५ ॥

[पञ्चम वाचमविदिक पञ्चम वृ वज्रो विमम्हमायेव ।

वज्रमहुरेव वहीव महुमहुरेव व वज्रमहुरेव ॥]

वज्रमही वे वही वज्र वज्रमहुरेव विमम्हमायेव वही वज्र वज्रमहुरेव के
वज्रमहुरेव विमम्हमायेव वही वज्रमहुरेव (वज्रमहुरेव वज्र वज्रमहुरेव
वज्रमहुरेव वज्रमहुरेव) वहीमें वज्रमहुरेव है ॥ १५ ॥

माहाहुरेवमहुरेव वज्रमहुरेव मा मावि विमम्हमायेव ।

वज्रमहुरेव वज्रमहुरेव वज्रमहुरेव वज्रमहुरेव वि वज्रमहुरेव ॥ १६ ॥

[मालतीकुसुमानि दग्ध्वा मा जानीहि निर्धृतः शिशिर ।

कर्त्तव्याद्यापि निर्गुणानां कुन्दानामपि समृद्धि ॥]

ऐसा मत समझना कि केवल सगुण मालतीकुसुमके समूहको जलाकर शिशिर मनुष्ट हो गया है, अभी भी निर्गुण कुन्दपुष्पसमूहकी समृद्धिको घटाना उसके लिए दोष है ॥ २६ ॥

तुङ्गाणँ विसेसनिरन्तराणँ [सरस्स] यणलद्धसोद्धान ।

कमकज्जाणँ भडाणँ च यणाण पडण वि रमणिज्जं ॥ २७ ॥

[तुङ्गयोर्विशेषनिरन्तरयो [सरस] यणलद्धशोभयोः ।

कृतकार्ययोर्मंदयोरिव स्तनयोः पवनमपि रमणीयम् ॥]

मानादि द्वारा उन्नत, विशेष निरन्तर अथवा समकक्षमात्र पक्ष युद्धादिमें प्राप्त सरसगणविशिष्ट होनेके कारण अत्यन्त शोभित, विजयी योद्धाद्वयके समान उन्नत, अन्योन्यसलभ पक्ष सरसगणविशिष्ट अर्थात् रतिसमरमें नखादि चिह्नयुक्त होनेके कारण अत्यन्त शोभित कृतकृत्य स्तनद्वयका लटक जाना भी रमणीय है ॥ २७ ॥

परिमलणसुद्धा गुरुभा अलद्धविवरा सलक्षणहरणा ।

थणमा कच्वालाव ध्व कम्स द्विअण ण लगन्ति ॥ २८ ॥

[परिमलनसुद्धा गुरुभा अलद्धविवराः सलक्षणाभरणाः ।

स्तनकाः काष्ठायापा इव कस्य हृदये न लगन्ति ॥]

मर्दनमें सुखकर, स्थूल, रज्जुशून्य पक्ष सुलक्षणाकास्त आभरणसे शोभित स्तन—विचारसुखकर, अर्थगुरु, दोपरहित पक्ष सुलक्षणाविशिष्ट अलङ्कारसे सुशोभित काष्ठायापके समान—किसके हृदयमें नहीं जाते ? ॥ २८ ॥

खिप्पइ हारो थणमण्डलाहि तरुणीअ रमणपरिरम्मे ।

अच्चिअगुणा वि गुणिनो लहन्ति लहुअत्तणं काले ॥ २९ ॥

[खिप्पते हार स्तनमण्डलात्तरुणीमी रमणपरिरम्मे ।

अर्चितगुणा अपि गुणिनो लभन्त लघुत्वं कालेन ॥]

रमणकालके आलिङ्गनमें तरुणी स्तनमण्डलसे हारको हटा रखती है, अवसर उपस्थित होनेपर अर्चितगुणावाले गुणीगण भी लघुत्व प्राप्त करते हैं । अर्थात् छोटे समझे जाते हैं ॥ २९ ॥

अण्णो को वि सुद्धाओ मम्महसिद्धिणो हला ह्व्यासस्स ।

विज्झाइ णीरसाणं द्विअण सरसाणँ अत्ति पज्जलइ ॥ ३० ॥

[अन्वा बोधेति स्वधातो जन्मवधिविधौ इवा इताकात् ।

विशोक्तिं भीतमाना इत्ये भारवाणां द्रष्टिर्नि मन्त्रमिति ॥]

यौ इताक (इत्थ) मन्वाधिका रचनाय आवात्त मद्रिसे चिठकन
है । विराम इत्यर्थे यह पुस्तकानी है किन्तु एताक इत्यर्थे पुस्तक बन
गयी है ॥ १ ॥

तद् वस्तु मायपरिचयिभ्यस्तु विरपरबन्धनमूलम् ।

मासि पञ्चमस्तु सुभो सद्गो विष्य वेद्यमदक्यस्त ॥ ३१ ॥

[कथा एतत् मायपरिचयिभ्यस्तु विरपरबन्धनमूलम् ।

मासुक्तमि पञ्चम सुभा सद्गोविने व वेद्यमदक्य ॥]

है मसी, जो वेद्यम इत्ये माय-बन्धनमूल है वही सुभा या सद्गो विषयी
यह विरामपर्व की कथा है, उसके पठनके फलर कोई आत्मा ही नहीं
हुनाही नहीं ॥ ३१ ॥

पामपरिचयौ य गतिमो विष्य मयन्तो वि मयिर्ष्य मयिष्यौ ।

इत्यन्तो वि य बद्धा मय कस्त कय कयो मयौ ॥ ३२ ॥

[पामपरिचयौ य गतिमो विष्य मयन्तो वि मयिर्ष्य मयिष्यौ ।

इत्यन्तो वि य बद्धा मय कस्त कय कयो मयौ ॥]

मायके वीर्य गतिमो जी तुमने वही कस्तका नहीं, बन्धने द्वारा छोटी
गति छोटी कतिमो जी तुमने छोटी गति तुमनी बन्धने बने बने पर जो
तुमने रोका नहीं । कस्तको का, किल्लेकिन् मायभरती हो ? ॥ ३२ ॥

पुसाह कर्ष्य पुसाह कर्ष्य पण्डोहर्ष लक्षक्य मय्यक्यौ ।

मुद्रक्यधयमहु विष्य द्रव्य कहरमय ॥ ३३ ॥

[लोभक्यौ कर्ष्य कर्मकर्म कर्म मय्यक्यौ लक्षक्यमय्यौ ।

मुद्रक्यधय लक्षक्य कर्ष्य विषयेन कहरमय ॥]

कर्मक्य व लक्षके के कस्तक्य लक्षक्यधय विषयमय्यक्य कर्मक्यौ लक्ष
क्य द्रव्य कर्म कर्म कर्म नहीं है, कर्मक्य भोती है कर्म कर्म कर्म कस्तक्य कर्म
कर्म नहीं है ॥ ३३ ॥

कासट्टे कर्मकर्मक्यौहरे लोभक्ये य कर्मक्ये ।

पहमेककस्तक्यपुसुम वीर्य पतिर्ष्य व कर्मक्य ॥ ३४ ॥

[वर्षाकाले उन्नतपयोधरे यौवन इव व्यतिक्रान्ते ।

प्रथमैककाशकुसुम इश्यते पलितमिव धरण्या ॥]

उन्नतपयोधर (स्तन) युक्त यौवनकी नाई उन्नतपयोधर (मेघ)
विशिष्ट वर्षाकी रातके घीत जानेपर, धरणीके पके हुए बालकी भाँति एक काश-
कुसुम पहले दिखायी पड़ा ॥ ३४ ॥

कथं गमं रश्मिभ्यं कथं पण्डुओ चन्द्रताराओ ।

गअणे चलाअपन्ति कालो होरं व कट्ठेइ ॥ ३५ ॥

[कुत्र गत रश्मिभ्यं कुत्र प्रणष्टाश्चन्द्रतारका ।

गगने चलाकापक्ति कालो होरमिवाकर्पति ॥]

दिनमें सूर्यभिरु कहाँ खो गया ? रात्रिमें चन्द्र और तारे कहाँ भाग
गए ? उपोतिर्विद्वोंकी ग्रहगणनार्थ रेखाचिह्नकी भाँति वर्षाकालीन आकाशको
चलाकापक्ति अङ्कित कर रही है ॥ ३५ ॥

अविरलपडन्तणवजलधारारज्जुघट्टिअं पअत्तेण ।

अपहुत्तो उअत्तेत्तु रसइ व मेघो महि उअह ॥ ३६ ॥

[अविरलपतन्नवजलधारारज्जुघट्टितां प्रयत्नेन ।

अप्रभवन्नुरद्धेत्तु रससीव मेघो महि पश्यत ॥]

देखो, अविरल स्थलित नवजलधारारूप रज्जुमे आघट्ट महीको ऊपर न
खींच सकनेके कारण, मेघ मानो शब्द कर रहा है ॥ ३६ ॥

ओ हियअ ओहिदियह तइआ पडिचज्जिरुण दइअस्स ।

अत्थेअकाउल वीसम्भघाइ किं तइ समारज्जं ॥ ३७ ॥

[हे हृदय अवधिविषय तदा प्रतिपद्य दयितस्य ।

अकस्मादाकुल विस्मयमघातिन् किं स्वया समारज्जम् ॥]

अरे हृदय, उस समय प्रियके प्रवास अवधिको स्वीकार कर अकस्मात्
आकुल हो विश्वासघातीकी भाँति मुझे क्या करना प्रारम्भ किया है ? ॥ ३७ ॥

जो वि ण आणइँ तस्स वि कट्ठेइ भग्गाइँ तेण चलाआइँ ।

अइउज्जुआ वराइँ अइ व पिओ से हआसाण ॥ ३८ ॥

[योऽपि न जानाति तस्यापि कथयति भग्नानि तेन चलयानि ।

अतिश्रज्जुका वराकी अथवा प्रियस्तस्या हताशया ॥]

जो नहीं जानते, उनसे कहती हूँ, “मेरा चलन उसके द्वारा तोड़ा गया

हे १^म हो कथना है कि वह खोबरीया रानी ही अत्यन्त करुणरमायणी हो
कथना इस इलाक रानीय विव ही सरक रमायणा है ॥ ३ ॥

सामाह गडमञ्जाम्बनविसेसमरिण कर्मोन्मूलमि ।

पिञ्जर म्मोमुदेन व कण्ठवर्धसेन ज्ञातव्यं ॥ ३९ ॥

[स्वाम्याया गुरुवरीवर्धविसेसपुत्रे करोकम्पे ।

वीनवैम्भोजुसीवैर कर्मावर्धन कथनम् ॥]

रामाया वाविधाने विज्ञात इव विसेस वीनवर्धे वीनविन कर्मावर्धे
कथन कर्मोन्मूल होकर कर्मावर्धन नामो कथनव्यास कर रहा है ॥ ३९ ॥

सेवद्विभक्तम्वङ्गी वासुध्याहृष्यं तन्मस सुहृदमस ।

गुरु पद्मपत्नी तन्मसेन परबुधं पत्ता ॥ ४० ॥

[स्वैराद्विभक्तम्वङ्गी कौमारावैव इत्य तुमसाव ।

गुटी मत्तावपत्नी (पदिकणी का) नस्वैव सुहाय्यं गता ॥]

इस तुमसाव नाम ही केवल अपने सारे कर्मोंको स्वैराद्वं कर गुटीको
कथनके नाम केवलेन कथन कराके-कराके वह स्वैव ही पतन पृथग्व्यक्त
वर्णित हुई ॥ ४० ॥

अमन्तरे वि कर्त्तव्यं जीएन तु मन्त्र तुम्हा अविशस्तं ।

अहं तं पि तय कालेन विज्जमसं ज्ञेय हं विज्जा ॥ ४१ ॥

[अमन्तरेणैव नामो कौमैव कतु मन्त्र कर्त्तव्यमस्मि ।

अदि तमपि ज्ञेय कालेन विज्जमसं ज्ञेयं विज्ञा ॥]

जो कथनके विम नामद्वारा तुम कुटी निव कर दे दो, कर्त्तव्ये इमा
अदि कर्त्तव्य ही निव करो तो कथनकर्त्तव्य ही मैं तुम्हारे कर्त्तव्य ही पूजा करेगी ॥

विममन्त्रादीविमवेहमापविश्वं रसं विहम्भेय ।

विमसाविश्व पिञ्जर मातृहस्तसिमा मनुजरेण ॥ ४२ ॥

[विममन्त्रादीविमवेहमापविश्व रसं कथनवैव

विज्ञान वीनवै मन्त्रादी विज्ञा मनुजरेण ॥]

अपने दोनो बहूँवा रीहका नाम कथन कथन विज्ञानवैव रसमन्त्र
वर्त्तव्य वीन मन्त्रादी विज्ञादी विज्ञान कर कथन कर रहा है ॥ ४२ ॥

कुरुणा विमम पदिकणी गृध्रिञ्जर मातृहस्त विज्ञिह्य ।

वीनवै अदिद्विभक्त पदिकणावै विज्ञिह्य ॥ ४३ ॥

[कुरुनाथ इव पथिको दूयते माधवस्य मिलितेन ।
मीमेन यथेच्छया दक्षिणवातेन स्पृश्यमान ॥]

माधवसे मिलकर यथेच्छाक्रमसे मीमसेनने दक्षिण चरणद्वारा स्पर्शकर
दुर्योधनको जिस प्रकार दुःखित किया था, माधव (वसन्त) से मिलकर
भयानक दक्षिणयुवा भी यथेच्छाक्रमसे स्पर्शकर पथिकको उसी प्रकार दुःखित
कर रही है ॥ ४३ ॥

जाव ण कोसविकासं पावह ईसीस मालईकलिआ ।
मअरन्दपाणलोहिल्ल भमर तावच्चिअ मलेसि ॥ ४४ ॥
[यावन्न कोषविकास प्राप्नोतीपन्मालतीकलिका ।
मकरन्दपानलोभयुक्त भ्रमर तावदेव मर्दयसि ॥]

तबतक मालतीकलिका कोष कुछ बढ़ नहीं जाता, तबतक हे रसपानलोलुप
मैरे, तुम मर्दनमात्रमे ही सतोष प्राप्तकर रहे हो ॥ ४४ ॥

अकअण्णुअ तुज्झ कए पाउसरईसु जं मए खुण्णं ।
उप्पेअवामि अलज्जिर अज्ज वि तं गामचिन्निवृत्तं ॥ ४५ ॥
[अकृतञ्ज तव कृते प्रावृद्धान्निपु यो मया दुष्णः ।
उत्पश्याम्यलज्जाशील अद्यापि त ग्रामपङ्कम् ॥]

अरे अकृतञ्ज, बरसातकी रातमें भी तेरे लिए मैंने जिस ग्रामपङ्कको खर्च
किया है, अरे मिलञ्ज, उसी पङ्कको मैं आज भी देख रही हूँ ॥ ४५ ॥

रेहइगलन्तकेसअन्नलन्तकुण्डलललन्तहारलत्ता ।
अद्धुप्पइआ विज्जाहरि व्व पुरुमाइरी वाला ॥ ४६ ॥
[राजते गलत्केषास्वलत्कुण्डललललद्वारलता ।
अर्धोत्पतिता विद्याधरोव पुरुपायिता वाला ॥]

अर्धोत्पतिता विद्याधरीकी भौंसि इस बालाके पुरुषोचित रमणमें निरत
होनेसे खुलते हुए केश, गिरते हुए कुण्डल पथ झूलते हुए द्वारलता शोभित हो
रहे हैं ॥ ४६ ॥

जइ भमसि भमसु एमेअ कणह सोहगगन्विरो गोठे ।
महिलाणं दोसगुणे विआरअमो अज्ज विण होसि ॥ ४७ ॥
[यदि भ्रमसि भ्रम एवमेव कृष्ण सौभाग्यवर्धितो गोष्ठे ।
महिलानां दोषगुणौ विचारयमोद्यापि न भवमि ॥]

हे कुल्य सीमावर्षी कीर्ति होकर यदि जेहने जमन बना हो वो
जमन को (किन्तु हजरा करनेरा भी) तुम यदि महिकाभीने दोष-गुण
देखनेमें समर्थ हो कबो बर्षाए नहीं हो सकेयो ॥ १ ॥

संज्ञासम्यक् अक्षपूरिमञ्जलि विहङ्गिष्यकथामकरं ।
योरीम कोसपाशुकार्यं च पमहादिर्बन्धनम् ॥ ४८ ॥

[सम्यक्तमने अक्षपूरिमञ्जलि विहङ्गितैश्चामकरम् ।

यौर्व कोसपार्श्वगतमिव मय्याधिर्बन्धनम् ॥] ।

जाननेसे सम्यक् यौरीको प्रसारित करनेके लिए अक्षपूरीत मञ्जलि धौवरा
कीसे काली अक्षपाश करनेके लिए कोसपाशमें बन्धन बन्धनविधिति (विह) को
बसतकर को ॥ ४८ ॥

गामयिषो सम्बाधु वि विम्बाधु मधुमरचपद्मिनेसाधु ।
मम्मचङ्गेरधु वि बहुदाह वषटी वसर दिहृ ॥ ४९ ॥

[गामय्या वशीत्यपि विनामधुमरचपद्मिनेसाधु ।

मर्मचङ्गेरपि बहुदाहा वषटि कट्टे दधि ॥]

बालु के सम्यक् प्रामनापकरी लारी विहङ्ग बहुमरचपद्मिनी होकर
भी, वर मर्मचङ्गेरविभाषक बाली की वषटी दधि करनेका बहुदा विनासे बस
क बाली है ॥ ४९ ॥

मामिसरचकप्यार्थं वि मति विसेसी पममिमम्यार्थं ।
वेहमादम्यार्थं अण्यो अण्यो वषरोहमम्यार्थं ॥ ५० ॥

[मधुकामि वरवाचाम्यममममि विसेसा मममिमम्यार्थम् ।

वेहमादम्यार्थम् अण्यो अण्यो वषरोहमम्यार्थम् ॥]

हे माती वालवाचकीमें वरवाच अक्षपाश प्रतीय होकर भी वैशिश्व
ममिमम्यार्थ होता है काल्य वेहमादम्यार्थ वैशिश्व एक प्रसारण होता है
और मधुमरचार्थ मममम्यार्थ वैशिश्व दूसरी प्रसारण होता है ॥ ५० ॥

विमममिमम्यार्थं पसरमि आर्धं अण्यार्धं तार्धं अण्यार्धं ।
कोसरधु वि इमीदि बहुदाहप्येष्ट ममिपदि ॥ ५१ ॥

[इमेष्टा ममममि वालवाचमि आर्धं अण्यार्धम् ।

वसर विममिमम्यार्थममममि ॥]

हृदयसे जो वचन निकलते हैं, वे अन्य प्रकारके होते हैं। पाससे हट जाओ। इन सब कपट वचनोंसे क्या प्रयोजन ? ॥ ५१ ॥

कहँ सा सोहृग्गुणं मय समं वहइ णिग्घण तुमम्मि ।
जीअ हरिज्जइ गोत्तं हरिऊण अ दिज्जए मज्झ ॥ ५२ ॥
[कथ सा सौभाग्यगुण मया सम वहति निर्घृण स्वयि ।
यस्या हियते नाम हृत्वा च दीयते मङ्गम् ॥]

अरे! निर्दय, मेरी तुलनामें वह रमणी तुम्हारे सम्बन्धमें अधिक सौभाग्य गुण कैसे वहन करती है ? कारण, उमका नाम (गोत्र) तुम्हारे द्वारा चुराया जाकर मेरे प्रति प्रयुक्त किया जा रहा है ॥ ५२ ॥

सहि साहसु सच्चावेण पुच्छिमो किं असेसमहिलानं ।
वहन्ति करठिया विअ चलया दइए पउट्टम्मि ॥ ५३ ॥
[सखि कथम सद्भावेन पृच्छाम किमशेषमहिलानाम् ।
वर्धन्ते करस्थिता एव चलया दयिते प्रोषिते ॥]

सखी, योलो तो—सद्भावना सहित पूछती हूँ—क्या प्रियके प्रवाम जानेपर सभी महिलाओंके हाथके चलय बंद जाते हैं अर्थात् छीले पड़ जाते हैं ॥ ५३ ॥

भमइ पलित्तइ जूरइ उक्खिविउं से करं पसारइ ।
करिणो पङ्कस्सुत्तस्स णेहणिअलाइया करिणी ॥ ५४ ॥
[अमति परितः लिखते नखैस्तु तस्य कर प्रसारयति ।
करिण पङ्कनिमग्नस्य स्नेहनिगदिता करिणी ॥]

पङ्कमें गिरी हुई हाथोंकी स्नेहशृङ्खलासे जकड़ी हुई, हथिनी, हाथीके चारों ओर घूम रही है, खेद अनुभव कर रही है एवं उठानेकेलिए अपना सँद फैला रही है ॥ ५४ ॥

रइकेलिहिअणिअंसणकरकिसलयअरुद्धणअणखुअलत्तस्स ।
रुहस्स तइअणअण पव्वइपरिउम्भियं जअइ ॥ ५५ ॥
[रतिकेलिहृतनिवसनकरकिसलयरुद्धनयनयुगलस्य ।
रुद्रस्य तृतीयनयन पार्वतीपरिभुषित जयति ॥]

जिस रुद्रने रतिकेलिके समय पार्वतीका घघ्रापहरण कर लिया था एवं जिसके नयनयुगल करकिसलय द्वारा मूँद दिये गए थे उसी रुद्रका पार्वती सुश्रित तृतीयनेत्र विजयी हो ॥ ५५ ॥

वावर पुरसो पासेसु ममर दिहूपाहम्मि संझर ।

वक्खारकरस्स तुह दडिपाउत्त वे पहरसु वपारं ॥ ५१ ॥

[वावरि पुरहा चारररोरररररि दडिपेउररिहुरे ।

वक्खरिपाउत्तरर वर दडिपुत्त हे प्रहरर वरररर ॥]

हे दडिपुत्त तुम्हारे हाथमें वक्खरिपा के केनेके कारण वह रम्यी तुम्हारे विषय हीर रही है तुम्हारे कम दूज रही है एवं तुम्हारे दडिपवर्गे ही संसार रह रही है । तुम कम कोपबोधान्न करिहा हुआ जहार को ॥ ५१ ॥

अरिममाप्पन्वडं यमिद्धरं बहुम सद्धिमार्द्धि ।

पेप्पल हमारिआणे हासुम्मिस्सेहि वप्पमीहि ॥ ५२ ॥

[अरिममाप्पन्वडं जल्पमान वपरा सद्धीरि ।

पेप्पे कुमारीआणे हसोन्निजल्पमानविन्वात् ॥]

कुमारीका बार कसिरीं हुआ हुआने कने हुए वरूके इतिम अवाप्पन्न (वक्खपुत्तवटीका वक्ख) को ईच्छीपुत्त वेहीने देव वरा है ॥ ५२ ॥

सुभिम सुभिम कसिणहुद्धीज मधक्खड्डाअप्पमिसेव ।

वन्नेह वड्डवक्खहुम व सविण्णहरे तवरी ॥ ५३ ॥

[वन्नेह वक्खेउररिआहुत्ता मधक्खज्जवमिसेव ।

वन्नाहि वक्खज्जवक्खमिह मविण्णहरे तवरी ॥]

वक्खपुत्त वक्खरा उगुणीहता कने कने वरुण्णह (जेज) केवड कनेके क्काने तवरी वक्खो वक्खर स्वेव गुरे वरि है गुरे है ॥ ५३ ॥

एविप्पल्लज्जिक्खलो जप्पत्तविम सप्पमो सद्धम्व ।

इक्कन्ति विमप्पमाहिक्खयेव अहंरं सुसक्खुम्भे ॥ ५४ ॥

[एविप्पिआक्खज्जिहा . वक्खमिहक्खम . अहरेव ।

वाक्काएउररि विमक्खमविक्खयेव अहंरं सुक्खमत्ता ॥]

वक्खने विरक्खने एवम वविज्जा कुक्खहुर् वड्डा वक्ख व वाक्क विरक्ख को वाविज्जिहा ही वक्ख वक्खने वक्खने ईच्छी है ॥ ५४ ॥

एक्कहिम सोहम्भं तम्भाए वज्जह गोहम्मसक्खमि ।

तुहक्खसद्धत्त सिद्धे वरिण्णहडं वक्खुज्जलीए ॥ ५५ ॥

[एक्कहिं वीजान् वक्ख वक्खम कोहमने ।

तुहक्खमत्ता एउे वरिण्णह वक्खुज्जली ॥]

देखो, गोष्ठमें दृष्ट वृषभके सींगमें अपने पालकको रगड़कर गाय सौभाग्य प्रकट कर रही है ॥ ६० ॥

उभ संभमचिक्खित्तं रमिअव्वअलेहत्तापे अमईए ।

णवरङ्गअं कुडङ्गे धअं व दिण्णं अविणअस्स ॥ ६१ ॥

[परम सभ्रमविक्षित रगतस्यकलापटया असस्या ।

नधरङ्गक कुण्जे ध्वजमिव दत्तमविनयस्य ॥]

रमणलम्पटा असतीद्वारा कुक्षमें, अविनयके ध्वजपट रूपमें प्रदत्त सभ्रम-विक्षित कौस्तुभवस्त्रको देखो ॥ ६१ ॥

हत्थप्फंसेण जरग्गवी वि पण्हहइ दोह अगुणेण ।

अवल्लोअणपण्हइरिं पुत्तअ पुण्णेहिं पाविहिसि ॥ ६२ ॥

[हस्तस्पर्शेन जरङ्गस्यपि प्रमनौति दोहदगुणेन ।

अवल्लोकनप्रस्नवनशीलां पुत्रक पुण्यै प्राप्स्यसि ॥]

अरे बेटे, दोहदके (दूध देनेवालेके) गुणवश हस्तस्पर्शमात्रसे अकर्मण्य घृष्टा भी दुग्धपात करती है, किन्तु देखने मात्रसे प्रसन्नशीला (अनुरक्ता रमणी) को तुम अपने सुकृतोंके फलसे ही पा सकोगे ॥ ६२ ॥

मसिणं चट्ठम्मन्ती पप पप कुणइ कीस मुहभङ्गं ।

णूणं से मेहलिआ जहणगअं छिवइ णहवन्ति ॥ ६३ ॥

[मसृणं चट्ठक्रम्यमाणा पदे पदे करोति किमिति मुखमङ्गलम् ।

नून तस्या मेखलिका जघनगतां स्पृशति नखपङ्क्तिम् ॥]

समतल स्थानपर चलते चलते यह रमणी मुँह क्यों घना रही है ? निश्चय ही उसकी मेखला (कर्धनी) जघनगत नखपङ्क्तिको छू (रगड़) रही है (उसी की व्यथा से मुँह घना रही है) ॥ ६३ ॥

संचाहणसुहरसतोसिण देन्तेण तुहकरे लक्खं ।

चलणेण विक्कमाइत्तचरिअं अणुसिक्खिअं तिस्सा ॥ ६४ ॥

[सवाहनसुहरसतोपितेन वदता तव करे लाक्षाम् ।

चरणेन विक्कमादित्यचरितमनुशिक्षित तस्या ॥]

उस युवतीके चरणको तुम्हारे सवाहनकार्यद्वारा सुखरस पानेसे तृप्त होकर तुम्हारे हाथमें 'लाक्षा' , बिह्व प्रदान करनेसे मालूम पड़ता है कि इसने विक्कमादित्यके चरितका अनुसरण करना सीखा है ॥ ६४ ॥

प्राप्तपदार्थं मुखे रक्षसस्ताम्रीदिपुत्रिभक्त्या ।

ईसपमेत्तपसन्ने शुक्राणि सुहार्थं बहुभ्यर्च ॥ १५ ॥

[तादृशनामां मुखे रक्षसताम्रीदिपुत्रिभक्त्यादाय ।

ईसपमात्रमन्त्रे अहोति सुहार्थं बहुभ्यर्च ॥]

हे मुखे, तुम जिसके दर्शन मात्रसे प्रसन्न हो जाती हो । किन्तु, तद्वन्त
हेव दर्शक अक्षरवारक भाव सुम्भवादि अतिशय बहु प्रयत्नसे तुम्हें अह वा वरुण
प्रक्षिप्त हो जाती हो ॥ १५ ॥

हे सुमन्तु पश्चिम पश्चिम पुत्राणि सुहार्थं कसिमभ्यर्च ।

एता मन्त्रिण मन्त्रिण्युक्ता पत्नर एवार्च ॥ १६ ॥

[हे सुमन्तु अक्षीरतापी पुत्राणि सुहार्थं कसिमभ्यर्च ।

एता कृष्याणि मन्त्रिण्युक्ता पत्नर एवार्च ॥]

हे सुमन्तु, अक्ष प्रसन्न होओ किन्हीं बृन्दे अल्प रोच भाव मित्र सुहम
हीना । हे कृषकोचने मन्त्रीयुक्ता अक्ष-वक्त्रे वीर्यो का रही है ॥ १६ ॥

आचरन्तार्चं सुहार्थं हो विषय आचरन्ति उच्यते पठे ।

गोतीर्य द्विममद्वयं अद्वयं अस्माद्वयमस्ति ॥ १७ ॥

[आचरन्ति सुहार्थं होयैव अक्षीर उच्यते पठे ।

गोतीर्यद्वयमस्ति अक्षीर अक्षीर अक्षीर ॥]

आचरन्त सुहार्थं (पञ्चमार्थं अक्षीर अक्षीर पञ्चमार्थं सुहार्थं)
उच्यते हो ही अक्षीर का अक्षीर है गोतीर्य द्वयमद्वयं वा अक्षीरद्वयमद्वयं
अक्षीर ॥ १७ ॥

अक्षीर सुहार्थं पुत्राणि आचरन्ति समाद्वयम् ।

अक्षीरद्वयमद्वयं वा गोतीर्य अक्षीर अक्षीर ॥ १८ ॥

[अक्षीरद्वयमद्वयं वा गोतीर्य अक्षीर अक्षीर ।

अक्षीरद्वयमद्वयं वा गोतीर्य अक्षीर अक्षीर ॥]

हे पुत्रक, आचरन्ति गोतीर्य अक्षीरद्वयं वा अक्षीरद्वयं अक्षीर (पञ्चमार्थं)
अक्षीरद्वयं अक्षीर अक्षीर । अक्षीरद्वयं अक्षीरद्वयं अक्षीर अक्षीर अक्षीर
अक्षीर ॥ १८ ॥

आचरन्ति अक्षीर अक्षीर अक्षीर अक्षीर अक्षीर ।

अक्षीरद्वयं वा गोतीर्य अक्षीर अक्षीर अक्षीर ॥ १९ ॥

[ग्रामणिगृहे श्वश्रु एकैव पाटला इह ग्रामे ।

यहुपाटल च क्षीर्यं देवरस्य न सुन्दरमेतत् ॥]

हे श्वश्रु, इस ग्राममें केवल ग्रामणीके यहाँ एक पाटलावृक्ष है । देवरका मस्तक तो अनेक पाटलोंद्वारा युक्त दिखायी देता है, यह तो अच्छा काम नहीं है ॥ ६९ ॥

अण्णाणं वि होन्ति मुहे पम्हलधवलाहं दीहकसणाहं ।

णअणाहं सुन्दरीणं तह वि हु दट्ठं ण जाणन्ति ॥ ७० ॥

[अन्यामामपि भवन्ति मुखे पचमलधवलानि दीर्घकृष्णानि ।

नयनानि सुन्दरीणां तथापि खलु द्रष्टु न जानन्ति ॥]

अन्यामपि अनेक सुन्दरियोंके मुखमें पचमल (पद्म जैसे) धवल एवं दीर्घकृष्ण नयनयुगल वर्तमान रहते हैं, तथापि वे सब (भ्रूविलामादि के साथ) देखना नहीं जानते ॥ ७० ॥

हंसेहिं च तुह रणजलअसमअभअचलिअविहलवन्खेहिं ।

परिसेसिअपोम्मासेहिं माणसं गम्मइ रिऊहिं ॥ ७१ ॥

[हसैरिव तव रणजलदसमयभयचलितविह्वलपक्षैः ।

परिशेषितपद्माक्षैर्मानस गम्यते रिपुभिः ॥]

हे राजन्, हसोंकी भाँति तुम्हारे शत्रु (सेवाद्वारा) तुम्हारे मनका अनु-गमन अर्थात् छन्दानुवर्तन करते हैं । कारण, उनके स्वपक्षीयगण तुम्हारे रणरूप जलद-समयको उपरिधत देखकर विह्वलचित्तसे भाग रहे हैं एवं उनकी श्रीप्राप्ति की आशा शेष हो रही है, हसगण भी जलद समय उपस्थित होनेपर विह्वल होकर भागना आरम्भ करते हैं एवं पद्मप्राप्तिकी आशा शेष है सोचकर मान-सरोवरकी ओर दौड़ पड़ते हैं ॥ ७१ ॥

दुग्गाअवरम्मि घरिणी रक्खन्ती आउलत्तणं पइणो ।

पुच्छिअदोहलसद्धा पुणो वि उअअं विअ कहेइ ॥ ७२ ॥

[दुर्गतगृहे गृहिणी रचन्ती आकुलत्वं पश्यु ।

पृष्टदोहद्वयश्चा पुनरप्युदकमेव कथयति ॥]

किस दोहद (गर्भवतीकी नाना प्रकारकी साध) की तुम्हें इच्छा है, पतिसे पेमा पृष्टी जानेपर भी दुर्गत घरकी पानी पतिकी व्याकुलता दूर करनेके लिए बारबार पानी ही माँग रही है ॥ ७२ ॥

[यद्विधविलाससरमिकं सुरते महिलाणां क उपाध्यायः ।

शिष्यते अशिषितान्यपि सर्वं स्नेहानुपन्धेन ॥]

यद्विध विलाससरसयुक्त सुरतके सम्बन्धमें महिलाओंका (अन्य) शिष्य कौन है ? स्नेहानुपन्धन ही सबको अशिषित वस्तुकी शिष्या दे देता है ॥७७॥

घण्णयमिष विवृत्यसि सच्चं विम सो तुष ण संभविओ ।

ण ह्यु होन्नि तम्मि दिट्ठे सुत्थावत्थाइँ अद्दाइँ ॥ ७८ ॥

[घणं वसिते विवृत्यसे सत्यमेव स त्वया न सम्भाविन ।

न खलु भवन्ति तस्मिन्ष्टे स्वस्थावस्थान्यद्धानि ॥]

अरी नायक गुण घर्जनद्वारा घोषीकृत हृदये, तुम स्वर्ध की आमशलाघा प्रकट करती हो । किन्तु वस्तुन तुमने उसे दृष्टिद्वारा सम्भावित या अनुगृहीत नहीं किया है । कारण, उसके एक घोर दिव्यायी पद जाने पर अह्न स्वस्थ नहीं रह सकते ॥ ७८ ॥

आसण्णविआहदिणे अहिणत्तयहुसद्धमम्मुअमणस्स ।

पढमघरिणीअ सुरअं घरम्स हिअण ण संठाइ ॥ ७९ ॥

[आमञ्जविवाहदिने अभिनयवधूममोसुकमनस ।

प्रथमगृहिण्याः सुरत वरस्य हृदये न सतिष्ठते ॥]

आमञ्ज विवाहके दिन नववधूके सद्गम प्राप्तिकेलिए उत्सुकचित्त घरके हृदयमें प्रथम गृहिणीकी सुरतकथा स्थान प्राप्त नहीं करती ॥ ७९ ॥

जइ लोकणिन्दितं जइ अमङ्गलं जइ विमुक्कमज्जाअं ।

पुप्फवइदंसणं तह वि देइ हिअमस्स णिव्वाणं ॥ ८० ॥

[यदि लोकनिन्दित पद्ममङ्गल यदि विमुक्तमर्यादम् ।

पुष्पवतीदर्शनं तथापि दद्याति हृदयस्य निर्वाणम् ॥]

पुष्पवती रमणीका दर्शन यदि लोकनिन्दित भी हो, यदि अमङ्गलजनक भी हो एवं यदि मर्यादाह्वनदोषसे दूषित भी हो, तब भी यह हृदयमें सुख उत्पन्न करता है ॥ ८० ॥

जइ ण छिवसि पुप्फवइं पुरओ ता कीस चारिओ ठासि ।

छित्तोसि चुलचुलन्तेहिँ घाघिउण अँम्ह हत्थेहिँ ॥ ८१ ॥

[यदि न स्पृशामि पुष्पवतीं पुरतस्तस्मिन्मिति वारितस्तिष्ठसि ।

स्पृष्टोऽसि चुलचुलायमानैर्वाविवास्माक हस्तैः ॥]

अहमं विओभतणुई दुसहो विरहाणलो चलं जीव ।
 अप्पाहिज्जउ किं सहि जाणसि तं चेव जं जुत्तं ॥ ८६ ॥
 [अह वियोगतन्वी दुसहो विरहानलश्चल जीवम् ।
 अभिधीयतां किं सखि जानासि त्वमेव यद्युक्तम् ॥]

मैं प्रियके विरहमें कृश हुई हूँ, विरहाग्नि दुसह प्रतीत हो रही है, जीवन भी चञ्चल अर्थात् गमनोन्मुख हो गया है । अरी सखी, इस समय जो उपयुक्त हो, उसीका उपदेश दे ॥ ८६ ॥

तुह विरहुज्जागरओ सिचिणे वि ण देइ दंसणसुहाई ।
 वाहेण जहालोअणविणोअणं से ह्वं तं पि ॥ ८७ ॥
 [तव विरहोजागरक स्वप्नेऽपि न ददाति दर्शनसुखानि ।
 धाप्तेण यदालोकनविनोदन तस्या हत तदपि ॥]

तुम्हारा विरहजनित जागरण स्वप्नमें भी तुम्हारे दर्शनसे उत्पन्न सुख नहीं दे रहा है । जो देखनेमें थोड़ा-बहुत अच्छा भी लगता है वह भी तुम्हारे आँसुओंसे आच्छन्न होनेके कारण नष्ट प्रतीत होता है ॥ ८७ ॥

अण्णावराहकुविओ जहत्तह कालेण गम्मइ पसाअं ।
 वेसत्तणावराहे कुविअं कहं तं पसाइस्सं ॥ ८८ ॥
 [अन्यापराधकुपितो ययातथा कालेन गच्छति प्रमादम् ।
 द्वेष्यवापराधे कुपित कथं तं प्रसादयिष्यामि ॥]

मेरा यदि अन्य किसी प्रकारके अपराधमे वह कुपित होते तो भिम किसी प्रकार समय पाकर उसे प्रमत्त कर लिया जाता । किन्तु मेरे प्रति द्वेष्य भावरूप अपराध होनेके कारण, उसे किस प्रकार प्रमत्त करूँगी ॥ ८८ ॥

दीससि पिआणि जम्पसि सव्भावो सुहम पत्तिअ ज्वेअ ।
 फालेइऊण हिअअं साहसु को दावण कस्स ॥ ८९ ॥
 [इत्यसे प्रियाणि जहति मदभावः सुभग एतावानेव ।
 पाठयित्वा हृदय कथय को दर्शयति कस्य ॥]

हे सुभग, तुम्हारा इतना सद्भाव है कि तुम मुझे दर्शन देते हो एवं सुप्तमे प्रिय यातें करते हो, किन्तु यनाओ तो, कौन किसे हृदय चीरकर दिखावे ?

उअअ लहिउण उत्ताणिआणणा होन्ति के वि सचिसेसं ।
 रिप्ता णमन्ति सुहरं रहट्ठघडिअ व्व कापुरिसा ॥ ९० ॥

[दूरदर्शन के माध्यम से प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों की सूची]

निम्ना ब्रह्मणि सुखिनि एव (ब्रह्म) वर्तते ॥ अत्राज्ञाः ॥

कोई-कई बूढ़ पुरुष वही बज्जमें भिन्न धर्मियों की दिग्गज छत्रों (बस
कामचि वर) विशेष प्रभावों के साथ ही वा वा की है एवं विचारणों व
वेर वर वर वर है ॥ १ ॥

समस्तविधसामर्थ्यं येषित्वं च आक्रान्तिं परमवर्त्मि ।

बैन्दवस्यैवविज्ञानविज्ञानम् ॥ ११ ॥

[अष्टादशवर्षीय विषयिक लोकोपयोग्य अर्थ-व्याख्या]

अथ कर्मफलविशेषादिविषयस्य विनिश्चयः ॥

बापबेटा की लीजेंसों विषय में बापबेटा की ओर से लिखा है ?
कमिशनर का जवाब : रिजिस्ट्रार (बाप) के विरुद्ध वह को कानून की
मर्मांश दी रहा है ॥ ११ ॥

सुम्नरुत्तमवशममभुन वि सुद र्दमर्षे विषमालो ।

एषः च ममादिष्टः पण्डितः समुत्तमः ॥ १ ॥

[सुन्दरगुरुभक्त्युद्धेति वा सत्यं विचार्यन्ती ।

॥ अथ सप्तमः सर्गः ॥

बहुत लम्बा हुआ है। जो हृदय स्थिति में भी पुनर्हारी संवेगही होकर चल रही है। इस संवेगही ही है। अतः ही जो जगत् जगत् जगत् ही है।

साधनानां विना साधु इन्द्रियानां वसतिर्न लोकात् ।

पामरशङ्काणामाय होतुं वि गमिष्यतु वनवसु ॥ ५३ ॥

[अतिशयोक्ति का प्रयोग]

॥ अथ भक्त्युपायः ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु श्रीकृष्णार्जसंवादे भक्त्युपायः ॥

अभावात वचन-वचनसो अवयवा कोटिगणनाया सुवचन वचने हातसो निवड हाती वचन ही कोटि हो वही है । देवा देवचन वचनसो कोटी वचनवचनो वचनो को वचनसो वचन वही है । १२ अ

पौर्णमासी च अथवा कृष्णपक्षे चैतन्या

मानवसिद्धिचिह्न² पात्रा पिण्डमन्त्रहे ॥ ५३ ॥

[कवचप्रसङ्गः] पुनश्चापि विज्ञापयितव्यम् ।

अभिप्रायविह्वलितः सत्यं विप्रबलवर्धे ।

ग्रीष्मकी दुपहरीमें जङ्गलमें त्रिह्वीकीट समूह आत्यन्त तीव्र स्वरमें शोर कर रहे हैं । हु सह सूर्यकिरणोंके स्पर्शसे सन्तप्त हो वृक्षसमूह रोरहे हैं ॥ ९४ ॥

पढमणिनीणमधुरमहुलोद्वल्लालिउलवद्धअंकारं ।

अहिमअरकिरणणिउरम्बचुम्बितं दल्लइ कमलवणं ॥ ९५ ॥

[प्रथमनिनीनमधुरमधुलुब्धालिकुलवद्धक्षकारम् ।

अहिमकरकिरणनिकुरम्बचुम्बितं दलति कमलवनम् ॥]

पहले आये हुए मधुरमधुलोलुप मधुकरकुलके गुञ्जनसे सुस्रित कमलवन स्रणकिरणसूर्यकी रश्मियोंद्वारा चुम्बित वा स्पृष्ट होकर प्रस्फुटित हो रहा है ॥ ९५ ॥

गोत्तक्खल्लणं सोऊण पिअअमे अज्ज तीअ खणदिअहे ।

वज्झमहिस्सन्स माल व्व मण्डणं उअह पडिद्दाइ ॥ ९६ ॥

[गोघ्रस्खलन श्रुत्वा प्रियतमे अद्य तस्या क्षणदिशमे ।

वध्यमहिपस्य मालेव मण्डन पश्यत प्रतिभाति ॥]

देखो, आज इस उरसवके दिन प्रियतमके मुँहसे गोघ्रस्खलन सुननेके कारण, हम महिलाकी शोभा मानो वध्यमहिपके गलेमें डाली हुई मालाकी भाँति प्रतिभात हो रही है ॥ ९६ ॥

महमहइ मलअवाओ अत्ता वारेइ मं घराणेन्तीं ।

अक्कोलपरिमलेण वि जो फलु मओ सो मओ व्वेअ ॥ ९७ ॥

[महमहायते मलयवात श्वधूर्वारिपति मां गृहाद्विर्पान्तीम् ।

अक्कोटपरिमलेनापि य खलु मृत स मृत एव ॥]

मलयपवन उत्कट सौरभ वहन कर रहा है, इसी कारण सास मुझे घरसे निकलनेको मना कर रही है । किन्तु गृहवाटिकास्थित अक्कोटवृक्षके परिमलसे जिमे मारा जाना है, वह मारी जायेगी ॥ ९७ ॥

मुहपेच्छओ पई से सा वि हु सविसेसदंसणुम्मइआ ।

दोवि कअत्था पुइइं अमहिस्सपुरिस्सं च मण्णन्ति ॥ ९८ ॥

[मुखप्रेक्षक पतिस्वस्या सापि खलु सविशेषदर्शनोन्मत्ता ।

द्वावपि कृतार्थौ पृथिवीममहिलापुरुषामिव मन्येत ॥]

उमका पति सदैव ही उसके मुखदेका दर्शनाकांक्षी है । वह भी पतिका मुख देखनेकेलिए विशेषतः उन्मत्त रहती है । इस प्रकार दोनों ही परस्पर

कृतार्थ होवेके कारण सोचने है कि बुधिवीर कोई दूसरा कुछ का कोई दूसरा को नहीं है ॥ १८ ॥

अथ कसो अर्थ आ सो गुरुजगदीश परहारे ।

तत्पुत्र कित मन्थमात्रो को वि अथाश्री रामुण्णको ॥ १९ ॥

[वेम हुआ वेम बोझी बुझाऊके सुझाई ।

अथ विस्मयकाशोऽप्यवर्क बहुमका ॥]

मेरा कुछक वेम अथ है ? काके एतावत को कोका काका वेम है
वही हमने कुछक वेमको बुझा देना है । इनके मतकने वहा दृष्ट अर्थवर्क
(कुछक) अर्थ ही रहा है ॥ १९ ॥

आश्चर्यविधायक आश्चर्य सुई विमलमयेव ।

पट्टिपत्र साक्षविमलाविपत्र कर्तुं विमल सुई ॥ २० ॥

[आश्चर्यविधायक आश्चर्य सुई विमलमयेव ।

अथैव कोविमलमयेव कर्तुं वेद ॥]

विशुद्धि अथ आश्चर्य कुछका सुई सुई विमल मयेव विमल कोका
विमल होकर कोका सुई ही नहीं को ॥ २० ॥

एतिसाक्षविमलमयेव अथैव कर्तुं विमल सुई विमलमयेव ।

सप्तसप्तमि कर्मत्त पञ्चम पादासप्तमि कर्म ॥ २१ ॥

[एतिसाक्षविमलमयेव अथैव कर्तुं विमल सुई विमलमयेव ।

अथैव कर्मत्त पञ्चम पादासप्तमि ॥]

एतिसाक्षविमलमयेव अथैव कर्तुं विमल सुई विमलमयेव
अथैव कर्मत्त पञ्चम पादासप्तमि अथैव कर्तुं ॥ २१ ॥

षष्ठशतक

सूक्ष्मेहे मुसलं विच्छुद्धमाणेण दहलोपण ।

एकगामे वि प्रियो समग्रं अच्छीहि वि ण दिट्ठो ॥ १ ॥

[सूक्ष्मेहे मुसलं निक्षिपता दग्धलोकेन ।

एकग्रामेऽपि प्रियः समाभ्यामक्षिभ्यामपि न दृष्ट ॥]

दग्ध व्यक्ति सूक्ष्मेहेके सूक्ष्मस्थानपर मूलनिक्षेप करते हैं । इस कारण, एक ही गाँवमें वसंतमान प्रियको मैं समान भावसे आँखभर देख भी नहीं पाती ॥ १ ॥

अज्जं पि ताव एक्कं मा मं वारेहि पिअसहि रुअन्ति ।

कल्लि उण तम्मि गण जइ ण मुआ ता ण रोदिस्सं ॥ २ ॥

[अद्यापि तावदेक मा मां वारय प्रियसखि रुदतीम् ।

कल्ये पुनस्तस्मिन्गते यदि न मृता तदा न रोदिष्यामि ॥]

हे प्रिय सखि, केवल आज एक दिनकेलिए तुम हमें रोनेसे मना मत करना । किन्तु, कल प्रियतमके चले जाने पर यदि प्राणान्त न हो जाय तो फिर नहीं रोऊँगी ॥ २ ॥

पहि त्ति वाहरन्तम्मि पिअभमे उअह ओणअमुहीए ।

विउणावेट्ठिमज्झणत्थलाइ लज्जाणअं हसिमं ॥ ३ ॥

[एहीति व्याहरति प्रियतमे पश्यतावनतमुख्या ।

द्विगुणायेट्ठितजघनस्थलया लज्जाघनस हसितम् ॥]

तुमलोग देखो, 'आओ' कहकर प्रियतम द्वारा घुला लीजानेपर अवनतमुखी महिला होकर जङ्घोंका दोहरे वस्त्राग्रल द्वारा ढँककर लज्जाघनस हँसी ॥ ३ ॥

मारेसि क ण मुअे इमेण पेअन्तरत्तविसमेण ।

भुलजाचावविणिग्गअतिअरअरद्धच्छिभल्लेण ॥ ४ ॥

[मारयसि क न मुग्धे अनेन पर्यन्तरत्तविषमेण ।

भूलजाचावविनिर्गतसीधगतसार्धाक्षिभल्लेन ॥]

हे मुग्धे, अपने रक्षित, तीक्ष्ण पथ विषम भूलजाचावसे विनिर्गत तथा

हृदयकार शक्तिविशिष्ट तुम मदनमय भावोद्भाता तुम शिरो] यहाँ का
कहती ३ ४ ३

हृदय में स्थित सम्पूर्ण सारं सांद्रतया विष्णुदा शरीर ।

छद्म बोद्धिनि ताद् यमार्थं बोद्धवित्ता आद्य ॥ ५ ॥

[तस्य दृष्टिर्नि कर्तव्या तस्यै कृत्या विवर्धिता भवति ।

अथि ज्ञानिभ्यस्तै ताभि वराभि मोक्षन्ता माता ।]

हमारे दर्शनकी सकलविषयी होकर वह कदापि सुखद नाने मिलने पर विष्णु की हमारे पते जानेका पते कलनेही न क हक होकर से काम नही था ॥ ५ ॥

‘सामन्तरपिपि’^{*} विधिजरेति मामि सम्यगेति ।

एषिं कृत्वा अथान्तरा परिष्कारं कर्तुं च विज्ञायते ॥ ५ ॥

[ईशानात्मवारादिनाम्नां विविक्तानाम्नां आनुकूल्यविशेषात् ।

इसकी ओर से प्रत्येक विधायक को न पैसे मिलेंगे ।]

धरती समस्तजीव अस्तित्वको लागि साधारण सुपरमिनी मार्ग वह गरे पनि ईन्फो एवं जलजन्तुको लागि अलग अलग निर्दिष्ट रास्ताको रूपमा रहे । यी जीव सबै महो होईने १५५५

वाङ्मयसिन्धुविशेषोपनिषदः दण्डमुनीनाम् ।

बॉम्बार्ड लोसिआइ विहायकालम्स व मूरोव U ७ व

[वाचोऽन्वयः किञ्चनपि कविनोपदेयः कश्चाप्यर्थः ।

कल्याण कोणार्ड विद्यामण्डळ, मुंबई ४०००८५]

एभि ओइते समय समयन कालकय हूँद रिवाची लगेकर पैची गजकटा होवी है बेटी हो गजकटा नये लुकी कथाको गजकटको हवाये कर लगे कर कथाको कर गीतका सुभावन पैकरा हूँद ॥ ३ ॥

द्विमन्त्रिय वसन्ति न करोति मन्त्र्युक्तं तद् द्वि मन्त्र्यपि ।

अदिशसि शुभसुहायगतिपत्नीपेदि सम्येदि ॥ ८ ॥

[इत्येव वक्तव्यं च कतेनैव कथं नक्तव्यं चेदुक्तव्यम् ।

सङ्कलनी पुनर्मिलनमात्रमपि यथैवाभिलष्यति ॥ १]

तुम जैसे हृदय में बाग बर रहे हो एवं जैसे अति लोच नहीं मजबूत करने
आर्जन तथा द्रव्य नहीं बढ़ाने। फिर जो लोभलाली एवं पुणर्विप्लवप्रसन्न
जैसी विस्फोटन होनेके कारण इसी आकाश ही रही है ॥ ३

अण्णं पि किं पि पाविहिसि मूढ मा तम्म दुक्खमेत्तेण ।

द्विअअ पराधीणजणं मग्गन्त तुह केत्तिअं एअं ॥ ९ ॥

[अन्यदपि किमपि प्राप्स्यसि मूढ मा ताभ्य द्युःखमात्रेण ।

हृदय पराधीनजन मृगयमाण तव कियन्मात्रमिदम् ॥]

अरे मूढ़ हृदय, केवल विरहदुःखके कारण कष्टका अनुभव मत करना,
अन्य कुछ भी अर्थात् मृत्यु भी पाओगे । पराधीन व्यक्तिकी प्रार्थनाके समान
तुम्हारा यह विरहदुःख कितना है अर्थात् अत्यल्प है ॥ ९ ॥

वेसोसि जीअ पंसुल अद्विअअरं सा हु चलभा तुज्झ ।

इअ जाणिऊण वि मए ण ईसिअं ददुपेम्मस्स ॥ १० ॥

[द्वेष्योऽसि यस्या पांसुल अधिकतर मा खलु वल्लभा तव ।

इति ज्ञात्वापि मया न ईर्ष्यित दग्धप्रेम्ण ॥]

अरे पापिष्ठ, तुम जिम कामिनी द्वारा उपेक्षित वा विरागभाजन हो, उसी
को अधिक प्रेम करते हो, यह जानकर भी मैं दग्धप्रेमके प्रति वा दग्धप्रेमके वश
ईर्ष्यालु नहीं हुई ॥ १० ॥

सा आम सुहअ गुणरूअसोहिरी आम णिअगुणा अ अहं ।

भण तीअ जो ण सरिसो किं सो सव्वो जणो मरउ ॥ ११ ॥

[सा सत्य सुभग गुणरूपशोभनशीला मय मिगुणा चाहम् ।

भण तस्या यो न सदृश किं स सर्वो जनो त्रियताम् ॥]

हे सुभग, वास्तवमें तुम्हारी वह प्रेयसी रूपगुणशालिनी है, एवं मैं गुण-
विहीना हूँ । बताना तो, जितने व्यक्ति उसके सदृश नहीं हैं, वे क्या
मर जायें ॥ ११ ॥

सन्नमसन्तं दुक्ख सुह च जाओ घरम्स जाणन्ति ।

ता पुत्तअ महिलाओ सेसाओ जरा मनुस्साणं ॥ १२ ॥

[सद्धमददु ख सुख च या गृहस्य जानन्ति ।

तः पुत्रक महिला शेषा जरा मनुष्याणाम् ॥]

हे पुत्रक, जो वधुएँ घरके समीके सद्धम ख सुख दु ख समीको विचारकर
चलना जानती हैं, केवल ये ही महिला पद-व्याप्य हैं, अन्याय्य रमणियों केवल
मानवीय जराके समान हैं अर्थात् कुल-कल्हिनी हैं ॥ १२ ॥

हसिअहिँ उवालम्मा अच्चुयचारेहिँ रुसिअव्याहं ।

असुहिँ मण्डणाइँ एसो मग्गो सुमद्विलाणं ॥ १३ ॥

[इतिरैवाम्नाया वायुवको केरिद्वयमिति ।

अथुकि कम्हा १५ यमं सुवदिभयम् ॥]

हास्य द्वारा निरुद्धत जगत्वा द्वारा केव मलाय पूर्व वहुताता महुता
या दुष्ट करवा अथुकि मदिभयमौकी वही माय मकर करवैकी रीति है ॥ १४ ॥

बहुतो मा दिग्गज कोमदिद्वय सि याम वाक्य ।

संभुहायद्वि को कम् वेषं वि दिदिं य पादर ॥ १५ ॥

[बहुतो मा हीमो कोमदिद्वय इति याम कम्हा ।

संभुहायद्वि को कम् वेषं वि दिदिं य पादर ॥]

कोमदिद्वय कम्हा अथुकि कोमदिद्वय (कोमदिद्वय) वही विद्व
कम्हा है । किन्तु किन्तु अथुकि के अथुकि कम्हा 'कोमदिद्वय' कोमदिद्वय कोमदिद्वय
कोमदिद्वय कोमदिद्वय अथुकि व हाथी कम्हा ॥ १५ ॥

साहीवपिद्वयमो दुग्गाया वि मन्हा कम्हायमन्हाय ।

विमन्हायमो कम्हा पुद्वि वि पाविद्वय दुग्गाया कम्हा ॥ १६ ॥

[साहीवपिद्वयमो दुग्गाया वि मन्हा कम्हायमन्हाय ।

विमन्हायमो कम्हा पुद्वि वि पाविद्वय दुग्गाया कम्हा ॥]

साही वपिद्वयमो दुग्गाया वि मन्हा कम्हायमन्हाय है वे कम्हायमो दुग्गाया
कम्हायमो है । किन्तु को अथुकि विमन्हायमो है वे कम्हायमो अथुकि कोमदिद्वय को
द्वि रीति है ॥ १६ ॥

कि वद्वि कि अ कोमदि कि दुग्गायि सुवधु यमोमन्हाय ।

पैमं विद्व व विमं साद्वि को कम्हायमन्हाय ॥ १७ ॥

[कि वद्वि कि अ कोमदि कि दुग्गायि सुवधु यमोमन्हाय ।

पैमं विद्व विमं साद्वि को कम्हायमन्हाय ॥]

वही वद्वि, रीति वही कोमदिद्वय को वही कम्हायमो कम्हायमो अथुकि
व कोम वही कम्हायमो को ? कम्हायमो ना विमं यमो विमं वेमो कोम
कम्हायमो कम्हायमो है ॥ १७ ॥

तं अ सुवधु या याममन्हाय तं अ कम्हायमन्हाय ।

कम्हायमन्हाय व कम्हायमो कम्हायमो वि तं सुवधु ॥ १८ ॥

[तं अ सुवधु या याममन्हाय तं अ कम्हायमन्हाय ।

कम्हायमन्हाय कम्हायमो कम्हायमो कम्हायमो ॥]

ये ही, ये युवक तब थे, वह ही, वह तब आम-सम्पत्ति थी और तब हम लोगोंका वही वह यौवन भी था। लोग आश्चर्यकी भाँति उन सगका वर्णन करेंगे और हम सब सुनेंगे ॥ १० ॥

वाहोहभरिअगण्डाहराएँ भणिअं विलयन्त्रहसिरीए ।

अज वि किं रुसिज्जइ सवहावत्थं गमं पेम्म ॥ १८ ॥

[याप्यौघभृतगण्डाधरया भणित विलसहमनशीलया ।

अद्यापि किं रुप्यते शपथावस्थां गत प्रेम ॥]

याप्यप्रवाहने गण्डस्थल एवं अधरको भरकर लज्जाभीतासे हँसकर वह नायिका बोली, अज और रोप क्यों प्रकट कर रही हो ? प्रेम शपथकी अवस्था पा चुका है अर्थात् शपथ द्वारा प्रेमकी प्रतीति घटती है ॥ १८ ॥

वण्णअघअलिप्पमुहिं जो मं अइआअरेण चुम्वन्तो ।

पहिं सो भूसणभूसिअं पि अलसाअइ छिवन्तो ॥ १९ ॥

[वर्णं घृतलिप्तमुन्मी यो मामत्यादरेण चुम्बन् ।

इदानीं म भूपणभूषितामप्यलसायते स्पृशन् ॥]

पुष्पावतीकी दशामें वर्णघृतद्वारालिप्तमुखी जिसने मुझे अत्यन्त आदरके साथ चूमा था, वही अज मेरे भूपणद्वारा अलङ्कृत होनेपर भी मुझे छूनेमें सकोच का बोध कर रही है ॥ १९ ॥

णीलपडपाउअङ्गी त्ति मा हु णं परिहरिज्जासु ।

पट्टंसुअं पि णअं रअम्मि अवणिज्जइ अवेअ ॥ २० ॥

[नीलपट्टप्राकृताङ्गीति मा खल्वेनां परिहर ।

पट्टांशुकमपि नद रतेऽपनीयत एव ॥]

नीले वस्त्रद्वारा आवृत्त अङ्गवाली समझकर उसे कभी त्याग न देना। पहले हुए पट्टवस्त्र भी रमणके समय छीन लिये जाते हैं ॥ २० ॥

सच्चवं कलहे कलहे सुरवारम्भा पुणो णवा होन्ति ।

माणो उण माणंसिणि गरुओ पेम्मं विणासेइ ॥ २१ ॥

[सत्य कलहे-कलहे सुरवारम्भा पुनर्नवा भवन्ति ।

मानः पुनर्मनस्विनि गुरुक प्रेम विनाशयति ॥]

प्रत्येक कलहके उपरान्त प्रारम्भ किया हुआ रमण पुन मचीन होता है, यह सच है। किन्तु हे मनस्विनि, मारी होनेपर मान प्रेमका विनाश कर देता है ॥ २१ ॥

मातुष्मत्तार मर अद्याप्य चारम कुलमीय ।

महामय वैर्म्य निवर्तितम्य पोषवाप्य ॥ २२ ॥

[अन्तेऽप्यवसा मया अद्यतनं चारम कुलमीय ।

महामय वैर्म्य निवर्तितम्य पोषवाप्य ॥]

महामय वैर्म्य हो, मय करीब लो मयम लो है वने मयम मयम
मयम लो है निवर्तितम्य वैर्म्य पोषवाप्य मयम लो है मयम लो है
मयम लो है ॥ २२ ॥

अनुकूल विम बाहु अनुकूल अनुकूल वि वम वि ।

कुर्वित न पश्यतः सिद्धिद माता मुक्तद्विधा ॥ २३ ॥

[अनुकूल विम बाहु अनुकूल अनुकूल वि वम वि ।

कुर्वित न पश्यतः सिद्धिद माता मुक्तद्विधा ॥]

हे अनुकूल विम लो न पश्यतः सिद्धिद माता मुक्तद्विधा है वि
विम विम अद्य अनुकूल अनुकूल मयम लो है मयम लो है मयम लो है
मयम लो है मयम लो है मयम लो है ॥ २३ ॥

सत्ता वता सीमा न अद्याप्य अद्याप्योपपद्य विम ।

अन्य कर्म विमद्वि लो अद्याप्य अद्याप्य अद्याप्य ॥ २४ ॥

[अद्याप्य अद्याप्य लो न अद्याप्योपपद्य विम ।

अन्य कर्म विमद्वि लो अद्याप्य अद्याप्य अद्याप्य ॥]

हे विम विम, विमद्वि लो है मयम अद्याप्य लो है मयम लो है
मयम लो है मयम लो है मयम लो है मयम लो है मयम लो है
(मयम लो है) मयम लो है ॥ २४ ॥

हविर्मा अद्याप्य मयमद्वि लो अद्याप्योपपद्य विम ।

विमद्वि लो अद्याप्य मयम अद्याप्य अद्याप्य ॥ २५ ॥

[हविर्मा अद्याप्य मयमद्वि लो अद्याप्योपपद्य विम ।

विमद्वि लो अद्याप्य मयम अद्याप्य अद्याप्य ॥]

हविर्मा अद्याप्य मयमद्वि लो अद्याप्योपपद्य विम है मयम लो है
मयम लो है मयम लो है मयम लो है मयम लो है मयम लो है
मयम लो है मयम लो है मयम लो है ॥ २५ ॥

हविर्मा अद्याप्य मयमद्वि लो अद्याप्योपपद्य विम ।

मयम लो है मयम लो है मयम लो है मयम लो है ॥ २५ ॥

[धूलिमलिनोऽपि पद्माङ्कितोऽपि मृगरचितदेहभरणोऽपि ।

तथापि गजेन्द्रो गुरुकायेन कृष्णं समुद्बुधति ॥]

धूलिमलिन होनेपर भी, पद्माङ्कित होनेपर भी, मृग द्वारा देहपोषणकारी होनेपर भी गजेन्द्र अपने गुरुवक्त्र (भारीपनके कारण) डोल बहन करता है ॥

करमरि फीस ण गम्मइ को गच्चो जेण मसिणगमणासि ।

अदिद्वदन्तद्वसिरीज जम्पिअं चोर जाणिहिसि ॥ २७ ॥

[पन्दि किमिति न गम्यते को गर्वो येन मसृणगमनासि ।

अद्वदन्तद्वमनशीलया जल्पित चोर जास्यसि ॥]

हे पन्दी, मेरे साथ चलती क्यों नहीं ? तुम्हें क्या यह गर्व है कि हतनी मन्दगमना हो गयी हैं ? दौत बिना दिखाये हँसकर रमणी घोल उठी, “हे चोर, (क्यों ऐसा करती हैं) जान जाओगे” ॥ २७ ॥

थोरंसुपद्धिं कण्णं सवत्तिवग्गेण पुप्फवद्वयाप ।

भुअसिहरं पइणो पेछिऊण सिरलगतुप्पलिअं ॥ २८ ॥

[स्वृलाधुनी रुदित सपानीवर्गेण पुष्पवराया ।

भुजशिश्र परयु प्रेष्य शिरोलग्नवर्णवृत्तलिप्तम् ॥]

पुष्पवतीके शिरोलग्नविलेपन घृष्टद्वारा पत्रिके भुजशिश्रको लिप्त देखकर सपत्नियाँ अविरल अश्रुधार बहाकर रोने लगीं ॥ २८ ॥

लोओ जूरइ जूरउ धअणिज्जं होउ होउ तं णाम ।

एहि णिमज्जसु पासे पुप्फवइ ण एइ मे णिहा ॥ २९ ॥

[लोक क्षिपते क्षिप्तु वचनीय भवति भवतु तन्नाम ।

एहि निमज्ज पार्श्वे पुष्पवति नैति मे निद्रा ॥]

लोग दुखी होते हैं तो हों, निन्द्रा होती है तो वह भी हो । हे पुष्पवती, आओ, मेरे पास आजाओ, मुझे निद्रा नहीं आ रही है ॥ २९ ॥

जं जं पुलप्पमि दिसं पुरओ लिहिअ व्व दीससे तत्तो ।

तुह पडिमापडिवाडिं बहइ व्व सअल दिसाअक्कं ॥ ३० ॥

[यां यां प्रलोकयामि दिश पुरतो लिखित एव दृश्यसे तत्र ।

तव प्रतिमापरिपाटीं वहतीव सकल दिशाचक्रम]

मैं जिधर जिधर देखती हूँ, मानो उधर ही उधर तुम्हें चित्रित देखती हूँ । सारे दिक्चक्र ही जैसे तुम्हारी प्रतिमाको परस्पर बहन कर रहे हैं ॥ ३० ॥

उप्पहपहाविहजणो पविजिम्हिअफलअलो पहअतूरो ।

अब्बो सो च्चेअ छणो तेण विणा गामडाहो व्व ॥ ३५ ॥

[उपपथप्रधावितजन प्रविजृम्भितकलकल प्रहतवूर्य ।

दुःख स एव उणस्तेन विना ग्रामदाह इव ॥]

हाय, जिस उत्सवमें लोग ऊपरकी ओर भागते हैं, गीताविद्वारा कलकल रव उठता है एव तूर्यनिदान-उठाया जाता है—वही मधूरसव उस प्रियतमके विरहमें ग्रामदाहकी भाँति प्रतीत हो रहा है ॥ ३५ ॥

उल्लावन्तेण ण होइ कम्मस पासट्ठिण्ण उट्ठेण ।

सङ्का मसाणपाअवलम्बिअचोरेण व खलेण ॥ ३६ ॥

[उल्लापयमानेन न भवति कस्य पार्श्वस्थितेन स्तब्धेन ।

शङ्का-श्मशानपादपलम्बितचोरेणैव खलेन ॥]

—श्मशानवृक्ष पर गलेमें फाँसी डालकर लटकती हुई, लम्बमान, स्तब्ध एव पराभवकारी चोरकी भाँति (प्रवृद्धतार्थ) खोलते हुए पार्श्वस्थित तथा गर्वसे स्तब्ध खल व्यक्ति किसमें शङ्का नहीं उत्पन्न करते ॥ ३६ ॥

असमत्तगुरुअकज्जे एहिं पहिण्ण घरं णिअत्तन्ते ।

णवपाउसो पिउच्छा हसइ व कुडअट्ठहासेहिं ॥ ३७ ॥

[असमाप्तगुरुकार्ये इदानीं पथिके गृह प्रतिनिवर्तमाने ।

नवप्रावृट् पितृष्वस हसतीव कुटुम्बाट्ठहासै ॥]

अरी बुआ, सम्प्रति अत्यावश्यक कार्यकी असमाप्त रहने दे । पथिकके घर लौट आने पर, नयी वर्षासे गिरिमल्लिकाके खिलनेके समान अट्ठहास-सी हँसी हँस रही है ॥ ३७ ॥

दट्ठूण उण्णमन्ते मेहे आमुक्कजीविआसाय ।

पहिअवरिणीअ डिम्मो ओरुण्णमुहीअ सच्चविओ ॥ ३८ ॥

[दृष्ट्वा उन्नमतो मेघानामुक्कजीविताशया ।

पथिकगृहिण्या डिम्मोऽवरुदितमुण्या इष्ट ॥]

आकाशमें यादलोंको उठते हुए देखकर, जीवनकी आशाका सम्यक् त्यागकर, पथिकपत्नी ने रुझाँसे मुँहमें अपने शिशुकी गतिकी स्वामाविक रीतिसे स्थिर किया ॥ ३८ ॥

अविहवक्खणवल्लभं टाणं णेन्तो पुणो पुणो गल्लिअं ।

सहिसत्थो धिय माणंसिणीअ चल्लआरओ जाओ ॥ ३९ ॥

[आभ्रवने अमरकुल न विना कार्येणोत्सुक भ्रमति ।

कुतो ऽवलनेन विना धूमस्य दिप्ता हर्यन्ते ॥]

अमराईमें अनायास ही उत्सुक हो भीरे धूम नहीं रहे हैं अर्थात् मधुपान के लोभमें धूम रहे हैं । अग्निके अतिरिक्त धूपोंकी शिखा कहाँ दिखायी पड़ती है ? ॥ ४३ ॥

दद्वयकरगगहलुलितो घग्मिल्लो सीधुगन्धिमं घमणं ।

ममणम्मि पत्तिमं चित्र पसाहणं हरद तरुणीणं ॥ ४४ ॥

द्वयितकरगगहलुलितो घग्मिल सीधुगन्धित घदनम् ।

मदने पृतावदेव प्रसाधन हरति तरुणीनाम् ॥]

प्रियतमके करग्रहणके कारण शिथिलपद्म केशवन्ध (जूहा) एवं मदिराके गंधसे आमोदित घदन—इनका श्रृंगार ही तरुणियोंके मदनोत्सवमें चित्तहारी होता है ॥ ४४ ॥

गामतरुणीओ^० द्विभ्रं हरन्ति छेआणं थणहरिह्रीओ ।

मअणे कुसुम्भरत्निभक्खुआहरणमेत्ताओ ॥ ४५ ॥

[ग्रामतरुण्यो हृदय हरन्ति विदग्धानां स्तनभारवत्य ।

मदने कुसुम्भरागयुक्तकञ्चुकाभरणमात्रा ॥]

मदनोत्सवमें कुसुम्भराजित कञ्चुकि मात्र आभरणरूपमें पहनकर, स्तन-भारवती ग्रामतरुणियाँ विदग्ध जनोंके हृदयको हर रही हैं ॥ ४५ ॥

आलोथन्त दिप्ताओ ससन्त जग्मन्त गन्त रोधन्त ।

मुच्छन्त पडन्त खलन्त पद्विअ किं ते पउत्येण ॥ ४६ ॥

[आलोकयन्दिषाः श्वसजृम्भमाणो गायन्मुदन् ।

मूर्च्छन्पतन्स्खलन्पथिक किं ते प्रवसितेभ ॥]

अरे पथिक, दिशाओंकी ओर देखकर ही मुग्धारे श्वास, जैमाई, गान या गमन, रोदन, मूर्च्छा, पतन एवं स्खलन हो रहे हैं—मुग्धारे प्रवासगमन से क्या प्रयोजन ? ॥ ४६ ॥

दट्ठूण तरुणसुरअं विविहविलासेहिं करणसोहिल्लं ।

दीओ चि तग्गअमणो गअं पि तेस्लं ण लफ्फेइ ॥ ४७ ॥

[दट्ठा तरुणसुरत विविधविलासै करणशोभितम् ।

दीपोऽपि तद्गतमना गतमपि तैल न लब्धमिति ॥]

ग्रीष्म सन्वापसे सन्तप्त वैल गिरिका स्रोत समक्षकर मर्षको जिह्वासे चाट रहा है, एवं सर्प भी काले पर्यरका झरना समक्षकर उसका छार पी रहा है ॥

पञ्जरसारिं अत्ता ण नेसि किं एत्थ रइहरादिन्तो ।

वीसम्मजम्पिआइं एसा लोआणं पअडेइ ॥ ५२ ॥

[पञ्जरशारीं मातुलानि न नयसि किमत्र रतिगृहाय ।

विस्त्रम्भजहिपतान्येषा लोकाना प्रकटयति ॥]

अरी सात, इस पञ्जरबद्ध सारिकाको रतिगृहसे अन्यत्र हटा क्यों नहीं देती ? यह औरों के सम्मुख गोपनीय वचनोंको प्रकट कर देती है ॥ ५२ ॥

एइहमेत्ते गामे ण पडइ भिक्खु त्ति कीस मं भणसि ।

घम्मिअ करञ्जमञ्जअ जं जीअसि तं पि दे वहुअं ॥ ५३ ॥

[एतावन्मात्रे ग्रामे न पतति भिक्षेति न किमिति मां भणसि ।

धार्मिक करञ्जमञ्जक यजीवसि तदपि ते बहुकम् ॥]

हे करञ्ज शास्त्राभङ्गकारी धर्मात्मा, इतने घड़े ग्राममें सुझसे ही क्यों कह रहे हो कि 'भिक्षा नहीं मिलती' ? करञ्जशास्त्राभङ्ग होनेके बाद जो जीवित हैं—यही तुम्हारे लिए बहुत है ॥ ५३ ॥

जन्तिअ गुलं विमग्गसि ण अ मे इच्छाइ वाइसे जन्तं ।

अणरसिअ किं ण आणसि ण रसेण विणा गुल्लो द्दोइ ॥ ५४ ॥

[यांत्रिक गुह विमर्गयसे न च ममेच्छया वाहयसि यन्त्रम् ।

अरसिक किं न जानासि न रमेन विना गुहो भवति ॥]

अरे यन्त्रचालक, (घेतनके बदले) गुह चाहते हो ? ऊपरसे हमारे इच्छा-नुसार यन्त्र नहीं चला सकते । अरे अरसिक, क्यों, नहीं जानते कि उसके बिना गुण पैदा नहीं होता ॥ ५४ ॥

पत्तणिअम्यएफसा ण्हाणुत्तिण्णाएँ सामलङ्गीए ।

जलविन्दुपट्ठिं चिहुरा रुअन्ति यन्धस्स व भएण ॥ ५५ ॥

[प्राप्तनितम्बस्पर्शा स्नानोत्तीर्णाया श्यामलाङ्गया ।

जलविन्दुकैश्चिकुरा रुन्ति यन्धस्येव भयेन ॥]

स्नानोत्तीर्णा श्यामलाङ्गीके कुन्तल कण्ठममूढ नितम्बके स्पर्शसुखको पाकर जैसे यन्धनके भयसे स्नान जलविन्दुओंके सहाने रो रहे हैं ॥ ५५ ॥

गामङ्गणणिअडिअकहवक्ख चड तुल्ल दूरमणुलङ्गो ।

तित्तिहपडिअकभोइओ वि गामो ण उट्ठिङ्गो ॥ ५६ ॥

[आत्मार्थविनिर्दिष्टकृत्यस्य चरुं त्वं भूयःकुरु ।

श्रीः कवि-विरचितोऽयमसौ पद्योऽयं वाच्यो ज्ञेयिष्या ॥ १

हे बरहृष तुमने पाँचके अंगिथीं हृष्यकशका कण्ठकाद बरि (का) है ।
तुमने हृ हृष्य बरिषका हृष्यैवाक्य कश्चिद बरी होया बरिषि लोचका
कश्चिथीकी हृष्यका कश्चिथीका कश्चि है ॥ ५९ ॥

सुखं शरीरं ज्ञानम् च मन्त्रिणा सा राज्यं कुरुष्वतां ।

अथ वि धरे इतिष्य मन्त्रार्थे च आत्म्ये वसो ॥ २० ॥

[इति इत्थं ज्ञायते यं वृत्तं यं वृत्तं वृत्तं ।

अथवा हि पूर्वे इतिहास कथाव्यतिरिक्त कविता न ।

हृदय की कलक पला जमा भी हुआ नहीं, वह तुमको भी बसा दब, कलक भी वहाँ कुलित हो गई। किन्तु तुमने विपदा हलके सामने लेके बाँधुरी बनाई गई अर्थात् बलकी काली बैलगाड़ी मार्च हुई। ॥ ५० ॥

पिहृष्यन्ति कामिनीर्न ब्रह्महृष्यन्ति ।

कण्ठरमण्याः प्रमुखाभिः कण्ठरं ॥ ५ ॥

[विद्युत्कणानि कणिकीयानि कणिकीयविद्युत्कणिकीयानि ।]

कथं विप्रकृतौ कौतुहलं विप्रकृतौ च ।

आसिबिर्वाका कयसिभ कयोकमिदिह दुर्ग वरुण्ड विगत वैभवमिभ
वरुणतदूर अकर्म विद्योप निवृत्त्येति आसिभुनके कल्प ह्रस्वी मीरा सुनि
अ १० ॥ ५४ ॥

अहिमसा उपरि विचार का हर क्षण पर विमर्श ।

रासपद्यारिजनीयार्थं नञिन् मोहयन्तार्थं ॥ ५९ ॥

(अविद्ययादहमकार्मिणोऽहोमोहो ह्यहमादिभ्योऽपिबलेऽहम्)

॥ अथ शिवजीसंगीतगीतायां ॥

कथंति नरे वाङ्मनसि नर्त्यनरी कलामिदं नृप-कल्पमानं विपरीतं नाचन्मयं
 वदन्मिदं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं
 नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं
 नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं नृप-कल्पमानं

महिसासनाच्छिद्यार्ण्यं योऽहं सिद्धाह्वयं विमिश्रिमत् ।

माहमयीचर्चासंग्रहसमुहसं. मसमपुनर् ॥ ५० ॥

[महिपस्कधविलग्न घूर्णते शृङ्गाहत सिमसिमायमानम् ।

आहतवीणाक्षकारशब्दमुखर मशकवृन्दम् ॥]

भैसोंके कन्धेपर लगे मशकवृन्द सींगों द्वारा आहत होनेपर सिम्-सिम् शब्द करते-करते आहत वीणाके क्षकारकी ध्वनिकी भाँति मुखर हो घूम रहे हैं ॥

रेहन्ति कुमुददलणिच्चलद्विभा मत्तमधुकरणिहाभा ।

ससिम्बरणीसेसपणासिम्बर गण्ठि व्व तिमिरस्स ॥ ६१ ॥

[राजन्ते कुमुददलनिष्कलस्थिता मत्तमधुकरनिकाया ।

शशिकरनि शेषप्रणाशितस्य ग्रन्थय इव तिमिरस्य ॥]

उदयके अनन्तर चन्द्रकिरणों द्वारा अशेष भावसे नाशित अन्धकारकी प्रथिसमूहकी भाँति प्रतीयमान मत्तमधुकरनिकर कुमुद दलके ऊपर निष्कल भावसे बैठकर शोभा पा रहा है ॥ ६१ ॥

उग्रह तरुकोटराओ णिकन्तं पुंसुवाणं रिञ्छोलिं ।

सरिप जरिओ व्व दुमो पित्तं व्व सलोद्धिमं वमइ ॥ ६२ ॥

[पश्यत तरुकोटरानिष्कान्तां पुशुकानां पक्षिम् ।

शरदि उवरित इव दुमः पित्तमिव सलोहित वमसि ॥]

देस्रो, घृष्टकोटरसे पुशुकोंकी पक्षि निकल रही है। जान पड़ता है कि शरतमें ज्वराक्रान्त घृष्ट रक्तमिश्रित पित्तकी उलटी कर रहा है ॥ ६२ ॥

धाराधुव्वन्तमुद्धा लम्बिअवक्खा णिउञ्चिअग्गीवा ।

वइवेढनेसु काआ सुलाहिण्णा व्व दीसन्ति ॥ ६३ ॥

[धाराधाव्यमानमुद्धा लम्बितपक्षा निकुञ्चितग्रीवा ।

वृत्तिवेष्टनेषु काका शूलाभिन्ना इव दृश्यन्ते ॥]

खेतकी वृत्तिवेष्टन (मेढ़) के ऊपर बैठकर वृष्टि धारा द्वारा घोया हुआ मुल, लम्बे पक्ष एव फैले हुए ओषवाले कौए शूल द्वारा सम्यक् विद्ध जैसे प्रसीत होते हैं ॥ ६३ ॥

ण धि तह अणालवन्ती द्वियमं दुमेइ माणिणी अद्विय ।

जह दूरविअम्भिअगरुअरोसमज्जत्थमणिपहिं ॥ ६४ ॥

[नापि तथा नालपन्ती हृदयं दुमोति मानिन्यधिकम् ।

यथा दूरविअम्भितगुरुकरोपमध्यस्थमणितं ॥]

मानिनीने यात न कर मुझे जितना कष्ट नहीं दिया है उससे कहीं अधिक

कह दिया है—कृत करण्येन सुखस्यदिशि अस्मिन् नमः ॥ ११ ॥

यान्ये अग्राधन्याय पञ्चमस्तम्यार्थे वादयतिबध्यत ।

अथसमु परिभङ्गनामक परिधिमाहं सा च वैच्छेदिति ॥६५॥

[पञ्चमः प्रश्नः]

आन्ध्रविहिः उभिरुत्तरं पृथिवींशुनं सा न विधिज्जने ॥

दे कुप-पथिक, वः हृद कहलकी सुकन लूँकर तुमसे केव जानाई हो गइ है । तुम जानलन होखे, एहिणीका हूँद बीज नहीं दिनेप देना जारी है ॥ ५५ ॥

गन्धं मयि विना कश्चिं सुखमप्यास्य सौख्यदिव्यवत्सलम् ।

अथ हि नमोऽस्तुते मा रं स्यादिति वयं ॥ ११ ॥

[अर्थः सर्वज्ञेयं सर्वव्याप्यं सर्वदात्मकम् ।

अथवा अथवाकिम् अथ हे अथवाकिम् अथवा ॥]

हे लक्ष्मण लज्जा की आगि चरीकर तुम भी छोड़ो जेने कटित हारन पर मारी । झिन्नु को भैरव, कामरुद्र-कोविदी का बँधनी आभिरापी मन करवा ॥ ६५ ॥

एतदर्थं च श्रीगणेशाय नमः ।

अथर्ववेदः सूक्तम् ॥ १७ ॥

[कुरुक्षेत्रीय वीरचरित्रात् सप्तमस्कन्धः ।

संस्कृत-संज्ञा-सूची । १

[illegible]

कहाँ से परिवार अपने अलसता छोड़ि सि बिभ्रती ।

स्यचाममरा सहास्ये यज्ज न साधी तस्योव ॥ ५३ ॥

[कथं ते शीतलित्वाप्येकमप्युपैव विदितवन्ति ।]

अथर्वणश्रुत्या समुदायी रीतिर्नीच आश्रितुलनेन]

कौं वीरचरित-कथनमें आचार्य पादमालामें कथिष्ठान्त वर्णनस्य अत्र वीरका
 कथं लेने होय—एह विचारय्य सुख वीरचरित सूत्र कथिष्ठ (पादमाला कथं
 कथं) कथिष्ठान्त सुखय्य कथिष्ठ कौं ले होय है ॥ १५ ॥

संभाराद्योत्थेह्यो दीसद् गमणम्मि पडिवभाचन्दो ।

रत्तदुऊलन्तरिओ थणणहलेहो व्व णववहुप् ॥ ६९ ॥

[सध्यारागावस्थगितो दृश्यते गगने प्रतिपच्चन्द्र ।

रत्तदुऊलान्तरितः स्तननखलेख इव नववध्वाः ॥]

रत्तवर्ण वस्त्रद्वारा आश्रित नववधूके स्तनके ऊपरके नखचिह्नकी नाई
प्रतिपदाका चन्द्र आकाशमें मध्यारागमें अस्तहित दिखायी पड़ रहा है ॥ ६९ ॥

अह दिअर किं ण पेच्छसिं आआसं किं मुहा पलोपसि ।

जाआह वाहुमूलम्मि अद्धअन्दाणं परिवाडिं ॥ ७० ॥

[अयि देवर किं न मेक्षसे आकाश किं मुधा प्रलोकयसि ।

जायाया वाहुमूलेऽर्धचन्द्राणां परिपाटीम् ॥]

हे देवर, आकाशकी ओर व्यर्थ ही दृष्टिपात क्यों कर रहे हो ? जायाक
वाहुमूल प्रदेशमें (नखस्रोतोंपादित) अर्धचन्द्रोंको क्यों नहीं देखते ? ७० ॥

वाआह किं भणिज्जउ केत्तिअमेत्तं व लिक्खण लेहे ।

तुह विरहे जं दुक्खं तस्स तुमं चेअ गहिअत्थो ॥ ७१ ॥

[वाचया किं भण्यतां कियन्मात्र वा लिप्यते स्नेहे ।

तव विरहे यददुःखं तस्य त्वमेव गृहीतार्थ ॥]

वाक्य द्वारा और क्या कहा जाय ? पत्रमें भी कितना लिखा जाय ? तुम्हारे
विरहमें कितना दुःख है, यह तुम मली प्रकार समझ पा रहे हो ॥ ७१ ॥

मभणग्गिणो व्व धूमं मोहणपिच्छिं व लोअदिट्ठीए ।

जोव्वणधअं व मुद्धा वहइ सुअन्धं चिउरमारं ॥ ७२ ॥

[मदनान्नेरिव धूम मोहनपिच्छिकांमिव लोकदृष्टे ।

यौवनव्यञ्जमिव सुगन्धा वहति सुगन्धे चिकुरभारम् ॥]

सुगन्धा रमणी मदनान्निके धूँ की भाँति, लोगोंके नयनोंको सुगन्ध करनेकी
पेन्द्रजालिक पिच्छिकाकी भाँति यौवनकी व्यञ्जकी भाँति, सुगन्धित केशोंका
भार वहन कर रही है ॥ ७२ ॥

ऊअं सिट्ठ चिअ से असेसपुरिसे णिअत्तिअच्छेण ।

वाहोल्लेण इमीए अजम्पमाणेण वि मुद्धेण ॥ ७३ ॥

[रूप शिष्टमेव तस्याशेषपुरीषे निवर्तिताक्षेण ।

वाष्पाग्नेयास्या अजस्रतापि मुखेन ॥]

आम वदला घणाली मुदला जलरङ्गुणो जलं सिसिरं ।
अण्णणईणं वि रेवाइ तद्द वि अण्णे गुणा के वि ॥ ७८ ॥
[सत्य यहला घनाली मुषरा जलरङ्गयो जल शिशिरम् ।
अन्यनदीनामपि रेवायास्तथाप्यन्ये गुणा केऽपि ॥]

यह सच है कि और नदियोंके पास भी तटविस्तृत घनोंकी पक्ति है, शब्द-
सुन्दर जलरङ्ग पक्षीगण एवं सुदीप्त जल विद्यमान है, सयापि रेवा (नर्मदा)
नदीका और भी कोई-कोई सा अतिरिक्त गुण भी है ॥ ७८ ॥

एइ इमीअ णिअच्छइ परिणअमालूरसच्छहे थणप् ।
तुल्ले सप्पुरिसमणोरहे व्व हिमए अमाअन्ते ॥ ७९ ॥
[आगच्छतास्या निरीक्ष्य परिणतमालूरसदृशी स्तनी ।
तुल्लौ सत्पुरुषमनोरथाविष हृदये अमान्तौ ॥]

आओ एवं सत्पुरुषोंके मनोरथकी भाँति इस रमणीके हृदयदेश (घनस्थल)
में अमान्त (विपुल अथवा मानके अनुपयोगी) तुल्ल एवं पके हुए विम्वफल
जैसे स्तनद्वयको निरूपो ॥ ७९ ॥

हत्थाहत्थिं अहमहमिआइ वासागमम्मि मेहेहिं ।
अच्चो किं पि रहस्स छण्णं पि णहङ्गण गल्लइ ॥ ८० ॥
[हस्ताहस्ति अहमहमिकया वर्षागमे मेघै ।
आश्चर्यं किमपि रहस्य छन्नमपि नमोद्गण गलति ॥]

अहो आश्चर्यका विषय यही है कि वर्षागममें भद्दकारवश हाथोहाथ मिले
हुए मेघ घटाद्वारा आच्छन्न होनेपर भी आकाशरूपी आँगन गिरा पड़ रहा है ॥

केत्तिअमेत्तं होहिइ सोहग्गं पिअअमस्स भमिरस्स ।
महिलामअणत्तुहाउलकडप्पअविक्खेवघेप्पन्तं ॥ ८१ ॥
[कियन्मात्र भविष्यति सौभाग्य प्रियतमस्य अमणशीलस्य ।
महिलामधमनुष्याकुलकटाक्षविशेषगृह्यमाणम् ॥]

अन्यान्य नारीके लिए अमणशील प्रियतमका सुभगव्य कितनी देर टिकेगी ?
कारण, महिलाएँ केवल मधननुषासे आकुल कटाक्षपातद्वारा ही इसे वशमें
लाना चाहती हैं ॥ ८१ ॥

णिअघणिअ उधअहसु कुक्कुडसदेन अत्ति पडिबुद्ध ।
परवसइवाससङ्किर णिअप् वि घरम्मि, मा भासु ॥ ८२ ॥

पुरुष जो प्रवासके सम्बन्धमें हसने गर्वका अनुभव करते हैं—यह महिलाओंका ही दोष है। जब तक महिलाओंमेंसे दोन्तीन मर नहीं जायँगी तब तक विरहकी समाप्ति नहीं होगी ॥ ८६ ॥

वालम्य दे वच्च लघु मरद् वरार्द अलं विलम्बेण ।
सा तुज्ज दंसणेण वि जीवेज्ज णत्थि संदेहो ॥ ८७ ॥
[बालक हे भ्रज लघु त्रिपते वराकी अल विलम्बेन ।
सा तव दर्शनेनापि जीविष्यति नास्ति सदेह ॥]

हे प्रमाणभिज्ञ बालक, शीघ्र चलो, वराकी (दयनीया) रमणी मारी जा रही है, विलम्ब करने का प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे दर्शन पाकर वह घबड़ा जायगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ८७ ॥

तम्मिरपसरिअहुअवहजालालिपलीविण वणाहोण ।
किंसुअवणन्ति कलिऊण मुग्धहरिणो ण निक्कमइ ॥ ८८ ॥
[ताम्रवर्णप्रसृतहुतवहज्ज्वालावलिप्रदीपिते वनामोगे ।
किंशुकवनमिति कलयित्वा मुग्धहरिणो न निष्क्रामति ॥]

ताम्रवर्ण होकर विस्तृत अग्निशिखासमूह द्वारा प्रज्वलित वनप्रान्तरको भ्रमवश किंशुकफानन समझकर मुग्ध हरिण निकल नहीं रहा है। बिनाशके कारणको ही सुखका हेतु समझकर मुग्धजन प्रेयसीको छोड़ नहीं सकते ॥ ८८ ॥

णिहुअणसिण्णं तह सारिआइ उल्लाविअ म्ह गुरुपुरओ ।
जह त चेत्तं माण ण आणिमो कत्थ चच्चाओ ॥ ८९ ॥
[निधुवनशिरष तथा शारिकयोष्णपित्तमस्माक गुरुपुरतः ।
यथा तां येलं मातनं जानीम कुत्र गज्जाम ॥]

हे माता, शारिकाने गुरुजनोंके सम्मुख हम लोगोंके सुरतशिरषकी कहानी इस प्रकार कह दी थी कि उस समय मैं लज्जासे कहाँ छिप जाऊँ यह समझमें नहीं आया ॥ ८९ ॥

पध्वग्गप्फुल्लदल्लसन्तमअरन्दपानलेहसओ ।
तं णत्थि कुन्दकलिआइ ज ण भमरो महइ काउं ॥ ९० ॥
[प्रत्यगोष्णदल्लसन्मकरन्दपानलुब्ध ।

सन्तास्ति कुन्दकलिकाया यन्न भमरो वाञ्छति कर्तुम् ॥]
नवप्रस्फुटितदलविशिष्ट कुन्दकुसुम उल्लसित मधुपानमें लोलुप हो भीरा कुन्दकलिकासे सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता ऐसा काम नहीं है ॥ ९० ॥

एतं यो वि शुचिरसम्भवा न जायमानां मामि कुन्तलरभाय ।
 भवत्येहिं विभवा पाई अदिनससह जेव ममर्षिं ॥ ११ ॥
 [न येन वि शुचिरसम्भवा न जायमानां मामि कुन्तलरभाय ।
 अदिनससह जेव ममर्षिं ॥ ११ ॥]

हे माजी, मैं नहीं जानती कि कुम्हारविद्याया पर कुम्हारों का क्या है। कारण, जोरोंसे कुछ हुआ नहीं वेराह मचकरी ही ऐसे नीचे ही बसि-
क्याती है ॥ ११ ॥

पञ्च विधः कर्मगुणं प्राप्नुयिष्यन् स मुखादह ।
 अविमिश्रकर्मणः सुकर्मो जीव ईश्वरकर्म प्राप्नो ॥ १२ ॥
 [अथैव कर्मगुणं प्राप्नुयिष्यन् स मुखादह ।
 अविमिश्रकर्मणः सुकर्मो जीव ईश्वरकर्म प्राप्नो ॥]

साहित्यकारकी चुकी कहलै हो ईश्या कम दर्ज पुन ज्ञान कर रही है कि
सारी साहित्यामी जगज्ज भवन सिद्धि हो ईश्या बनकर कनै हो कह है ॥ ५२ ॥

मम्यं ज्ञानाथो विद्वन् व पवित्रा विद्वन्महाराजसम्पत् ।
निबन्धेर्हि जेष रत्नमालाग्रहि ज्ञानस्य समुदायिन् ॥ १३ ॥
[ज्ञाने ज्ञानात् नृप न ब्रह्म विद्वन्महाराजसम्पत् ।
निबन्धेर्हि रत्नमालाग्रहि समुदायिन् ॥]

हमें प्रतीत होता है कि इसका निष्कर्ष अकारण स्पष्ट नहीं
पाया है। हमें अपने अनुभवों के अनुसार लिखा है। ॥ २३ ॥

भावभ्यामद्विर्जयसिद्धयुक्तमस्याहम्बर इतिपीड ।
 नार्थत्वा विद्या र्थादिह सि बलिर्ध विर दिवो ॥ ५७ ॥
 [भावभ्यामद्विर्जयसिद्धयुक्तमस्याहम्बर इतिपीड ।
 नार्थत्वा विद्या र्थादिह सि बलिर्ध विर दिवो ॥ ५७ ॥]

क्याचके नाम एक आगुह जीव आले हुला मझुन होकर श्री हरिजी
(देवपद) 'मैरा शिव दर्शनके लीला होला' देना जीवकर कन्हेरी लेाकर
बहुत ईश्वर भिदासके कपी ॥ १ ॥

विश्वमण्डिपिन्दोऽम्बुसमे तुम्ह सप्तुषिणीय ।
 को को न पतिषो पदिन्याम हिमं यन्मन्मि ॥ ९५ ॥

[विषमस्थितपदैकाग्रदर्शने तस्य दानुगृहिण्या ।

क को न प्रापित पथिकानां दिग्मे रुदति ॥]

विषम साप्ताग्र पर स्थित केवल एक आग्रफलको देखकर शिशु पुत्रके रोने लगने पर, तुम्हारी दानु-गृहिणीने आम गिानेके छिप किस किस पथिककी दिनती नहीं की ॥ ०५ ॥

मालारी ललिउल्लुलिअयाहुमूलेहिं तरुणद्विअयाइं ।

उल्लरइ सज्जुल्लरिआइं कुसुमाइं दावेन्ती ॥ ९६ ॥

[मालाकारी ललितोल्लितयाहुमूलाम्पां तरुणाद्वयानि ।

उल्लुनाति सद्योऽल्लनानि कुसुमानि दर्शयन्ती ॥]

मालिनी सुरत तोड़े गए कुसुमको दिखाने जाकर अपने सुन्दर पय विशाल स्तनद्वारा युवकोंके हृदयको व्याकुल कर रही है ॥ ९६ ॥

मज्झो, पियो, कुअण्डो, पल्लिज्जुआणा, सयत्तीओ ।

जह जह घटन्ति थणा नह तह छिज्जन्ति पञ्च घाहीप ॥ ९७ ॥

[मध्य प्रिय कुटुम्ब पत्नीयुवान मपान्य ।

यया यथा यधेते स्तनौ तथा तथा चीयन्ते पद्म व्याप्या ॥]

व्याधपत्नीके दोनों स्तन जैसे-जैसे बढ़ रहे हैं, वैसे-वैसे पाँच वस्तुएँ चीण होती जा रही हैं—उमकी फटि, उमका प्रियतम, उमका कुटुम्ब, गाँवके युवक एवं उसकी मपदियौ ॥ ९७ ॥

मालारीय चेह्लदलयाहुमूलायलोअणसअहो ।

अल्लिअं पि भमइ कुसुमघणुच्छिरो पंसुलज्जुआणो ॥ ९८ ॥

[मालाकार्या सुन्दरयाहुमूलायलोकनसत्तणः ।

अलीकमपि अमति कुसुमार्घप्रश्नशीलः पंसुलयुवा ॥]

मालिनके सुन्दर स्तनयुगल देखनेकी लालसामें परस्त्रीलम्पट युवक झरमूठ फूलोंका मूख्य पूछता हुआ घूम रहा है ॥ ९८ ॥

अकअण्णुअ घणवण्णं घणपण्णन्तरिअतरणिअरणिअरं ।

जइ रे रे घाणीरं रेवाणीरं पि णो भरसि ॥ ९९ ॥

[अकृतज्ञ धमवर्ण धनपर्णान्तरिततरणिकरनिकरम् ।

पदि रे रे वानीर रेवाणीरमपि न स्मरति ॥]

रे रे अकृतज्ञ, जो धैतकुञ्ज मेघ जैसे साँवले, रत्न एवं जहाँ सूर्यकिरण

हमे बहुरस्यहीने आन्धरीन हैं उन बेंतुअओ नहि रमाय न भी का
 कओ सो क्या पुन देवा (वर्तनी) नहीअ यह भी रमाय नहीं का कहते । ११३

मन्दि वि ज आचर हसिअणन्धो इह हि इहुमाअमि ।

गहवरसुअ विअअर मयअए कस्स स्याहमा ॥ ११४ ॥

[मन्दिअ वि ज आचरि हसिअणन्ध इह हि इहुमाअमे ।

एहअणुता विअअमेअहो कस्स कयअअ ॥]

इय नेअ इअ कये योंहों पुहअरिणी अमिणी पिअिअक अमाअने विअह-
 पुअ हो कयेअ—इमिअणन्ध (आमाअ) अह अमिक कयी कयी कयअ एअ
 है—किअसे यह पान कही ॥ १ ॥

एसिमअअहिअअए कएअअअणुअसुअअमिअए ।

सअमअमिअ सअअ सहुं गाहाअअ एअ ॥ ११५ ॥

[एसिमअअअअअहिने अमिअअअअअअअअमिअने ।

अअअअ अमाअ अह गाहाअअअअअ ॥]

एसिमअअअहिने अहअअ अमिअ अह अमिअअअ अअअ अअमिअ अमा
 अमिअ अहअअअहिने अह अह अमाअअअ अमाअ अअअ ॥ १ ॥

सप्तम शतक

एकक्रमपरिरञ्जनप्रहारसँमुहे कुरङ्गमिहुणम्मि ।

चाहेण मण्णुविअलन्तधादघोअं अणुं मुकं ॥ १ ॥

[अन्योन्यपरिरञ्जनप्रहारसमुहे कुरङ्गमिथुने ।

व्याधेन मन्युविगलद्वाप्पधौत धनुमुत्तम् ॥]

मृग मृगीको परस्पर रक्षाके निमित्त प्रहारके सम्मुख होते देखकर व्याघने
करुणावश विगलित वाप्यद्वारा धौत (सिक्त) धनुषको छोड़ दिया ॥ १ ॥

ता सुहअ चिलम्प खणं भणामि कीअ वि कण्ण अलमह वा ।

अविआरिअकज्जारम्भआरिणी मरउ ण भणिस्सं ॥ २ ॥

[तत्पुत्रमग विलम्बस्व क्षण भणामि कस्या अपि कृतेनालमय वा ।

अविचारितकार्यारम्भकारिणी म्रियतो न भणिष्यामि ॥]

हे सुभग, थोड़ी देर रुको, एक स्त्रीके सम्बन्धमें तुमसे कुछ कहना चाहती
हूँ, वा कहनेका क्या काम ? बिना विचारे कार्यको प्रारम्भ करनेवाली वह मारी
जाय तो मारी जाय, उसके लिए तुम्हें मैं कुछ नहीं कहूँगी ॥ २ ॥

ओइणिदिण्णपहेणअच्चक्खिअदुस्सिक्खिओ हल्लिअउत्तो ।

एत्ताहे अण्णपहेणआणँ छीओल्लअं देई ॥ ३ ॥

[भोगिनी वत्तप्रहेणका स्वाधनदु चिचित्तो हल्लिक पुत्र ।

इदानीमन्य प्रहेणकानां छी इति वचन ददाति ॥]

प्राप्तीका व्यापारीकी पत्नीद्वारा प्रेषित मोदकादि रूप दायनको खानेमें
हालची हल्लिकपुत्र अन्य लोगोंके भोग्यवस्तुओंकी 'छी छी' कर निन्दा कर
रहा है ॥ ३ ॥

पच्चूसमऊद्धावलिपरिमलणसमूससन्तवत्ताणं ।

कमल्लाणं रअणिधिरमे जिअलोअसिरी महम्महइ ॥ ४ ॥

[प्रयूपमयूखावलिपरिमलनसमुत्प्लुसत्पत्राणाम् ।

कमलानां रजनिधिरामे मितलोकश्रीर्महमहायते ॥]

रजनीके अवसानपर प्रातः किरणावलिका सस्पर्श पाकर प्रस्फुटित दलोंवाले
कमल ममूहोंकी लोकविजयिनी शोभा सौरभयुक्त होकर सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥

वाडध्वेतिमस्यति थपसु कुडवस्तमगडकं अदर्थ ।

बहुमास्य परं मा ह पुति अणहासिम कुपसु ॥ ५ ॥

[बालोहेतिमस्ये लम्पय गुरदममगडकं अवयव ।

बहुमस्यं वनि मा लसु बुधि वध्दार्थं दृढ ॥]

जरी बालुके द्वारा पडुमिन् बकीवासी गुरद जायते अदिह वसिक दण्ड
पियुवुव बकीरी ईद लो । हे बुधि बहुमस्य वसिके कीतीके हात्तवा सित
मरु लवासी ॥ ५ ॥

बीसत्पट्टसिमपरिसिद्धिमायं पडमं अलङ्करी दिग्घो ।

पच्छ बहुव पदिभा कुडम्भमारो विमङ्गलो ॥ ६ ॥

[विमङ्गलसिद्धिपरिमङ्गला अयं अलङ्करी ।

पच्छदण्ड गृहीता बहुममारो विमङ्गल ॥]

बहुमे बहुमे हो एक हातये बीर मि वयवालयवसे अलङ्करी हो है
बादमें दुर्पसिद्धि बहुमिन्गलो मार अलङ्करी ॥ ६ ॥

पमिद्धिसि तम्स पासं सुगति मा गुरम बह्वद विमङ्गो ।

दुख दुख मिम वन्निवार को पेच्छर सुई वे ॥ ७ ॥

[वन्निवार तस्य कर्षं सुगति मा लाल्य कर्षं वृषां ।

दुखे दुग्गमि वन्निवारों का जेले दुख वे ॥]

हे सुगति वरुके पास का बकीरी, दुखी बीमवार अवीर्य नहीं है
अन्धमासे बीर वन्निवार लो । दुखमें दुखमें लाल्य वन्निवारमें दुग्गमा
दुग्गमा ईदनेमें क्या कर्म होमा ? ॥ ७ ॥

अर अर अर अर ममि पट्टामवसधिभो कोमो ।

तह वि बहा गामपिक्कवस्स वधमे बह्वर सिद्धि ॥ ८ ॥

[वरि सिद्धि सिद्धां गाम गान्धमि वधमेकवसिद्धि कोम ।

वधमि वल्लापामकील्लवस्स बहुमे वरुके वरि ॥]

हे मासी वरुकेमें वाजसिद्धि वन्निवारों वरि सिद्ध हो हो हो, वधमि वल्ल-
वापकी दुग्गमे दुग्गमी बीर नेरी वरि वधमेक वरु वरी है ॥ ८ ॥

गोई व विसरुद्धिम विम्वरकुहरी व सतिवसुवधिम ।

गोदण्डदिम गोडु व तीम वधमे सुह विमोप ॥ ९ ॥

[गृहमिव वित्तरहित निर्झरकुहरमिव सलिलशून्यम् ।

गोधनरहित गोष्ठमिव तस्या वदन तव वियोगे ॥]

तुम्हारे विरहमें उसका मुख वित्तरहित (निर्धन) गृहकी भाँति सलिल-
शून्य निर्झरगह्वरकी भाँति अथवा गोधनरहित गोष्ठ की भाँति प्रतीत हो
रहा है ॥ ९ ॥

तुह दंसणेण जणिओ इमीअ लज्जाउलाइ अणुराओ ।

दुग्गाअमणोरहो विअ द्विअअ चिचअ जाइ परिणामं ॥ १० ॥

[तव दर्शनेन जनितोऽस्या लज्जालुकाया अनुराग ।

दुर्गतमनोरथ इव हृदय एव याति परिणामम् ॥]

तुम्हारे दर्शनमें उत्पन्न अनुराग, दरिद्रके मनोरथकी भाँति उस लज्जाशीलके
हृदयमें ही समाप्त हो जाता है ॥ १० ॥

जं तणुआअइ सा तुह कण्ण किं जेण पुच्छसि हसन्तो ।

अह गिम्हे मइ पअई एव्व भणिऊण ओरुण्णा ॥ ११ ॥

[या तनूयते सा तव कृतेन किं येन पृच्छसि हसन् ।

असौ ग्रीष्मे मम प्रकृतिरिति भणित्वा वरुदिता ॥]

जो रमणी ही कृश हो जाती है, वह क्या तुम्हारे लिए वैसी होती है ?
उसी कारण क्या तुम मेरी कृशता के बारे में हँसकर पूछ रहे हो ? 'ग्रीष्मकाल
में कृश होना मेरी प्रकृति है' कहकर वह रोने लगी ॥ ११ ॥

वण्णक्कमरहिअस्स वि एस गुणो णवरि चित्तकम्मस्स ।

णिमिसं पि जं ण मुञ्चइ पिओ जणो गाढमुवऊढो ॥ १२ ॥

[वर्णक्रमरहितस्याप्येष गुण केवल चित्तकर्मण ।

निमिषमपि यन्न मुञ्चति प्रियो जनो गाढमुपगूढ ॥]

वर्ण (रङ्ग) विन्यासरहित केवल आलेख्य कर्मका यह गुण दिखायी
पड़ता है कि गाढ़भावसे आलिङ्गित प्रियजन प्रियाको क्षणभरके लिए भी
छोड़ते नहीं ॥ १२ ॥

अविहत्तसंधिवन्धं पदमरसुव्वमेअपाणलोदिल्लो ।

उव्वेत्तिउं ण आणह खण्डइ कलियामुहं ममरो ॥ १३ ॥

[अविभक्तसंधिवन्ध प्रथमरसोद्देष्टवानलुब्धः ।

उद्देहितु न जानाति खण्डयति कलिकामुख अमर ॥]

उसे देख पाओगी'—कार्यपर्यालोचनामें तो यह करने योग्य है, किन्तु यह प्रेम पय नहीं है ॥ १० ॥

एकह्रमओ दिह्ठीअ मइअ तह पुलइओ सभहाए ।

पियजाअस्स जह वणुं पडिअं वाहस्स हत्थाओ ॥ १८ ॥

[एकाकी मृगो दृष्ट्वा मृग्या तथा प्रलोकित सत्पुण्या ।

प्रियजायस्य यथा धनु पतित व्याधस्य हस्तात् ॥]

व्याधका याण अपने प्रति उद्यन देखकर मृगीने इस प्रकार सत्पुण्या नेत्रसे एकाकी मृगकी ओर देखा कि अपनी पत्नीमें अनुरक्त चित्रवाले व्याधके हाथसे धनुष टूट पड़ा ॥ १८ ॥

गलिणीसु भमसि परिमलसि सत्तलं मालइं पि णो मुअसि ।

तरलत्तणं तुइ अहो महुअर जइ पाडला हरइ ॥ १९ ॥

[नलिनीषु भ्रमसि परिमृद्गासि सत्तलां मालतीमपि नो मुञ्चसि ।

सरलत्वं तवाहो मधुकर यदि पाटला हरति ॥]

हे भ्रमर, तुम नलिनीयोंके निकट उड़ते फिरते हो । नवमालिकाका मर्दन भी करते हो और मालतीको भी छोड़ते नहीं, अब पाटल पुष्प यदि तुम्हारी यह चित्तचञ्चलता हरणकर सकती ॥ १९ ॥

दो अङ्गुलअकवालअपिणद्धसविसेसणीलकञ्जुइआ ।

दावेइ थणत्थलवणिणअं च तरुणी जुअजण्णणं ॥ २० ॥

[द्व्यङ्गुलककपाटविनद्धसविशेषनीलकञ्जुकिका ।

दर्शयति स्तनस्थलवर्णिकामिष तरुणी युवजनेभ्यः]

दो अँगुली परिमित अवकाशयुक्त, विशेषत नीले रंगकी कञ्जुकिका पहनकर तरुणी मानो युवकोंको स्तनस्थलसवधमें आदर्श प्रदर्शित कर रही है ॥

रक्खेइ पुत्तअं मत्थएण ओच्छोअअं पडिच्छन्ती ।

अंसुहिं पडिअघरिणी ओल्लिज्जन्तं ण लक्खेइ ॥ २१ ॥

[रक्षति पुत्रक मस्तकेन पटलग्रान्तोदकं प्रतीच्छन्ती ।

अश्रुभिः पथिकगृहिणी आर्द्राभिश्रन्तं न लक्षयति ॥]

अपने दूतसे गिरनेवाले जलको अपने मस्तकपर सहनकर पथिककी गृहिणी पुत्रकी रक्षा कर रही है, किन्तु वह जो अपने अश्रुधारसे उसे सींचे देरही है इस ओर उसने लक्ष्य नहीं किया ॥ २१ ॥

साय नमसि पदिमा अतारं कपीसर्पिण्यारं ।

पञ्चम्यां समष्टा विन्धिता इदमर्थं च सुदार्ढ्यं २१ ॥

[अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि अरि]

अथवाहामि सन्मन्त्रः विष्णुः इति वाचमिहः ॥ ॥

छात्रों में अधिक आलोचनाओं की शुरुआत के तुरन्त निवारक विधि का प्रयोग करने पर बहुत ही लाभकारी निष्कर्षों के (सफलता) सुझावों के तहत तत्काल प्रतिक्रिया प्रदान की जा सकती है। आलोचना का और अधिक प्रयोग करने की आवश्यकता है। आलोचना का और अधिक प्रयोग करने की आवश्यकता है। आलोचना का और अधिक प्रयोग करने की आवश्यकता है।

अथर्वसूक्तसंस्कृतम् ॥ अथर्वसूक्तसंस्कृतम् ॥

कादम्बरशक्तिम् अथै समुत्ससम्पत्तिं हर दम्पत्यम् ॥ १३ ॥

[आत्मनःकल्याणं कुरुते सर्वेषां कल्याणम् ।

॥ १ ॥

योग आले-काले रहते हैं। इन कारण आत्मन्धार में एक (एक) पुनः दर्श बाहर बाहुने समाप्तो वह प्रकृत्यो जीये जीवन की रहे हैं (दन्तः एक होनेपर की प्रविष्टि जीतले अनुप्राणित है) ॥ २३ ॥

महाराष्ट्र राज्य सरकार संविधान संशोधन अधिनियम १९७१

उपनिषद्सु उपनिषत्प्रवृत्तिरिति ॥ २५ ॥

[सुखदुःखरीत्युदात्तात्। परिभाषा कल्पक तात्पर्यवत् ।

सत्यमेव जयते ॥

देवी रामजी अपने मुखाग्रकी भाषामें संनिवृत्त राजकुमारकी यथेष्ट
आशयविशेषे दृष्टी नीचे लक्ष्मी हृद भूमिहस्ता यथेष्ट आशय वदत
कर रही है ॥ ११ ॥

छद्म लेखकसि सा विदुषः सीमा वि छद्म कस्तस पैसिण्य विदुषः ।

ब्रह्म बोधय वि शमनं विम विमलतर व्योम् आनन्दम् ॥ २५ ॥

कथा सैवसि भा कथा कथासि कथा करवै मेरिना रीति ।

ब्रह्मा ब्रह्मणि ब्रह्मैव निर्गुणः ।
ब्रह्मैव तेन जगत्सृज्यते ।

बहु एकत्रीकरण के द्वारा कभी अकार पैदा नहीं, एवं उच्च ध्रुवके प्रति
अब एकत्रीके भी कभी अकार उत्पन्न निया मिलने एक ही बात दोहराव
उत्पन्न निया ॥ ५५ ॥

नामस्त्रिभुवपरिसौष्ठवः कुम्भारूपचलनमहामहर्षिणेन ।

मोहम्यकर्मभक्तसमूहः मिगह मा नह वि विमिहिसि ॥ १५ ॥

[स्वरात्रात्रिकापरिदोषण निकृष्टप्रकरण सुलभसक्रेषु ।

सौभाग्यकनककपट्ट ग्रीष्म मा कथमपि सीणो भविष्यति ॥]

हे ग्रीष्म, तुम छोटी धापिकाको सुमानेवाले हो, निकृष्टप्रकरणके पक्षोंके
उपादक हो, तुम्हारी उपस्थितिमें मङ्गेतम्भान सुलभ होता है एवं तुम
सौभाग्यसुवर्णाकी कमौटी मरफ हो, तुम कभी सीण मत होमा ॥ २१ ॥

दुस्तिस्त्रिभ्रवरक्षणपरिदोषणार्द्धं चिद्रेमि पन्थरे तावा ।

जा तिलमेत्तं वट्टसि मरगय का तुज्ज सुल्लकहा ॥ २२ ॥

[दुग्धितरवपरीचकैर्दृष्टोऽमि प्रतरे तावत् ।

पावत्तिलमात्र यत्तमे मरकत का तय मूदयकथा ॥]

हे मरकत, अतःवत् रसपरीचक तुमको तयतक पाथरपर धिसेंगे, जबतक
तुम तिलमरमें पर्यवमित्त होओगे । अपने मूदय निर्धारणकी बात तो
दूर ही रही ॥ २३ ॥

जह चिन्तेइ परिअणो आसङ्कइ जह थ तस्स पडिअत्तां ।

चालेण वि गामणिणन्दणेण नह रक्खित्ता पल्ली ॥ २४ ॥

[यथा चिन्तयति परिजन आशङ्कते यथा च तस्य प्रतिपद्य ।

चालेनापि ग्रामजीनन्दनेन तथा रक्षिता पल्ली ॥]

उमके परिजन त्रिमप्रकार चिन्तानुर हुए थे एवं उमके शत्रुओंने त्रिम
प्रकारकी आशङ्का प्रकट की थी—ग्रामनायकका पुत्र बालक होनेपर भी गाँवकी
उसीप्रकार रक्षाकरनेमें समर्थ हुआ था ॥ २५ ॥

अण्णोसु पहिम ! पुच्छसु वाहयपुत्तेसु पुसिअचम्माहं ।

अम्हं वाहजुआणो हरिणोसु घणुं ण गामेइ ॥ २६ ॥

[अन्येषु पथिक पृच्छ व्याघकपुत्रेषु वृषभघनाणि ।

अस्माक व्याघयुवा हरिणेषु घनुर्न नामयति ॥]

हे पथिक, तुम अन्यान्य व्याघ्रवपुत्रोंके यहाँ वृषभ नानक विग्रहविशेषके
घनमें सम्यग्धर्में रहो । हमारे व्याघ्रयुवा हरिणोंके ऊपर घनुप नहीं छोड़ते ॥

गमवहुवेहव्वअरो पुत्तो मे एक्ककण्डविणिवाहं ।

तइ सोण्हाइ पुल्लओ जह कण्डकरण्डमं वदहं ॥ २७ ॥

[गजवधूर्ध्वगम्यकर पुत्रो मे एककाण्डविनिपाती ।

तथा स्तुपया प्रलोकितो यथा काण्डममूह वहति ॥]

कैला पुनः पहले केवल पुनः प्राप्त अन्तर्गत गणकपुत्रीकी विनयकर कथा
 ५५ विष्णु हृदय (पत्नी) द्वारा हृदयकार रचना जाता है कि अथ पद
 यत्नीकी केवल होता है ५५ ५५

विष्णुवद्व्याख्या पत्नी मा कुण्डल वामणी सदा ।

यथाशक्तिविश्वो ब्रह्म ब्रह्म वि सुब्रह्म ता अपि विभं सुब्रह्म ॥ ३१ ॥

[किन्तु परोक्षव्यवहारं पट्टी भा ज्योतु प्राप्नोति स्थितिः ।

॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टादशोऽध्यायः ॥

आत्मप्राप्ति का ही बीजमक है विष्णुस्मृतिकार ब्रह्मण्यक किन्तु अन्वेषण रात्र
 य कहते हैं आत्मप्राप्ति का ही बीजमक है, यदि आत्म बीज कावेर बह किन्ती
 प्रकर रात्र के ही आत्मप्राप्ति है ॥ ३.३ ॥

जन्मस्थाने मरणं पुनः पृथगेव यमसिंह ।

तद्विषयेऽपि तद्गुरुः तद्गुरुः तद्गुरुः ॥ ३२ ॥

[निरुपपत्तिः निरुपपन्नः इति । अतः निरुपपत्तिः निरुपपन्नः ।]

अथ यथा यथा त्वं न कुरुते तथा कुरुष्वसि ।]

हे—एक प्रश्न उठाना चाहता हूँ कि क्या नाम केवल ही है? इसके अतिरिक्त क्या है ?

समुद्रमण्डपसिन्धुपय पञ्चागम्योदिय पिबन्ममि ।

बौद्धमार्गस्य दुःखसमुत्पत्तौ शोभन्वार्थं कथं ॥ १३ ॥

[अङ्गुलमालापरिकल्पनायाः सत्यापनार्थं विषयम् ।

विषयसंकाय : १४५५४ : बी.कॉम. : भाग-३ :

[illegible]

महामण्डित्वात् सर्वं सद्वृत्तं सर्वं विमलं सर्वम् ।

रिसामुई पुतिन्ही सकलपुण्यं धम्म भव्यं ॥ ३४ ॥

[अद्युमतिक्रिया एवं उष्ण हृदय विनियोगकृतोपपत्ति ।

इन्धिया: इन्डिया इन्डिया इन्डिया

मनुष्यविद्या द्वारा प्रकाशित विषयसमूह के फुले हुए खोपड़े मुक्त तुल्यको देना
ईसाईशास्त्र के अन्तर्गत विद्यार्थी वर्षांतिक प्रविष्टिपत्रों द्वारा प्रकाशित विषयसमूह
को पढ़ी है । ३३ ।

Age Group	Percentage of Respondents
18-29	85%
30-49	80%
50-69	75%
70-89	70%
90+	65%

धण्णा वसन्ति णीसङ्कमोहणे वहलपत्तलवहम्मि ।
 वाअन्दोलणओणविअवेणुगहणे गिरिगामे ॥ ३५ ॥
 [धन्या वसन्ति निःशङ्कमोहने वहलपत्तलवृत्तौ ।
 वातान्दोलनावनामितवेणुगहने गिरिग्रामे ॥]

जिस ग्राममें घृक्षकी वहलपत्रराजिद्वारा आवेष्टित स्थान है, जो वायुके झोंकेमें भवनमित वेणुवन द्वारा गहन है एवं जहाँ निःशङ्करूपसे सुरतसुख अनुभूत हो सकता है—ऐसे गिरिग्राममें धन्यपुरुष ही निवास करते हैं ॥ ३५ ॥

पप्फुल्लघणकलम्बा णिद्धोअसिलाअला मुहयमोरा ।
 पसरन्तोज्झरमुहला ओसाहन्ते गिरिगामा ॥ ३६ ॥
 [प्रोफुल्लघनकदम्बा निर्धौत शिलातला मुदितमयूरा ।
 प्रसरन्तिर्झरमुखरा उत्साहयन्ति गिरिग्रामा ॥]

जहाँपर घनसन्निविष्ट कदम्बवृक्ष पुष्पविकाससे उत्फुल्ल, शिलातलसमूह-
 कलद्वारा घौत, मयूरकुलभानग्निदत्त एवं जो झरते हुए निर्झरसमूहसे मुखरित
 है—वे गिरिग्राम ही मनुष्यको प्रोत्साहित करते हैं ॥ ३६ ॥

तह परिमलिआ गोवेण तेण हत्थं पि जाण ओल्लेइ ।
 स च्चिय घेणू एहिं पेच्छसु कुडदोहिणी जाया ॥ ३७ ॥
 [तथा परिमलिता गोपेन तेन हस्तमपि पा नार्द्रयति ।
 सैव धेनुरिदानीं प्रेष्य कुटदोहिणी जाता ॥]

देखो, जो धेनु पहले उम गोपद्वारा उम प्रकार दुधे जाकर भी उसके
 हाथको भी गीला नहीं कर पाती थी, वही वृद्धा भरकर दूध दे रही है ॥ ३७ ॥

धवलो जियइ तुह कए धवलस्स कए जिअन्ति गिट्ठीओ ।
 जिअ तम्ये अम्ह चि जीचिएण गोहं तुमाअत्त ॥ ३८ ॥
 [धवलो जीवति तव कृते धवलस्य कृते जीवन्ति गृध्र ।
 जीव हे गौ अस्माकमपि जीवितेन गोष्ठ स्वदायत्तम् ॥]

हे धेनु, तुम्हारे ही सुखके लिए गोरा बैल प्राणधारण करता है एवं
 एकवार प्रसूता धेनुएँ भी उनके सुखके लिए जीवित हैं । तुम बची रहो, अपने
 जीवनद्वारा हमने हमलोगोंके गोष्ठको अपने आधीन कर रखा है ॥ ३८ ॥

अग्वाइ छिवइ घुम्वइ ठेचइ हियअम्मि जणिअरोमञ्जो ।
 जाआकवोलसरिसं पेच्छह पहियो महअपुप्फं ॥ ३९ ॥

[आश्रितमि तृणमि पुष्पमि रत्नमपमि इत्ये त्रिविधरोमाञ्च ।
 आश्रितपीठकदम्बं वरपतं चरित्री मधुसुन्दरम् ॥]

देखो चरित्र कावाले करोडतारक मधुसुन्दरको वाक्य कमी हुये तैय
 रहा है दुराहा है कभी हुले पून रहा है पूर्व कभी रोमाञ्चिन आगिरी हुने
 अपने पचासवकत भाग्य कर रहा है ॥ ३१ ॥

उभ सीतिञ्चर माई मुर्जपक्षिपीम कटमङ्गलम् ।
 ओम्हरपापसञ्जामुपम सीसं वनमपम ॥ ३० ॥
 [कन्दार्पितिलो मोने मुञ्जङ्गली वरकमपमम् ।
 विरतपामपमपुकेव सीसं वनमपमम् ॥]

देखो कंजली हुनी विरिच्यरमें कट कर्जपचाको विरतपी चारा कनकम
 वली कने वनकको कर्ज कनेकी पैदा कर रहा है ॥ ३० ॥

कमलं मुष्णत मधुमर विहङ्गहृत्पार्थं पम्पकोडेय ।
 कन्दोपकङ्कशूर्जं पामरो एव विविद्धम आश्रितसि ॥ ३१ ॥
 [कर्जं मुष्णतपुष्प वनमपिचपां पम्पकोडेय ।
 कन्दोपकङ्कशूर्जं पामा इव रङ्गा आश्रित ॥]

हे मधुमर, कमलको कोकम गने हुए वनमपम (वेंच) की कम्पके
 हुये पुष्प ही पामर विहङ्गिह कङ्क-लर्जकी सीति हुने एव पम्प कोडेये ॥

विहङ्गमै मङ्गलपद्ममहिं वरपोषविष्णवपम्पम् ।
 सोई व विष्णमो कम्प हान्तावदुमाह रोमङ्गो ॥ ३२ ॥
 [वीरकने मङ्गलपामिपविर्जलोपवकमपमम् ।
 ओम्पमि विर्जल वरपत विष्णव-पुष्पमा रोमङ्गम् ॥]

देखो, मङ्गलपामिपमहिं काय लोके रहनेका वरके वामोडेकना काय
 देवताकी पापी कपुष्प रोमङ्ग की कैके वाममपम विर विर्जल हो रहा है ॥

मन्त्रे कम्पपम्पता पामपमविष्णवमङ्गलपद्मम् ।
 रोहि हृत्पामेहिं कर्म वसन्ति म वेनसङ्कटम् ॥ ३३ ॥
 [मन्त्रे कम्पपम्पता कम्पपामिपमाम्पमेहिङ्गम् ।
 रोहिपमि कर्म वसन्ति मा वेनमपिङ्गम् ॥]

काय कहा है कि काय मङ्गलपम्पके काय ही काय वेन विङ्ग कङ्क की
 मी कम्प विहङ्गके मङ्गलपामे कम्पम वेन कपहाक कर ली है ॥ ३३ ॥

उभयवचउत्थिमङ्गलहोन्तविओअसविसेसल्लगेहिं ।

तीअ वरस्स अ सेअंसुपहिं रुण्णं व हत्थेहिं ॥ ४४ ॥

[उपगतचतुर्थीमङ्गलमविप्यद्वियोगसविशेषलप्राभ्याम् ।

तस्या वरस्य च स्वेदाश्रुमी रुदितमिव हस्ताभ्याम् ॥]

उपस्थित चतुर्थी मङ्गलके दिन भावीवियोगके मयसे विशेषरूपसे सञ्छिष्ट
वर्षभूके दोनों हाथ जैसे पसीनेरूपी आँसू बहाकर रोरहे हैं ॥ ४४ ॥

ण अ दिट्ठि णेइ मुहं ण अ छिविअं देइ णालवइ किं पि ।

तह वि हु किं पि रहस्सं णववहुसङ्गो पिओ होइ ॥ ४५ ॥

[न च इष्टि नयति मुख न च स्पृष्टु इवाति नालपति किमपि ।

तथापि खलु किमपि रहस्य नववधूसङ्ग प्रियो भवति ॥]

नवोदा स्वामीके मुखकी ओर इष्टि नहीं डालती । अपनेको छूने भी नहीं
देती और कुछ बोलती भी नहीं सब भी नवोदा जो लोगोंको प्यारी लगती है,
इसका अपूर्व रहस्य है ॥ ४५ ॥

अलिअपसुत्तवलन्तम्मि णववरे णववहुअ वेवन्तो ।

संवेल्लिओरुत्तंजमिअवत्थगण्ठि गओ हत्थो ॥ ४६ ॥

[अलीकप्रसुप्तचलमाने नववरे नववध्वा वेपमान ।

सवेष्टितोरुत्तयमितवस्त्रग्रन्थि गतो हस्त ॥]

नये वरके झुम्झूट सोकर करघट बद्धने पर नवोदाका हाथ काँपते-काँपते
अन्योन्य सरलेपित उरुयुगलद्वारा नियमित वस्त्रग्रन्थिकी ओर बढ़ जाता है ॥

पुच्छिज्जन्ती ण भणइ गहिआ पप्फुरइ चुम्बिआ रुअइ ।

तुण्हिक्का णववहुआ कआवराहेण उवऊढा ॥ ४७ ॥

[पृष्ठयमाना न भणति गृहीता प्रस्फुरति चुम्बिता रोदिति ।

तूष्णीका नववधू कृतापराधेनोपगृढा ॥]

कृतापराध मये वरद्वारा आलिङ्गित हो कर निर्वाक् नवोदा पृष्टी जानेपर
जवाब नहीं देती, हाथद्वारा पकड़ी जानेपर रोती वा ऊपर-नीचे करती रहती है
एव तूमी जानेपर रोती है ॥ ४७ ॥

तत्तो चिअ होन्ति कद्दा धिअसन्ति तहिं तहिं समप्पन्ति ।

किं मण्णे माउच्छा पक्कज्जुआणो इमो गामो ॥ ४८ ॥

हमलोग तो, लेकिन, स्थामन्युत, पीनत्वविहीन एव उन्नतिमे वञ्चित
वृद्धाके स्तनकी भाँति केवल उदरपोषण के लिए यत्नशील हैं ॥ ५२ ॥

पञ्चूसागम रक्षिअदेह पिआलोअ लोअणाणन्द ।

अण्णत्त खविअसव्वरि णहभूसण दिणवइ णमो दे ॥ ५३ ॥

[प्रत्यूपागत रक्तदेह मियालोक लोचनामन्द ।

अन्यत्र अपितशर्वरीक नमोभूषण दिनपते नमस्ते ॥]

हे सूर्य, तुम्हें नमस्कार करती हूँ—तुम प्रातःकाल आते हो, तुम्हारा
शरीर रक्तिम है, तुम्हारा प्रकाश प्रिय लगता है, तुम आनन्दविधायक हो,
तुमने दूसरे देशमें रात बिताया है एव तुम आज्ञादा मण्डलके भूषण हो ॥ ५३ ॥

विवरीअसुरअलेहल पुच्छसि मह कीस गवमसंभूइ ।

ओअत्ते कुम्ममुहे जललवकणिआ वि किं ठाइ ॥ ५४ ॥

[विपरीतसुरलम्पट पृच्छामि मम किमिति गर्भसंभूतिम् ।

अपवृत्ते कुम्ममुखे जललवकणिकापि किं तिष्ठति ॥]

हे विपरीत-सुरत-लुब्ध, मेरे गर्भके विषयमें क्यों पूछते हो ? नीचे की
ओर मुख अवनत होने पर भी क्या कुक्षमें जलविन्दु-कण भी टिक
सकता है ? ॥ ५४ ॥

अच्चासण्णविवाहे समं जसोआइं तरुणगोवीहिं ।

वहन्ते महुमदणे संवन्धा णिण्णुविज्जन्ति ॥ ५५ ॥

[अत्यासन्नविवाहे सम यशोदया तरुणगोपीभि ।

वर्धमाने मधुमयने सवन्धा निह्नूयन्ते ॥]

मधुसूदनकी वय वृद्धि पर, जब उनकी विवाह समय एकदम निकट आ
गया, तब तरुण गोपियोंने यशोदासे अपना उनका सम्बन्ध छिपा लिया ॥ ५५ ॥

जं जं आलिहइ मणो आसावट्टीहिं द्विअअफलअम्मि ।

त तं यालो व्व विही णिहुयं हसिऊण पम्हुसइ ॥ ५६ ॥

[यद्यदालिङ्गति मन आसावर्तिकाभिर्हृदयफलके

तत्तदाल इव विधिर्निभृत हसित्वा प्रोञ्छति ॥]

मन आशारूप सूलिकासे हृदयरूप फलकपर जो जो चित्र अंकित कर
रहा है, यन्त्रों की भाँति विधि सद्गोपनसे वे सारे चित्र पोंछते जा रहे हैं ॥ ५६ ॥

मनुहुता करहंसो समस्तमहापुण्य पुण्यदिमहम्मि ।

पीयसहृदिसङ्गम पङ्क्तिं तुह धर्मिणो बलये ॥ ५३ ॥

[मनुहुता करहंसो समस्तमहापुण्य पुण्यदिमहम्मि ।

पिपीयाहृदिसङ्गम पङ्क्तिं तुह धर्मिणो बलये ॥]

हे करहंसकार्द्वै, धर्मिणले तिम तुम्हाते काय धर्मार्थ मनुहुत हुआ है । मेरे पण्ड पिपीया (पिपी एवं समी) के लीनोच्छे तुम बलये हुए ॥ ५३ ॥—तुम्हारे पण्ड की कल्पना कर रही हूँ ॥ ५३ ॥

दूरन्तरिपि विपिप कइ वि विधत्तार्हं मज्झ पञ्चवारं ।

दिमर्षं वयं तं व समं वज्झ वि अविचारिणं मम ॥ ५४ ॥

[दूरन्तरिपिपि विपिप कइमपि निवर्त्तिते मम वरने ।

इदं पुनस्तौ व सममप्यविचारिणं मम ॥]

मिदमले दूरैव लके लयेन विने किन्ही प्यार वरनीये हो केर विपि, किन्तु मेरा इदम लकी भी उहके लक-लक लयाव करतें दूर रहा है ॥ ५४ ॥

तस्स वहाकप्परय सहामन्वयसमासरिमहोवे ।

मनुहान्तोमप्यमिपि वज्झम कि पचञ्चिदिति ॥ ५५ ॥

[तस्स वहाकप्परये सहामन्वयसमासरिमहोवे ।

मनुहान्तोमप्यमिपि वज्झम कि पचञ्चिदिति ॥]

तुम उहकी मम लकते ही रीमन्वित्र हो जाती हो, उहके लकीये तुम्हारे ही केर लीव लीटी हो एवं उके लकले ईश्वर कीं लकते ही—वाकिन्वित्र होकर तुम क्या करीमते ? ॥ ५५ ॥

मरुत्तिसिप्यीहसहान्यजसिमपकपञ्चविहृषयस्पर्द्धा ।

तस्सिहरेसु विहंम वइ कइ पि कइमि संठार्हं ॥ ५६ ॥

[मरुत्तिसिप्यीहसहान्यजसिमपकपञ्चविहृषयस्पर्द्धा ।

तस्सिहरेसु विहंम वइ कइमि संठार्हं ॥]

मरुते मरुते कुंहे हुए लीकलतामलने परमार्थि स्वर्णिम ॥ लकने मनुहुतके लमिप कर तस्सिहरीपर लकी किन्वित्रार रमान मल का रहे है ॥ ५६ ॥

मरुत्तिसिप्यमप्यपिहमिपि अं व धर्ममा सि सविसेसं ।

मसर मरुत्तिसिपि वज्झसिप्यपि सि मम माह मनुहुदिति ॥ ५७ ॥

[अघरमधुपानलालसया यच्च रमितोऽसि सविशेषम् ।

असती अलज्जाशीला बहुशिक्षितेति मा नाथ मस्याः ॥]

हे नाथ, अपने अघरमधुपानकी लालसासे तुम जो विशिष्टभावसे रमित हुए हो—इस कारण मुझे असती, लज्जाविहीना एवं बहुविधशिक्षिता मत समझना ॥ ६१ ॥

स्त्राणेण अ पाणेण अ तद् गहिओ मण्डलो अढअणाए ।

जह जार अहिणन्दइ भुक्कइ घरसामिण एन्ते ॥ ६२ ॥

[स्त्रादनेन च पानेन च तथा गृहीतो मण्डलोऽसत्या ।

यथा जारमभिनन्दति भुङ्कति गृहस्वामिन्येति ॥]

स्वेच्छावारिणीने आहार एवं पानद्वारा कुत्तेको इस प्रकार वशीभूत कर लिया है कि वह जारको आते देख अभिनन्दन करता है और गृहस्वामीको आते देख भूँक उठता है ॥ ६२ ॥

कण्डन्तेण अकण्ड पल्लीमज्झमि विवडकोअण्डं ।

पइमरणाहिं वि अहिअं चाहेण रुआचिआ अत्ता ॥ ६३ ॥

[कण्डूयता अकाण्डे पल्लीमज्जे विकटकोण्डम् ।

पतिमरणादप्यधिक व्याधेन रोदिता श्वश्रूः ॥]

गाँवके बीचोबीच व्याध अनायास ही अपने भारसे युक्त धनुषको तनुकरने-की चेष्टाकर सासको पक्षिके मरनेकी अपेक्षा अधिक रुलाया है ॥ ६३ ॥

अम्हे उज्जुअसीला पिओ वि पिअसहि विआरपरिओसो ।

ण हु अण्णा का वि गई वाहोहा कइ पुसिज्जन्तु ॥ ६४ ॥

[वय ऋजुकशीला प्रियोऽपि प्रियसखि विकारपरितोष ।

न त्रयवन्त्या कापि गतिर्याप्नोषाः कथं प्रोच्छ्रयन्ताम् ॥]

अरी प्यारी सखी हम मरणशील हैं, फिर भी प्रियतमके हावभावादि विकारोंसे सन्तुष्ट रहते हैं । कोई दूसरा उपाय नहीं है, किस प्रकार चाप-प्रवाहको पोंछ डालें ॥ ६४ ॥

धवलो सि जइ वि सुन्दर तद् वि तुप्प मज्झ रत्तिअं द्विअं ।

राअमरिण वि द्विअप्प सुहअ णिदित्तो ण रत्तो सि ॥ ६५ ॥

[धवलोऽसि यद्यपि सुन्दर तथापि स्वया मम रक्षित हृदयम् ।

रागमृतेऽपि हृदये सुभग निहितो न रक्तोऽसि ॥]

हे सुन्दर तुम नीचे हो फिर भी तुमने मेरी हृदयको सम्भालित कर
 दिया है और हे सुन्दर मेरे सम्पूर्ण हृदयमें रहकर भी तुम छिपित नहीं हो
 रहे हो ॥ १५ ॥

बहुपुङ्खादमविमलमिन्दुमयारसेन सिचयेदस्त ॥

कीरस्त मन्त्रात्मनो धन्यार्थं ममह ममरुद्धं ॥ १६ ॥

[बहुपुङ्खादमविमलमिन्दुमयारसेन सिचयेदस्त ॥

कीरस्त मन्त्रात्मनो धन्यार्थं ममह ममरुद्धं ॥]

क्यावेकि काकातले भी हूँ कामने रसज्ञता निन्देह कोकालीने
 मर्ममें कमल जन्मल जन्मल हूँ रहा है ॥ १६ ॥

पत्य विमलार मत्ता पत्य माई पत्य परिमलो सुमलो ॥

पत्निय एतीकप्यम मा मई सुमने विमलविमि ॥ १७ ॥

[पत्य विमलार मत्ता पत्य माई पत्य परिमलो सुमलो ॥

पत्निय एतीकप्यम मा मई सुमने विमलविमि ॥]

बहीर काय विमलकायले कोकली मय राखी है कर्ण में नीर
 कर्ण करे परिजन कोके है । जो रहीली रोके मारे हूँ राखी, तुम क्यों
 मेरी जन्मा मैं निमग्न न हो जाया ॥ १७ ॥

परिमोक्षमुन्मार्गं दुरप्यसु कश्चित् कार्त्तं लोचनार्त्तं ॥

तार्त्तं विमल कम विरौ कार्त्तमिन्मार्त्तं कीरुत्तं ॥ १८ ॥

[परिमोक्षमुन्मार्गं दुरप्यसु कश्चित् कार्त्तं लोचनार्त्तं ॥

तार्त्तं विमल कम विरौ कार्त्तमिन्मार्त्तं कीरुत्तं ॥]

अदिगर्त्तं दुरप्यसु मीनकाले परिमोक्षमुन्मार्त्तं कश्चित् कार्त्तं
 निरुद्धादुर्त्तं कर्त्तं दुरप्यसु मीनकाले परिमल होवेके कश्चित् कश्चित् मीन
 होती है ॥ १८ ॥

मर्त्तं विमल मन्त्रात्मनो दुरप्य पीपुष्यामर्त्तं धन्यार्थं ॥

कश्चित् ममह करे मनुष्यामर्त्तं कश्चित् कश्चित् ॥ १९ ॥

[मर्त्तं विमल मन्त्रात्मनो दुरप्य पीपुष्यामर्त्तं धन्यार्थं ॥

कश्चित् ममह करे मनुष्यामर्त्तं कश्चित् कश्चित् ॥]

कौन कर्त्त कश्चित् कश्चित् कौन मर्त्त न कर्त्त कौन कश्चित् कश्चित् कश्चित्
 कर्त्त कौन कश्चित् कश्चित् कौन कश्चित् कौन कश्चित् ॥ १९ ॥

एक्रेण वि चडयीअङ्कुरेण सअलवणराइमज्झम्मि ।
तह तेण कओ अण्णा जइ सेसदुमा तले तस्स ॥ ७० ॥

[एकेनापिचटयीआङ्कुरेण सकलवनराजिमध्ये ।
तथा तेन कृत आत्मा यथा शेषद्रुमास्त्वले तस्य ॥]

मारे वनों में घटवृक्षके उस एक बीजाङ्कुरने अपनेको पेमा कर ढाला है कि
अवशिष्ट द्रुम उसके नीचे पड़े हुए हैं ॥ ७० ॥

जे जे गुणिणो जे जे अ चाइणो जे विडह्विण्णाणा ।
दारिद्र्य रे विअक्खण ताणँ तुमं साणुराओ सि ॥ ७१ ॥

[ये ये गुणिनो ये ये च यस्यागिनो ये विदग्धविज्ञाना ।
दारिद्र्य रे विचक्षण तेषां त्व साणुरागमसि ॥]

जो जो गुणी हैं, जो-जो दाता हैं एव जो जो विज्ञानमें निपुण हैं, अरे
विचक्षणदारिद्र्य, तुम उनके प्रति अनुरक्त हो जाते हो ? ॥ ७१ ॥

जइ कोत्तिओ सि सुन्दर सअलतिहीचंददंसणसुहाणं ।
ता मसिणं मोइज्जन्तकञ्चुअं पेक्खसु मुहं से ॥ ७२ ॥

[यदि कौतुकिकोऽसि सुन्दर सकलतिथिचन्द्रदर्शनसुखानाम् ।
सन्मसृण मोक्ष्यमानकञ्चुकं प्रेक्षस्व मुग्न तस्या ॥]

हे सुन्दर, यदि भारी तिथियोंके चन्द्रको देख आनन्दसम्यन्धी कुतूहल
दूर काना चाहते हो तो धीरे-धीरे कञ्चुक छोलनेके समय परिदृश्यमान उस
नायिकाके मुखदेको देखो ॥ ७२ ॥

समविसमणिच्चिसेसा समन्तओ मन्दमन्दसंभारा ।
अइरा होहिन्ति पहा मणोरहाणं पि दुलह्वा ॥ ७३ ॥

[समविषमनिर्विघ्नोपा समन्ततो मन्द मन्दसंभारा ।
अधिराद्मविष्यन्ति पन्थानो मनोरथानामपि दुलह्वया ॥]

थोड़े ही दिनोंमें सर्वत्र मार्गोंकी यह अवस्था होगी कि समविषमस्थलोंका
पता नहीं चलेगा, एव वहाँ पर आना-जाना भी धीरे धीरे होगा, यहाँतक कि
वह मय मनोरथके चलनेके योग्य भी नहीं रह जायगा ॥ ७३ ॥

अइदीइराहँ बहुए सीसे दीसन्ति वंसवत्ताहं ।
भणिप भणामि अत्ता तुम्हाणँ वि पण्डुरा पुट्ठी ॥ ७४ ॥

११ गा० श०

[कविर्दीर्घादि कथाः शीर्षे दत्तमनो बंधवद्वयम् ।

कविर्दे मन्त्रमि कस्तु पुष्पावमपि गान्धर्व इवम् ॥]

कही छन्द कपल दू कोरे कि बहूक मस्तकपरा बने-बने दीर्घके बने कोरे
विष रते हैं को मैं को बहूँपी कि कानकी पीठ (कृत्तिके कानन) दीर्घरत्नके
विष रती है ॥ १३ ॥

मन्दनकन्दलार्थं कल्पमिश्रार्थं मलिनमदमपिबन्धो ।

कम्पव्यग्रसंग्रहा पुस्तक पद्यवी मियेहस्त ॥ १४ ॥

[कल्पमिश्रमोचयार्थं कम्पवाद्यमानीकवन्दनविर्गता ।

कल्पवाद्यमानीक पुस्तक पद्यवी स्नेहस्त ॥]

हे पुस्तक, कल्पमक ही बर और पुस्तो ही बर छन्द, छन्द को बंधाया एवं
होरेके कल्प मन्त्रमप के स्नेहकी कविर्षी है ॥ १४ ॥

विश्वर कल्पवृक्षिहि अण्वमिच्छिर्न वि तुम्हा लताप ।

तुम्हे अण्वमिच्छिर्न सा बाबा पामर्षीहि वद ॥ १५ ॥

[विन्दन कल्पवृक्षिच्छिर्नपरमिच्छिर्नपि तव बंधवद्वयम् ।

तुम्हे कल्पमिच्छिर्न सा बाबा पामर्षीहि ॥]

पामर्षी किछवस्त दृष्टिके मन्त्रे केवक दृष्टको की केयी है, कही
कल्प वद बाबा मन्त्रमपिर्षी की कानकी किने दृष्ट केवक तुम्हारे बंधवको
कल्पवृक्षिहिता की के रती है ॥ १५ ॥

मद दग्धुप न सञ्जति पुष्टिञ्जली विमस्त बरिध्या ।

कल्पवृक्षुपदिषा मन्त्रमस्त वि दृष्टुमदिश्रीहि ॥ १६ ॥

[ममि कद्दरे न कानकी दृष्टमनी विरल्य नीरवपि ।

कल्पवृक्षुपदिषा वि दृष्टुमदिश्रीहि ॥]

कही कल्पवृक्षमपानी, विरल्यकी बरिधके कल्पमपि दृष्टम कान
कानिष्ठ नहीं होती । कल्पवृक्षमपि (मन्त्रमपि) कल्पवृक्षो दृष्टमपिदिश्री
कान कपोतप ॥ १६ ॥

तुम्हे कल्पमिच्छिर्न पामर्षीपुस्तकमन्त्रमपिदिश्रीहि ।

विश्वरकान्धुप कील सहस्ये पुष्पो पुष्पति ॥ १७ ॥

[कान्धुपमपानी कल्पवृक्षमपिदिश्रीहि ।

विश्वरकान्धुप कील सहस्ये पुष्पो पुष्पति ॥]

अरी मुग्धे, प्रयालाङ्कुर घर्णकी भौंति रक्तिम, अपने हाथसे जो धातुराग
धुल गया है, यह विश्वास न कर तुम पुन दोनों हाथोंको क्यों धो
रही हो ? ॥ ७८ ॥

उभ सिन्धवपव्वसच्छदाइं धुमत्तूलपुञ्जसरिसाइं ।
सोहन्ति सुअणु मुक्कोअभाइं सरण सिअव्माइं ॥ ७९ ॥

[पश्य सैन्धवपर्वतसदृशाणि धुततूलपुञ्जसदृशानि ।
शोभन्ते सुवनु मुक्कोदकानि शरदि सिताभ्राणि ॥]

हे सुवनु, देखो, शरत्में सैन्धवपर्वतकी भौंति प्रतीयमान एवं कश्चित
तूलपुञ्जकी आकृतिविशेषमे मुक्तजल श्वेत मेघ शोभित हो रहे हैं ॥ ७९ ॥

आउच्छन्ति सिरेहिं विचलिपहिं उभ खअडिपहिं णिज्जन्ता ।
णिप्पच्छिमचलितपलोइपहिं महिसा कुड्डाइं ॥ ८० ॥

[आपृच्छन्ति शिरोभिर्विचलितैः पश्य खड्गैर्नयमाना ।
नि पश्चिमवलितप्रलोकितैर्महिषाः कुञ्जान् ॥]

खड्गधारी शौनिकों (मांसविक्रेताओं अथवा कसाइयों) द्वारा ले जाते
हुए बैल विह्वलमस्तक हो नयनोंसे अन्तिम बार मुड़कर देखते हुए कुञ्जोंसे
विदाई ले रहे हैं (अथ कुञ्ज निरापद हो गए हैं ।) ॥ ८० ॥

पुत्तउ मुहं ता पुत्ति अ वाहोअरणं विसेसरमणिज्जं ।
मा एअं चिय मुहमण्डण स्ति सो काहिइ पुणो चि ॥ ८१ ॥

[प्रोन्वृत्स्व मुख तपुत्ति च (पुत्रिके) वाष्पोत्तरण विशेषरमणीयम् ।
मा इदमेव मुखमण्डनमिति करिष्यसि पुनरपि ॥]

अरी चेटी, ओंसू बहनेवाले विशेष रमणीय अपने मुखपेको पोंछ डालो ।
देखो, वह फिर कहीं यह न समझ ले कि यह मुखका शृङ्गार है ॥ ८१ ॥

मज्झे पअणुअपङ्कं अवहोवासेसु साणचिप्पिस्सु ।
गामस्स सीससीमन्तअं व रच्छामुहं जाअं ॥ ८२ ॥

[मध्ये प्रतनुक पङ्कमुभयो पार्श्वयोः श्यानकर्दमम् ।
ग्रामस्य शीर्षसीमन्तमिध रम्यामुख जातम् ॥]

गोष्ठाका रास्ता, बीचमें स्वल्पङ्क एवं दोनों ओर शुष्कपङ्क धारणकर इसके
शीर्षगम सीमन्त जैसा प्रतीत हो रहा है ॥ ८२ ॥

[भन्यग्रामप्रस्थिता कर्षयन्ती मण्डलानां पक्तिम् ।

अखण्डितसौभाग्या चर्षदास जीवसु मे शुनी ॥]

कुत्तोंके दलको भाकृष्टकर दूसरे गाँव में आ बसनेवाली मेरी कुतिया
अखण्डसौभाग्यवती हो, सौ वर्ष तक जीवित रहे ॥ ८७ ॥

सच्चं साहसु देवर तद् तद् बहुआरण सुणपण ।

णिन्वत्तिअकज्जपरम्मदुत्तणं सिक्खिअ कत्तो ॥ ८८ ॥

[सत्य कथय देवर तथा तथा चाटुकारकेण शुनकेन ।

निर्वर्तितकार्यपराधुआव सिद्धि कस्मात् ॥]

हे देवर, मच बताओ तो—सभी प्रकार चापलुमीकर कुत्ता जो काम समाप्त
होने पर पराधुआ हो जाता है, यह उसने किससे सीखा है अर्थात् तुम्हीं से
सीखा है ॥ ८८ ॥

णिप्पणसन्सरिद्धी सच्छन्दं गाइ पामरो सरप ।

दलितअणवसालितण्डुलधवलमिअङ्कासु राईसु ॥ ८९ ॥

[निष्पन्नसस्यआदि स्वच्छन्द गायति पामर शरदि ।

दलितनवशालितण्डुलधवलमृगाङ्कासु रात्रिषु ॥]

घरतूकालमें दलित नये शालिधान्यके तन्दुलके समान धवलचन्द्र शोभित
विभावरीमें, पामर हालिक प्रचुर दास्यसम्पद पाकर आनन्दमें गा रहा है ॥ ८९ ॥

अलिहिज्जइ पङ्कमले हलालिचलणेण फलमगोवीप ।

केदारसोअरुम्मणतं सट्ठिअ कोमलो चलणो ॥ ९० ॥

[आलिख्यते पङ्कतले हलालिचललेन कलमगोप्याः ।

केदारस्रोतोवरोधतिर्यक् स्थितः कोमलधरण ॥]

(पूर्वधार) केदारस्रोतके अवरोधवश तिरछे खड़ी कलम गोपीके कोमल
चरणचिह्न इस वर्ष हलरेखाके खींचे जाते समय कीचड़में खींच ढाले जा
रहे हैं ॥ ९० ॥

दिअहे दिअहे सूसइ सङ्केअअभङ्गवहिआसङ्का ।

आवण्डुणअमुही कलमेण समं कलमगोवी ॥ ९१ ॥

[दिवसे दिवसे शुष्यति मद्देतकभङ्गवर्धिताशङ्का ।

आवाण्डुरावनतमुखी कलमेन सम कलमगोपी ॥]

(कर्मणः परिपात्रम्) सङ्कलनशुद्धी आशङ्क्या बहुमतेना कर्मकर्मोनी
कर्मकर्मो नाश-नाश वाप्युत्तरं एवं अथवासङ्कलनी हा दिने-दिन एवमी वा
रही है ॥ ११ ॥

अथकर्मिण्यथ ह्यथपामरीय वृद्धि पाठशारीको ।
मोक्षपदे मोक्षमपगमयति सदाहासिनी मुक्ता ॥ १२ ॥

[अथकर्मिणा अथ कर्मोय वृद्धा अथहासिनाम् ।

मोक्षपदे मोक्षमपगमयतिनी मुक्ता ॥]

मोक्षपरीक्षाको (मोक्षक लोकात्मिको) ईश्वर वहीच कर्मी निर्णय
निश्चय लोकात्मिक मोक्षक करनेको वचन हो अथवा वेदने एव मोक्ष
रहे हैं ॥ १२ ॥

वृद्ध इतिवर्ती मोक्षे अत्रात्र ह्यथिनी ।
मोक्षपदेस्वाम्यं तुसात्तवदे तिष्ठपदेते ॥ १३ ॥

[वृद्धा इतिवर्ती अत्रात्रतिष्ठिनी इतिवर्ती ।

मोक्षपदेस्वाम्यं तुसात्तवदे तिष्ठपदेते ॥]

तुसात्तवदे तिष्ठने केवले अत्रात्रे इतिवर्ती एवं वीर्य तत्त्वमार्गको ईश
वाचकक निश्चय केवले वही ईश्वर । १३ ॥

अथेतिनी एव निश्चय कर्म्यं कर्म्यं कर्म्यं एव वीर्यो एव ।
वासात्तवममि मम्या वरात्तवसुदेव परिपद्य ॥ १४ ॥

[अथेतिना एव वीर्यो कर्म्यं कर्म्यं एव एव केव एव
वरात्तवो वारी वृद्धात्मिकवृद्धि वरित्वेन ॥]

वरात्तवो वारी वृद्धात्मिको वरा इत्यन्तर वरित्व कर्मो वराको वरित्व वर
वराता वारी वृद्धात्मिको वर अथवा वारी वरित्व वर वर वरा है ॥ १४ ॥

अथवा वरित्व कर्म्यं ते विषय जीवन्ति माधुसे कोय ।
व वृत्ति विपुलवर्ण्यं कर्मात्तवति व वेदवन्ति ॥ १५ ॥

[अथवा वरित्व कर्म्यं एव वीर्यो माधुसे कोय ।

व वृत्ति विपुलवर्ण्यं कर्मात्तवति व वेदवन्ति ॥]

वे वरे हैं एवं को कर्म्यं हैं वे ही कर्म्य ही जीवित हैं, कर्म्य, वे ही
कर्म वृद्धात्मी की वृद्धात्मी वही एवं वरित्व कर्म्य वे वही ईश्वर ॥ १५ ॥

एणिह वारेह जणो तड्या मूहल्लो कहिं छ्व गयो ।

जाहे विसं वर जाअं सव्ववपुहल्लिरं पेम्म ॥ ९६ ॥

[इदानीं वारयति जनस्तदा मूल्यं कुत्रापि वा गत ।

यदा विपश्चिज्जात सर्वाद्रघूर्णित प्रेम ॥]

जय प्रेम विपर्का भौति ममी अहोमं व्याप्त हो गया था, तय ममी मूक हो गय थे—अय ममी मना कर रहे हैं ॥ ९६ ॥

कहँ तंपि तुह ण जाअं जह सा आसन्दिआणं यट्ठआणं ।

काऊण उच्चयचिअं तुह दंसणलेहला पडिया ॥ ९७ ॥

[कथ तदपि त्वया न ज्ञात यथा सा आसदिकानां यद्वृत्ताम् ।

कृत्वा उच्चापचिकां तव दर्शनलालसा पतिता ॥]

तुम क्या यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे दर्शनलालसासे अभिमूत हो वह (नायिका) अनेक आसन्दिका (बेंतके आसन वा छोटी खाट) द्वारा बनायी हुई ऊँची सिढ़ी से गिर पड़ी है ॥ ९७ ॥

चोरणं कामुआणं अ पामरपदिआणं कुक्कुडो घअइ ।

रे रमह घहह घाहयह पत्थ तणुआअए रमणी ॥ ९८ ॥

[चौराङ्कामुकाश्च पामरपयिकोश्च कुक्कुटो घदति ।

रे रमत पहत घाहयत अग्र तन्वी भवति रमणी ॥]

‘अय रात थोड़ी सी ही यची है’ यह सूचितकर मुर्गा चोरो, कामुकों एव पयिकों से क्रमानुसार ‘लेते रहो’ ‘रमणमें मत होओ’ एव (गाड़ी) ‘चलाते रहो’ कहें दे रहा है ॥ ९८ ॥

अण्णोण्णकडय्मन्तरपेसिअमेलीणदिट्ठियसराण ।

दो च्चिय मण्णे कअमण्डणाइँ समहं पइसिआइँ ॥ ९९ ॥

[अन्योन्यकटाक्षान्तरप्रेषितमिलितदृष्टिप्रमरी ।

द्वावपि मन्ये कृतकलहौ समक प्रहसितौ ॥]

एक दूसरेके प्रति एक दूसरेके कटाक्षसे प्रेरित दृष्टियोंके मिल जानेसे ऐसा प्रतीत होता है कि कलह करनेवाले दोनों एक साथ ही हँस पड़े थे ॥ ९९ ॥

संभागदिअजलअलिपडिमासकन्तगोरिमुहकमलं ।

अलिअं चिअ फुरिओट्ट विअलिअमन्त हरं णमह ॥ १०० ॥

[संन्यासुहीतव्रतकाज्जिप्रतिमार्थव्यक्तवीरीशुचकमन्त्रम् ।

जडीकमेव त्पुनिसोई विगडिज्मर्मेई इई वमव ॥]

संन्यासजीव जकाज्जिमीं प्रविष्टिनिव शीरीका शुचकमन्त्र ईकम्,
मन्त्रेचारमन्त्र होवेर यी मिण्याभावे मोर्मेको चकलेचले (दिवावेचले)
इसो वमवत करे ॥ १ ॥

इय सिदि हस्तविरह्य पात्रमन्त्रमि सप्तसप्त ।

सप्तमसप्त समर्प माहार्च सहाचरमपिर्ज ॥ १ १ ॥

[इति श्रीमन्निराविके जगन्मन्त्रे कृतम् ।

कृतमन्त्रे कर्मसु गाथा स्वनाममन्त्रीकम् ॥]

इही स्वनाम जीहाक (वरचक) विरहित कृतकरी नामक मन्त्र-
स्वरमात्रमन्त्रीक कृतकवक समस्त हुआ ॥ १ १ ॥

—०—

समाप्तोऽर्थ मन्त्र

—०—

परिशिष्ट (क)

गाथानुक्रमणिकादि

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
अइ उबनुए-सर्वाङ्ग सुगन्धित		७ ७७	अज्जाइ गील-स्तन		४१९५
अइ कोवणा-दुष्ट मास		५१९३	अज्जाएँ णवणइ-नस्वस्त		२१५०
अइ दिअर-अद्वैतद्र		६१७०	अणजल विअ-अनुकूल वचन		६१२३
अइ दीहराई-न्यमिचारिणी		७ ७४	अणुअपसाइ आप-अगण्य अपराध		३१७७
अउलीणो दोमुहओ-दो मुहे		३१५३	अणुदिअइवडिह-आनर		३१६६
अकअण्णुअ घण-धैतकुञ्ज		६१२९	अणुमरणपत्थिआप-सुहाग		७१३३
अकअण्णुअ तुल्ल-अकृतघ्न		५१४५	अणुवसण-कुलीनता		३१६५
अकअण्णुअ पिआ-द्वेषाग्नि		११४४	अणुइत्तो-कृशार्क		७१०७
अगमिअअणाव-लोकपवाद		५ ८४	अण्णग्गामपउत्था-कृतिया		७ ८७
अगणि अमैस-लोकमर्यादा		११५७	अण्णण कुसुम-रसलोमी		२१३९
अग्घाइ धिवइ-मधुकुपुष्प		७१३०	अण्णमहिला-रूपगविता		२१४८
अङ्गाण सणुमारअ-शीलमङ्ग		६ ४८	अण्ण पि किं पि-पराधीन		६ ०
अङ्गामण्णविवाहे-सरणगोपी		७१५५	अण्णइ ण तीरइ-उपचार		४१४०
अण्णउ ता जणवामो-मन्द स्नेह		३११	अण्णणं वि होन्नि-अविलास		५१७०
अण्णउ दाव-उत्सुकता		२१६८	अण्णावराह-द्वेषभाव		५ ८८
अण्णोई ता यइस्सं-होना		४११४	अण्णासआह-विरोधाभास		२१२३
अण्णेर व हिं-विवक्षा		२१२५	अण्णेनु पहिअ-शिकारी		७१२०
अण्णोहिअवत्थ-प्रस्थानशीला		२ ६०	अण्णो को वि-निरस सरस		५१६०
अण्णम गार्ह-अक्ष		२१८४	अण्णोणकइअ-कटाघ इष्टि		७१२९
अण्ण कइमो नि-व्याघ्र वधू		२११०	अण्णा तइ-आशङ्का		११८
अण्ण गअोधि-रेखाङ्कन		३१८	अण्णकइसुसणं-स्नेह-पदवी		७ ७५
अण्ण मण गन्धर्व-अमिसार		३१४९	अण्णसणेण पुत्तअ-स्नेहानुबन्ध		३१३६
अण्ण मण सेण-प्रतिध्वनि		२१२०	अण्णसणेण पेम्म-दुराव		२१८१
अण्ण पि ताव-सशय		३१०	अण्णसणेण महिला-प्रेमलीला		११८०
अण्ण मोहण-इलिक		४१६०	अण्णिअपेच्छिअ-मुग्धा		३१०५
अण्ण गिह हासिआ-मनोरमन		३१६४	अतो कुत्त डअइ-विधुर		४१७६
अण्ण वि बालो-रहस्यमय		२११०	अण्णअरवोरपत्त-ईर्ष्यापरायण		३१४०
अण्ण व्वेअ पउत्थो अण्ण-सूना		२१९०	अण्णहुप्पन्तं-त्रिविक्रम		५१११
अण्ण व्वेअ पउत्थो उन्ना-चौर रति		११५८	अण्णउत्तपहाविर-मृगमृग्णा		३१०
अण्ण सहि केउ-सवेदना		४१८१	अण्णत्तपत्तअ-असज्जित		३ ४१

[illegible]

गाथा	मन्त्र	पाठ	गाथा	मन्त्र	पाठ
उजागरभक्तारभ-आशीर्वा		५१८७	ओमदिभजगो-अपदान		४१६
उज्ज्वलपण सुसुह-वमाभमग्नि		५१८८	ओ दिभम ओदिदिभह-विश्वामघात्री		५१७
उज्ज्वलपिआह-सौन भार		७१७१	ओ दिभम गदह-ननन चिच		७१८
उज्ज्वलमहाग्ने-नि आस		४१८७	ओदिदिभहागना-अभवि रेग		७१९
उज्ज्वलमीममनो-पराज्जुग		११८७	कदभवरदिभ-लौकिक प्रेम		२१४
उज्ज्वलो विभद-व्याक		७१६१	कण्ट-तेग भवण्ट-नष्ट कीर्ति		७१६३
उज्ज्वलाधे कञ्जे-चेनायना		७१७४	कण्डुज्जुआ-अपराध		४१८७
उज्ज्वलपदाविहजगो-मधुमव		६१८८	कथ गभ रद-कुण्टा		५१८८
उज्ज्वलभद्वान-चोरव जारी		३१४८	क तुङ्गगु-पूजा पद्य		७१६६
उज्ज्वलवागभ सुहसुह-मुग्गग्रान		४१३०	कमल मुभन्न-प्रादान प्रदान		७४१
उज्ज्वलभाह-उज्ज्वलिका मीटा		७१९६	कमलाभरा ग मयिआ-छाया		७१७०
उज्ज्वलनि व दिभम इमाह-उपेक्षिता		४१६६	कमरि कोम न-चोर		६१७७
उज्ज्वलतेग न होह-प्रवचना		६१३६	कमरि अभाह-मिथ्याभिप्रायिणी		११७
उज्ज्वलो मा दिभम-लोकाविह		६११४	कण्टनरे-कण्ट		४१७१
उज्ज्वल नवनाहुर-रोमाव		६१७७	कण्ट विभ-मिन्न रात्रि		११४६
उज्ज्वल विभ-अशोक वृक्ष		५४	कम कगो-स्थापन कण्ट		६१७८
उज्ज्वलपरिकावग-मविनय अवका		७११	कम मरिमि वि-महानुभूति		४१८९
उज्ज्वलसुदेमा-मदेन		४४२	कह नाम-नाग हृदय		३६८
उज्ज्वल विभ-देवता		६१०७	कह तिरि सुह-ग्रान लालमा		७१७७
उज्ज्वल पहरविण-प्रहार		११८६	कह मे परिणह-नुपार		६१६८
उज्ज्वलमओ दिभम-मृगनयनी		७११८	कह सा निवर्णिगजद-दौवत्य		३१७१
उज्ज्वलमववेठण-पिअर पंथी		३१०	कह सा सोहग-नुलना		५१८७
उज्ज्वल वि बट-धोनाहुर		७१७०	कह मो न-मुरन रमिक		५१२३
उज्ज्वलो पण्डुमह-उपपत्ति प्रेम		५१९	कारिममाणपट-पुष्पवती		५१५७
उज्ज्वलो वि कण्ट-असमंजस		११७४	कि कि दे-गामोमिणप		११७८
उज्ज्वल वारेह जगो-आस प्रेम		७१०६	कि न मणिभोमि-नयन कौ मापा		४१७०
उज्ज्वलविभ मोह-विषवृक्ष		५१२०	कि दाय कमा-निलज		११००
उज्ज्वल निमवद-निद्रा		७१६७	कि मणद मं महीभो-स्नेहमार्ग		७१७७
उज्ज्वल मय रमिअव-अरहर का खेन		४१५८	कि कभमि ओणअ-आवासन		११०
उज्ज्वलमेसम्मि जण-अदिनाय सुन्दरा		४१३	कि गवसि कि अ-विषम प्रेम		६१२६
उज्ज्वलमेसे गामे-धर्ममा		६१३	कारन्तो विभ-मैत्रा		३७२
उज्ज्वलो मामि जुवाणो-दुलम		३१०४	कारमुह मच्छ-मिधुमप		४१८
उज्ज्वलमीभ निमच्छद-वद्युग्ध		६१७९	कुरुगहो विभ-माधव		५१४३
उज्ज्वल सो वि-मनोरथ		११७	कुसुममआ-विपरीनधर्मो		४१७६
उज्ज्वल वि बाहन्तम्मि-अवनतमुखा		६१३	के उव्वरिआ-अनुकमणिका		५१७४
उज्ज्वलसि सुमं वि-वामकसम्मा		४१८५	केण मणे मग्ग-विष वाक्		७११२
ओमरह पुणह-आमुन		६१३१	केसिमसेउ-मदनक्षुधा		६८२

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
उच्चागरभक्तसाक्ष-लज्जाशीला		५१८०	भोसहिअजणो-अर्घदान		४४६
उब्बुअए ण तुसइ-वक्रावक्रगति		५१७६	ओ हिअअ ओहिदिअइ-विश्वासघाती		५३७
उब्बसि पिअइ-सौत भार		३१७१	ओ हिअअ मइइ-चंचल चित्त		२७
उट्ठन्तमहारम्भे-निश्वास		४८०	ओहिदिअइगमा-अवधि रेखा		३६
उण्हइ पीससतो-पराङ्मुखी		११३३	कइअवरहिअ-लौकिक प्रेम		२२४
उट्ठच्छो पिअइ-प्याऊ		२६१	कण्ठन्तेण अकण्ठ-नष्ट कीर्ति		७६३
उपण्णत्थे वज्जे-चेतावनी		३१२४	कण्डुज्जुआ-अपराध		४१५०
उप्यइपहाविहज्जणो-मधूम्मव		६१३५	कथ गम रह-कुण्डली		५३५
उप्याइअइन्वाणै-चोरबन्जारी		३१४८	क तुअधणु-पूजा पद्म		३१५६
उपेक्खागम सुहमुइ-सुगदर्शन		४१३९	कमल मुअन्त-आत्मान प्रदान		७४१
उप्पुल्लिआइ-उत्पल्लिका क्रीडा		२१९६	कमलाभरा ण मलिआ-छाया		२११०
उम्भलेन्ति व हिअअ इमाइ-उपेक्षिता		४१४६	करमरि कोस ण-चोर		६१२७
उल्लाव तेग ण होइ-प्रवक्षणा		६१३६	करिमरि अआल-मिथ्यामिलाषिणी		१११७
उल्लावो मा दिज्जठ-लोकाविरुद्ध		६१२४	कलहन्तरे-कलह		४१०१
उल्लहइ णवतणकुर-रोमांच		६१४७	कल्लं किल-मिलन रात्रि		११४६
एएण धिअ-अशोक वृक्ष		५४	कस्स करो-स्थापन कण्ठ		६१७५
एइकमपरिरक्खण-सविनय अवस्था		७११	कस्म भरिसि सि-सहानुभूति		४१८९
एइकमसदेमा-सदेश		४४२	कई णाम-नारी हृदय		३६८
एक धिअ रूअ-देवता		६१९२	कई तपि तुइ-दर्शन लालसा		७१०७
एक पइरुन्विण्ण-प्रहार		११८६	कई मे परिणइ-तुषार		६१६८
एकलमओ दिट्ठिअ-मृगनयनी		७११८	कई सा णिम्बणिण्णइ-दोर्वल्य		६१७१
एक्केमवइवेठण-पिंजर पछी		३२०	कई सा सोइग-तुलना		५१५०
एक्के वि बड-बोमांकर		७१७०	कई सो ण-सुरत रसिक		५१३३
एक्को पण्डुअइ-उपपत्ति प्रेम		५१९	कारिममाणन्दबड-पुष्पवती		५१५७
एक्को वि कण्ह-असमजम		११२५	किं किं दे-गर्भामिलाप		११२५
एण्हि वारेइ जणो-न्यास प्रेम		७१०६	किं ण मणिभोमि-नयन की भाषा		४१७०
एत्ताइअम मोइ-विपवृक्ष		५१२७	किं दाव कभा-निलज्ज		११९०
एत्थ णिमज्जइ-निशा		७६७	किं मणइ मं सदीओ-स्नेहमार्ग		७११७
एत्थ मए रमिअन्व-अरहर का खेग		४१५८	किं ऊअसि ओणअ-आश्वासन		११९
एइइमेत्तम्मि अए-अद्वितीय सुन्दरी		४१३	किं क्वसि किं अ-विषम प्रेम		६१३६
एइइमेत्ते गामे-धर्मात्मा		६१३	कीरन्ती निअ-मैत्री		३७०
एसो मामि लुवाणो-दुलभ		६१९४	कीरमुइ सच्छ-मिश्रमध		४१८
एइ इमीअ णिमज्जइ-वसुस्थल		६१७९	कुइगाहो निअ-माधव		५१४३
एइइ ओ वि-मनोरथ		११७	कुसुममआ-विपरीतधर्मो		४१२६
एदि ति वाहरन्तम्मि-अवनतमुखी		६३	के उअरिआ-अनुकम्पिका		५१७४
एहिमि तुम सि-वासकसन्ना		४१८५	केण मणे मग-विष वाक्		२१११
ओमरइ पुणइ-जामुन		६१३१	केत्तिअमेत्त-मदनशुभा		६८१

[illegible]

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
जस्म जहं-अमीम मौ-र्य		३।३४	गद्यगमलाहण-मतिभ्रम		२।१४
जह चिन्नेह परि-ग्रामणी न न्न		७।२८	ग छिद्यह दृष्टेण-वानर वानरी		६।२०
जह जह उम्बहह-नवयौवना		३।९२	गन्दन्तु मुरभमुह-वेश्या प्रेम		२।५६
जह नह जरा चराव उतार		३।९३	ग मुअग्नि-बहुवल्लभ		२।४७
जह जह वाणह-इच्छानुसरण		४।४	गलिणीसु भममि-मधुकर		७।१०
जाणज वणुहेमे-रमिक अन		३।३०	गवकम्मिण्ण-निलंज किसान		७।००
जाओ मो वि-गाढालिङ्गन		४।५१	गवपल्लव-नव पल्लव		६।८५
जाणह जाणावेउं-शोल		१।८८	गवल्लभपहर-रोमाञ्ज		१।८
जाणि वअणाणि-प्रियवचन		७।४९	गववट्टपेम्म-मारवहन		२।२०
जारमसाण-फापालिका		५।८	ग बिणा सम्मावेण-माट		३।८६
नाव न कोसविकाम-रसलोलुप		५।४४	ग वि तह भह-विपरीत रति		५।८३
त्रिविअ अमासअ-विटम्पना		३।१७	ग वि तह अणालव ती-उदासीन वचन		६।६४
जीविअसेमाह-निष्फल प्रेम		२।४९	ग वि तह ऐअ-रमण सुख		३।७४
जीहाह कुणन्ति-कुलान		६।४१	ग बि तह पटस-लज्जीलापन		३।९
जुज्जचवेडामोडि-वृद्धपति		७।८४	ग बि तह विपस-सताप		१।७६
जे जे गुणिणी-गुणगाहक		७।७१	गाम या मा-दन्तक्षत		१।९६
जेण विणा-जीवनाधार		२।६३	गाह दूह न तुम-धर्मवार्ता		२।७८
जे गीलम्भमर-शोकगीत		५।२०	गिमआणुमाण-शङ्कारहित		४।४५
जेत्तिअमेत्त नीरह-सतुम्नि		१।७१	गिमअणिम-कुक्कुटरव		६।८०
जेत्तिअमेत्ता रच्छा-नितम्बिनी		४।९३	गिमअक्कवारोवि-नैपुण्य		५।४०
जे मैमुहागभ-मदन शर		३।१०	गिक्कण्ड दुरारोह-अविश्वसनीय		५।६८
जो कहँ वि-कामुक चोर		२।४४	गिक्कम्माहि-विधुर		२।६९
जो जस्स विहय-विस्मय		३।२२	गिक्किय जाभा-जायामीर		१।३०
जो तीरँ अहरराओ-अधरराग		२।६	गिह लहत्ति-विदग्धोद्गार		५।१८
जो वि ण आणह-भग्न वल्लय		५।३८	गिहामझो-असम्भव		४।७४
जो सीसम्मि-गणपति		४।७२	गिहालस-अलसदृष्टि		२।४८
झम्झावाउसिणिअ-साध्वी		२।७०	गिप्पच्छिमाह-कमक		२।४
झम्झावाउसिणिअ-प्रोषितपतिका		४।१५	गिप्पणसरसरि-भानन्द गान		७।८९
टिट्ठाचभा-अपना पराया		१।९७	गिम्मुत्तरआ-अनुमवदीना		२।५५
ठाणाभमट्टा-स्थानभ्रष्टा		७।५२	गिहुअणसिप्प-सुरतशिल्प		६।८९
ढब्बासि डब्बासु-छह-सद्भाव		५।१	णीभाहँ अज-निर्वय		४।२८
ण अ दिट्ठि-नववधू		७।४५	णीलपडपाठअद्दी-नीलवस्त्रधारिणी		६।२०
णअणम्मन्तर-अधुपूरित नेत्र		४।७१	णीमासुक्कम्पिअ-आत्मविस्मृता		४।६१
णहकरसच्छहे-अनित्य यौवन		१।४५	णूण हिअअ-अन्तर्यामो		४।३७
ण कुणन्तो-मान		१।२६	णूमेत्ति जे पडुस-नारी प्रिय		१।९१
णमल्लुकुटिअ-युवा अमर		४।३१	णैटरकोडि-नूपुर		२।८८
ण गुणेण-रुचि		४।१०	णोहलिअ-मनोकामना		१।६

गाथा	सन्दर्भ	पाठ	गाथा	सन्दर्भ	पाठ
दे सुअणु-वत्सव रजनी		८ ६६	पहिअवहू-अशुधारा		६।४०
दो अकुल-वानगी		७।२०	पहिलछूरण-वक्ति		२ ६६
धण्णा ता महिलाओ-धन्या		४।९७	पाअहिअ सोहग्ग-गाय वैल		५।६०
धण्णा बहिरा-अधे-बहरे		७ ९५	पाअहिअणेह-दृष्टि चातुरी		२।९९
धण्णा वसन्ति-पर्वतीय ग्राम		७।३०	पाअपहणार्ण-बलात्कार		५।६५
घरिओ घरिओ-कामवाण		२।१	पाअपहिअ-चरम सीमा		४।९०
घबलो जिअइ-दीर्घवीधी		७।३८	पाअपहिअस्स-उपहास		१।११
घबलो मि जइ-जितरजन		७ ६५	पाअपहिओ-अनादर		५।३०
धाराधुव्वन्त-कौर		६।६३	पाणउदीय-आत्मसर्पण		३।७७
धावइ पुरवो-मायूम		५।५६	पाणिग्गहणे-पार्वती		१।६९
धावइ विअलिअ-शिशु मय		३।०१	पासासङ्की-सशंक		३।५
धीगावलम्बिरोअ-अन्तर्व्या		४।६७	पिमदसण-प्रियदर्शन		४।७३
धुअइ व्व-कलङ्क		३।८०	पिमविरहो-शिष्टाचार		१।२४
धूलिमइलो वि-ढोल		६।२६	पिमसमरण-विरह-व्यथा		३।२०
पइपुरवो विअ-जार वैद्य		३।३७	पिअइ कण्णज्ज-राजहसी		७।७६
पकर जुवाणो-विवशता		१।९७	पिसुणेन्ति कामिणीण-जलक्रीडा		६।५८
पइमइलेण-पइमलिन		६।६७	पुच्छिअन्ती-आलिङ्गन		७ ४७
पअग्गफुल्ल-कुन्दकुसुम		६।९०	पुट्ठि पुसस-रहस्योद्घाटन		४।१३
पच्चसमकुहावलि-प्रमात		७।४	पुणरुत्तरफालण-नर्मदा		६।४८
पच्चूमागअ रक्षित-दिनकर		७।५३	पुमइ खण-नवक्षत		५।३३
पअरसारि-रतिगृह		६।५२	पुसठ मुइ-अशु प्रसापन		७ ८१
पडिअवसमण्णु-स्तन		३।६०	पुसिओ अण्णा-विभ्रम		४ २
पढम वामण-वामन		५।२५	पेच्छइ अलद्ध-प्रेम-लक्षण		३।०६
पढमणिलीण-मधुलोमी		५।९५	पेच्छन्ति अणिमिस-राहगीर		४।८८
पणअकुविभार्ण-मानयुक्त दम्पति		१।०७	पेम्मस्स विरोहिअ-नीरसता		१।५३
पत्तिअम्बप्फसा-श्यामलाङ्गी		६।५५	पोट्टपडिअहि-कृष्ण वर्ण		१।८३
पत्तिअ ण पत्तिअन्ती-प्रमाण		३।१६	पोट्ट भरन्ति-उदार		३।८५
पत्तो छणो-इताश		१।६८	फग्गुच्छण-फाल्गुनोत्सव		४।६९
पप्पुल्लधणकल्मसा-नेइ नीळ		७ ३६	फलसंपत्तीअ-अनुकूल-प्रतिकूल		३।८०
परिओसविअसिण्णि-अङ्गीकार		४।४१	फलहीवाहण-असती		०।६५
परिओससुन्दराइ-परितोष		६ ६८	फालेइ अच्छमहं-माल		०।०
परिमरणसुहा-काव्यालाप		५ ०८	फुट्टन्तेण वि-मनोव्यथा		३।४
परिरद्धकणअ-ग्रामीण नायक		४ ०८	फुरिए वामच्छि-शकुन		२।३७
परिहूअ-कुट्टणी		०।३४	बलिणो बामाबन्धे-परदारापहारी		५।६
पसिअ पिण-प्रसोत्तर		४।८४	बइलनमा-सूना घर		४।३०
पसुवणो-मंगलाचरण		१।१	बहुआइ-शीलमद्ग		३।१८
पहरवणमग्ग-नायिका		१।३१	बहुपुप्फ-वेतावनी		०।३

गाथा	मन्दम	पाठ	गाथा	मन्दम	पाठ
लोभो जूझ-प्रलोभन	१०१	१०१	वेमोसि जोभ-उपेक्षित	१०१	१०१
वभेगि विभगमि-हूँ हूँ	१०२	१०२	वोहसुगभो-सकटापन्न	१०२	१०२
वैविवर-विशपन	१०३	१०३	वोलीपालनित्य-बोरात	१०३	१०३
वर्षको पुल-वक्रदृष्टि	१०४	१०४	सअणे विन्ना-आश्रित	१०४	१०४
वक्रदृष्टि-योद्धा	१०५	१०५	मन्त्रअणहरह-मन्त्रि	१०५	१०५
वक्रवृत्ता-वन्दनी	१०६	१०६	संकेहिभो-वर्षागम	१०६	१०६
वणद्वयमसि-विन्ध्य शोभा	१०७	१०७	गच्छ कण्ठ-कनह	१०७	१०७
वणक्षयमन्त्रि-सकोत्र	१०८	१०८	मन्त्र जागर-अनुराग	१०८	१०८
वणक्षमरठिअरम-रेखाचित्र	१०९	१०९	मन्त्र भगामि बालक-उमाद	१०९	१०९
वणन्तीहि-मारीभूल	११०	११०	मन्त्र भगामि मरणे-तृणा	११०	११०
वणवमिण-वशीकृत	१११	१११	मन्त्र माहसु-चापलसी	१११	१११
वन्नीअ णिहअ-गुणवैमय	११२	११२	मन्त्र गोमह-सुरक्षा	११२	११२
वसह-जहि-सकप्रकृति	११३	११३	समागहिअजल-मिथ्याभाव	११३	११३
वसगमि-सत्पुत्र	११४	११४	मसागभोत्तरभो-नस्वचिह्न	११४	११४
वाआइ कि-विरह दुःख	११५	११५	सहाममण-शिर-गौरव	११५	११५
वाउद्धमसिचम-दन्मक्षत	११६	११६	मणिअ मणिअ-मोम	११६	११६
वाउलिषापसिसोसण-ग्रीष्म	११७	११७	मन्त्र सगह-ग्रंथ परिचय	११७	११७
वाउवेहिअ-परे के पीछे	११८	११८	मन्त्रमसन्त-कुलकलङ्किनी	११८	११८
वापरिण-अक्षय-चुवन	११९	११९	मन्त्रमाव पुच्छन्ता-सद्भाव	११९	११९
वावागविसवाज-गुरुजन	१२०	१२०	सम्भावणेहमरिण-आसक्ति	१२०	१२०
वासारसे उणम-काशकुसुम	१२१	१२१	ममविसमणिविमसा-मनोरथ	१२१	१२१
वाहरठ मे-प्रतिबन्ध	१२२	१२२	समसोकखड्ग-जीवन मरण	१२२	१२२
वाहोहमरिअ-शपथ	१२३	१२३	सरप महदगण-कुपित हृदय	१२३	१२३
वाहिता पडिबभण-नष्टरथ	१२४	१२४	सरप मरमि-गुल्मीय	१२४	१२४
वाहिनव वेज-विरह	१२५	१२५	सरसा वि सुमह-पीतवणा	१२५	१२५
विकिण्ण-पामर जन	१२६	१२६	सहाहणसहरस-विकमान्त्य	१२६	१२६
विज्जविज्ज-अनुमरण	१२७	१२७	मन्त्रथदिमा-मेषमण्डल	१२७	१२७
विज्जहारणालाव-विन्ध्यारोहण	१२८	१२८	सम्बत्सममि-सद्भाव	१२८	१२८
विण्णाणगुण-लज्जनुमय	१२९	१२९	सम्भावणेण-प्रियजन	१२९	१२९
विरहकवच-अक्षु	१३०	१३०	सहह महह चि-दुर्विदग्ध	१३०	१३०
विरहाणलो-विरह-बाला	१३१	१३१	महिआहि-नस्वचिह्न	१३१	१३१
विरहेण मन्दरेण-मन्दार पर्वत	१३२	१३२	महि हरमिभिव-प्रणय-गति	१३२	१३२
विरहे विस-विष पर्व अमृत	१३३	१३३	सहि दुम्मेन्ति-कामदव	१३३	१३३
विवरिअसुरभ-विपरीत रति	१३४	१३४	सहि साहसु-प्रभ	१३४	१३४
विसमट्टिअपिके-शयगृहिणी	१३५	१३५	सा आम-हीन भावना	१३५	१३५
वीसरपहसिअ-दायित्व-भार	१३६	१३६	सा सुह सहस्य-निर्माल्य	१३६	१३६
वेविरसिण-पत्राग्म	१३७	१३७	सा सुन्ना बहदा-विकारयुक्त प्रेम	१३७	१३७

परिशिष्ट (ख)

कवि एवं कवियित्री

शा	क्र.	पीठांबर	मुचनपाल	शा	क्र.	पीठांबर	मुचनपाल
१	१	शालिवाहन	हाल	१	२६	अर्धगन्ध	वासराज
"	२	०	०	"	२७	सुमार	वासराज
"	३	हाल कु	पोटिम	"	२८	प्रगम	कुमार
"	४	योनि, बोनि कु	साप्ताह्य	"	२९	गुन्वा	०
"	५	विशोक, चुल्लोह कु	चलोटप	"	३०	हरिजन	हरिगज
"	६	मकरन्द	ममरन्दमे	"	३१	अगराज	वासनिगज
"	७	प्रवरराज, अमरराज कु	०	"	३२	भोगिय	भोज
"	८	कुमारिन्	अमारिन्	"	३३	अनग	अनगदेव
"	९	०	नदिभूपाल	"	३४	अनग	रथिगज
"	१०	अनीक, निरिगज कु	दुर्गस्वामिन्	"	३५	गालिवाहन	हाल
"	११	०	दुर्गस्वामिन्	"	३६	महोक्	माहिल
"	१२	दुर्गस्वामिन्	०	"	३७	अवटक	अवटक
"	१३	हाल कु ग	हाल	"	३८	०	चुल्लोटप
"	१४	मीनस्वामिन्, यु ग	०	"	३९	वदिगज	विषय
"	१५	गजनिह	रुद्रसुत	"	४०	०	सुग्ध
"	१६	शालिवाहन	आ शालिवाहन	"	४१	नाथा	रोहा
"	१७	०	श्रीवर्मण	"	४२	वातम	वातम
"	१८	०	श्रीवर्मण	"	४३	अमृग	वैरनिह
"	१९	गज	गुण	"	४४	रथिगज	यथिराज
"	२०	चन्द्रस्वामिन्	वर्षण	"	४५	प्रवरराज	प्रवरराज
"	२१	कलिराज	फलिंग	"	४६	रुप	मेघट
"	२२	०	बहुराग	"	४७	सिह	सीहल
"	२३	मकरन्द	मेघांधकार	"	४८	अनिन्द	अनिन्द
"	२४	महाचारिन्	महाचारिन्	"	४९	सुरभवत्सल	सुरभवत्स
"	२५	कालमार	कालसार	"	५०	स्वर्गवर्म	गजवर्म
				"	५१	हाल	हाल
				"	५२	वैशार	केरल
				"	५३	मम्मथ	पण्मुख
				"	५४	कर्ण	कर्णराज
				"	५५	सुसमायुध	सुसमायुध

गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल	गा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल
२ ३० शालिवाहन	मरुभिवृक्ष	२ ६७ ०	आद्वयराज
३ ३१ सोमराज	चोगराज	३ ६८ ०	महिषासुर
४ ३२ ०	०	४ ६९ ०	पुण्डरीक
५ ३३ ब्राम्हण	०	५ ७० ०	०
६ ३४ विक्रमराज	०	६ ७१ ०	नरवाहन
७ ३५ कार्तिकराज	पीतिरमिक	७ ७२ ०	सर्वस्वामिन
८ ३६ कुम्भपुर	कदुधक	८ ७३ ०	०
९ ३७ शक्तिहस्त	माधव	९ ७४ ०	०
१० ३८ ०	देवराज	१० ७५ ०	न्यायस्वामिन
११ ३९ अनुराग	अनुराग	११ ७६ ०	आनन्दस्वामी
१२ ४० ०	हाल	१२ ७७ ०	नागधर्म
१३ ४१ वृक्षशक्ति	रवशक्ति	१३ ७८ ०	०
१४ ४२ ०	बुधधर्म	१४ ७९ ०	हाल
१५ ४३ ०	०	१५ ८० ०	अविरत
१६ ४४ वन्द्योपनि	मालवाधिप	१६ ८१ ०	माधवशक्ति
१७ ४५ वन्द्योपनि	मालवाधिप	१७ ८२ ०	नागभट्ट
१८ ४६ ०	विजयशक्ति	१८ ८३ ०	अचल
१९ ४७ ०	हाल	१९ ८४ ०	हाल
२० ४८ ०	विष्णुशक्ति	२० ८५ ०	साहम
२१ ४९ ०	अवदक	२१ ८६ ०	निबोप
२२ ५० ०	केन्दुवराज	२२ ८७ ०	शहा
२३ ५१ कर्म	निष्कल	२३ ८८ ०	०
२४ ५२ ०	माता	२४ ८९ ०	अनगदेव
२५ ५३ ०	मातुल	२५ ९० ०	धर्मिण
२६ ५४ ०	सुवर्ण	२६ ९१ ०	हाल
२७ ५५ ०	मगधराज	२७ ९२ ०	मदाहट
२८ ५६ ०	हाल	२८ ९३ ०	शिवविष्ट
२९ ५७ ०	प्रवरराज	२९ ९४ ०	पाटिल
३० ५८ ०	०	३० ९५ ०	गागिल
३१ ५९ ०	हकिमराज	३१ ९६ ०	बनराज
३२ ६० ०	शुभाह्व	३२ ९७ ०	माव
३३ ६१ ०	आनन्द	३३ ९८ ०	कनकपुर
३४ ६२ ०	ग्रामराज	३४ ९९ ०	परिवृष्ट
३५ ६३ ०	हाल	३५ १०० ०	नगिनाराज
३६ ६४ ०	हाल	३६ १ ०	ग्रामराज
३७ ६५ ०	पतिराज	३७ २ ०	प्रवरराज
३८ ६६ ०	पतिराज	३८ ३ ०	पुण्डरीक

पृ. क्र.	परीक्षा	पुस्तक	पृ. क्र.	परीक्षा	पुस्तक
१		पुस्तक	१	४६	कर्म
२	५	द्वय	२	४७	वस्तु
३	६		३	४८	द्वय
४	७	कर्म	४	४९	द्वय
५	८	कर्म	५	५०	द्वय
६	९	कर्म	६	५१	द्वय
७	१०	कर्म	७	५२	द्वय
८	११	कर्म	८	५३	द्वय
९	१२	कर्म	९	५४	द्वय
१०	१३	कर्म	१०	५५	द्वय
११	१४	कर्म	११	५६	द्वय
१२	१५	कर्म	१२	५७	द्वय
१३	१६	कर्म	१३	५८	द्वय
१४	१७	कर्म	१४	५९	द्वय
१५	१८	कर्म	१५	६०	द्वय
१६	१९	कर्म	१६	६१	द्वय
१७	२०	कर्म	१७	६२	द्वय
१८	२१	कर्म	१८	६३	द्वय
१९	२२	कर्म	१९	६४	द्वय
२०	२३	कर्म	२०	६५	द्वय
२१	२४	कर्म	२१	६६	द्वय
२२	२५	कर्म	२२	६७	द्वय
२३	२६	कर्म	२३	६८	द्वय
२४	२७	कर्म	२४	६९	द्वय
२५	२८	कर्म	२५	७०	द्वय
२६	२९	कर्म	२६	७१	द्वय
२७	३०	कर्म	२७	७२	द्वय
२८	३१	कर्म	२८	७३	द्वय
२९	३२	कर्म	२९	७४	द्वय
३०	३३	कर्म	३०	७५	द्वय
३१	३४	कर्म	३१	७६	द्वय
३२	३५	कर्म	३२	७७	द्वय
३३	३६	कर्म	३३	७८	द्वय
३४	३७	कर्म	३४	७९	द्वय
३५	३८	कर्म	३५	८०	द्वय
३६	३९	कर्म	३६	८१	द्वय
३७	४०	कर्म	३७	८२	द्वय
३८	४१	कर्म	३८	८३	द्वय
३९	४२	कर्म	३९	८४	द्वय
४०	४३	कर्म	४०	८५	द्वय
४१	४४	कर्म	४१	८६	द्वय
४२	४५	कर्म	४२	८७	द्वय
४३	४६	कर्म	४३	८८	द्वय
४४	४७	कर्म	४४	८९	द्वय
४५	४८	कर्म	४५	९०	द्वय
४६	४९	कर्म	४६	९१	द्वय
४७	५०	कर्म	४७	९२	द्वय
४८	५१	कर्म	४८	९३	द्वय
४९	५२	कर्म	४९	९४	द्वय
५०	५३	कर्म	५०	९५	द्वय
५१	५४	कर्म	५१	९६	द्वय
५२	५५	कर्म	५२	९७	द्वय
५३	५६	कर्म	५३	९८	द्वय
५४	५७	कर्म	५४	९९	द्वय
५५	५८	कर्म	५५	१००	द्वय
५६	५९	कर्म	५६	१०१	द्वय
५७	६०	कर्म	५७	१०२	द्वय
५८	६१	कर्म	५८	१०३	द्वय
५९	६२	कर्म	५९	१०४	द्वय
६०	६३	कर्म	६०	१०५	द्वय
६१	६४	कर्म	६१	१०६	द्वय
६२	६५	कर्म	६२	१०७	द्वय
६३	६६	कर्म	६३	१०८	द्वय
६४	६७	कर्म	६४	१०९	द्वय
६५	६८	कर्म	६५	११०	द्वय
६६	६९	कर्म	६६	१११	द्वय
६७	७०	कर्म	६७	११२	द्वय
६८	७१	कर्म	६८	११३	द्वय
६९	७२	कर्म	६९	११४	द्वय
७०	७३	कर्म	७०	११५	द्वय
७१	७४	कर्म	७१	११६	द्वय
७२	७५	कर्म	७२	११७	द्वय
७३	७६	कर्म	७३	११८	द्वय
७४	७७	कर्म	७४	११९	द्वय
७५	७८	कर्म	७५	१२०	द्वय
७६	७९	कर्म	७६	१२१	द्वय
७७	८०	कर्म	७७	१२२	द्वय
७८	८१	कर्म	७८	१२३	द्वय
७९	८२	कर्म	७९	१२४	द्वय
८०	८३	कर्म	८०	१२५	द्वय
८१	८४	कर्म	८१	१२६	द्वय
८२	८५	कर्म	८२	१२७	द्वय
८३	८६	कर्म	८३	१२८	द्वय
८४	८७	कर्म	८४	१२९	द्वय
८५	८८	कर्म	८५	१३०	द्वय
८६	८९	कर्म	८६	१३१	द्वय
८७	९०	कर्म	८७	१३२	द्वय
८८	९१	कर्म	८८	१३३	द्वय
८९	९२	कर्म	८९	१३४	द्वय
९०	९३	कर्म	९०	१३५	द्वय
९१	९४	कर्म	९१	१३६	द्वय
९२	९५	कर्म	९२	१३७	द्वय
९३	९६	कर्म	९३	१३८	द्वय
९४	९७	कर्म	९४	१३९	द्वय
९५	९८	कर्म	९५	१४०	द्वय
९६	९९	कर्म	९६	१४१	द्वय
९७	१००	कर्म	९७	१४२	द्वय
९८	१०१	कर्म	९८	१४३	द्वय
९९	१०२	कर्म	९९	१४४	द्वय
१००	१०३	कर्म	१००	१४५	द्वय

गा	क्र.	पीतांबर	भुवनपाल	गा	क्र.	पीतांबर	भुवनपाल
३	७८	०	हाल	४	१५	०	नागहस्तिन
"	७९	०	जीवदेव	"	१६	०	त्रिलोचन
"	८०	०	विध्यराज	"	१७	०	यशस्वामिन्
"	८१	०	विशुद्धशाल	"	१८	०	श्रीमाधव
"	८२	०	०	"	१९	०	अवन्तिवर्मण
"	८३	०	अलकार	"	२०	०	प्रवरराज
"	८४	०	०	"	२१	०	०
"	८५	०	अभिनवगजेंद्र	"	२२	०	हस्त
"	८६	०	०	"	२३	०	हस्त
"	८७	०	रसाकार	"	२४	०	चुछोडक
"	८८	०	हरिमृग	"	२५	०	चुछोडक
"	८९	०	लक्ष्मण	"	२६	०	हाल
"	९०	०	कृष्णवित्त	"	२७	०	महासेन
"	९१	०	कृष्णराज	"	२८	०	धनजय
"	९२	०	राज्यधर्मन	"	२९	०	कृष्णचरित्र
"	९३	०	पाहिल	"	३०	०	प्रसन्न
"	९४	०	मधुमूदन	"	३१	०	महाराज
"	९५	०	ग्वल	"	३२	०	बजटदेव
"	९६	०	विपद	"	३३	०	विरहानल
"	९७	०	ममविपमाक	"	३४	०	आटक
"	९८	०	मर्वस्वामिन्	"	३५	०	कैवर्त
"	९९	०	कीर्तिवर्मन	"	३६	०	भूतदत्त
"	१००	०	आवक	"	३७	०	महादेव
४	१	०	शिखडिन्	"	३८	०	विश्वसेन
"	२	०	कर्मचिन्ह	"	३९	०	हाल
"	३	०	माधव	"	४०	०	प्रवरराज
"	४	०	शशिप्रभा	"	४१	०	जीवदेव
"	५	०	ग्रामकुट्टिका	"	४२	०	णणराज
"	६	०	सुग्रीव	"	४३	०	पाहिल
"	७	०	०	"	४४	०	चुछोटक
"	८	०	भूषण	"	४५	०	कैलास
"	९	०	०	"	४६	०	मदर
"	१०	०	मुग्धन	"	४७	०	माणिक्यराज
"	११	०	अनुगाग	"	४८	०	शेपर
"	१२	०	हाल	"	४९	०	नागहस्तिन्
"	१३	०	पडित	"	५०	०	०
"	१४	०	नरमिह	"	५१	०	चंद्रक
				"	५२	०	कदलीगृह

क्र. पीतांबर	मुचनपाळ	क्र. पीतांबर	मुचनपाळ
५ २८ पोतिस	विपग्रथि	५ ६५ शालवाहन	हाल
२९ मकरद	०	५ ६६ पोतिस	पोटिस
३०	रामदेव	५ ६७ पृथ्वानाथ	पृथ्विन
३१ शालवाहन	०	५ ६८ पृथ्वीनाथ	पृथ्विन
३२ मान	पालितक	५ ६९ ०	मतुल
३३ पालित	कुमारदेव	५ ७० चुहोत	चुहोडक
३४ पालित	०	५ ७१ चुहोत	हाल
३५ ०	०	५ ७२ मुकुन्द	इन्द्र
३६ शालवाहन	०	५ ७३ अनगक	अनगदेव
३७ कहिल	०	५ ७४ गुणाढ्य	गुणमुग्धा
३८ उलोल	०	५ ७५ शालवाहन	आन्ध्रलक्ष्मी
३९ अट्टराज	हाल	५ ७६ आन्ध्रलक्ष्मा	आन्ध्रलक्ष्मी
४० माधव	मार्गशक्ति	५ ७७ कहिल	मीहाल
४१ ररभह	खरग्रहण	५ ७८ बराह	वराह
४२ मुग्ध	कर्कधर्मन्	५ ७९ सेनेद्र	कुमिभोगिन्
४३ गजेन्द्र	उत्त	५ ८० निमह	निपह
४४ गजेन्द्र	दीमीर	५ ८१ प्रवरसेन	प्ररमेश्वर
४५ जोन्मदेव	पेष्टो	५ ८२ दुर्लभराज	दुर्लभराज
४६ कैशोराय	कल-कत	५ ८३ निमह	०
४७ शालवाहन	देव	५ ८४ हरिराज	हरिराज
४८ शालवाहन	०	५ ८५ विदग्ध	श्वभट्ट
४९ कुमारिल	विन्ध्यराज	५ ८६ अजय	सूदक
५० कुमारिल	विन्ध्यराज	५ ८७ महादेव	विखाचार्य
५१ चारुदत्त	विष्णुना	५ ८८ वनगज	वनदेव
५२ विष्णुगज	कुन्दरक्ष	५ ८९ राघव	राघव
५३ कञ्जलराय	कर्णराज	५ ९० राघव	०
५४ दुर्गराज	दुर्गराज	५ ९१ दूरमान	दूरामथ
५५ शालवाहन	वसत	५ ९२ विरहविलाम	०
५६ वसत	वसत	५ ९३ विदग्ध	दुध
५७ ०	वासुदेव	५ ९४ दुर्लभराज	हाल
५८ चुहोत	चुहोडक	५ ९५ परमेश्वर	०
५९ चुहोत,	धवल	५ ९६ दुर्दरुद	दुर्गामिन्
६० चुहोत	वह्म	५ ९७ माधव	विन्ध्यराज
६१ शालवाहन	रोहा	५ ९८ शालवाहन	रोहदेव
६२ रेखा	रोहा	५ ९९ ०	०
६३ रेखा	सवरराज	५ १०० शालवाहन	मुद्रमट्ट
६४ पादवशवर्गिन्	हाल	६ १ विकनमानु	विक्रान्तमामु

शा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल	शा. क्र. पीतांबर	भुवनपाल
६ ८४ शेज्या	होश्या	७ २१ शाल्वाहन	०
॥ ८५ ०	गेल्लेव	॥ २२ शाल्वाहन	०
॥ ८६ शेज्यर	शतपट्ट	॥ २३ पालित	०
॥ ८७ मुग्धहरिण	बप्प	॥ २४ गेहा	०
॥ ८८ मार	मार	॥ २५ माधव	मदन
॥ ८९ सार	शकाट	॥ २६ विन्ध्य	०
॥ ९० सार	गुणानुराग	॥ २७ ०	०
॥ ९१ कुमार	माधवधिय	॥ २८ शाल्वाहन	०
॥ १२ अनग	माहल	॥ २९ शाल्वाहन	०
॥ ९३ अनग	देव	॥ ३० वोहा	०
॥ ९४ पोडिम	०	॥ ३१ ०	०
॥ ९५ भीमस्वामिन्	०	॥ ३२ ०	०
॥ ९६ शाल्वाहन	०	॥ ३३ ०	०
॥ ९७ ०	०	॥ ३४ ०	०
॥ ९८ शाल्वाहन	०	॥ ३५ ०	०
॥ ९९ मकरन्मेन	०	॥ ३६ ०	०
॥ १०० ०	०	॥ ३७ ०	०
७ १ चुहोर	०	॥ ३८ ०	०
॥ २ चुहोह	०	॥ ३९ ०	०
॥ ३ चुहाह	०	॥ ४० ०	०
॥ ४ दुर्भराज	गोज	॥ ४१ ०	०
॥ ५ शाल्वाहन	रेहा	॥ ४२ ०	०
॥ ६ शाल्वाहन	विध्याधिप	॥ ४३ ०	०
॥ ७ महिपासुर	जीवदेव	॥ ४४ ०	०
॥ ८ पोडिम	अरदेव	॥ ४५ ०	०
॥ ९ पालित	अपराजित	॥ ४६ ०	०
॥ १० चन्द्रोह	चुछोटका	॥ ४७ ०	श्री स्वामिन्
॥ ११ भीमस्वामिन्	गणपति	॥ ४८ ०	०
॥ १२ भीमस्वामिन्	विध	॥ ४९ ०	०
॥ १३ मुग्धगज	रविराज	॥ ५० ०	०
॥ १४ मेघचन्द्र	कोणदेव	॥ ५१ ०	०
॥ १५ मेघचन्द्र	सुरभिपृष्ठ	॥ ५२ ०	०
॥ १६ वाक्पतिराज	०	॥ ५३ शाल्वाहन	०
॥ १७ वाक्पतिराज	कुम्भरगी, कुरगा ?	॥ ५४ ०	०
॥ १८ वाक्पतिराज	कुम्भरगी, कुरगी ?	॥ ५५ ०	०
॥ १९ शाल्वाहन	०	॥ ५६ ०	०
॥ २० अनुराग	श्रीअशुल	॥ ५७ ०	०

[१८८]

क्र. सं. पीठाधीश्वर	—	कुलसचिव	क्र. सं. पीठाधीश्वर	कुलसचिव
५१			५१	
५२			५२	
५३			५३	
५४			५४	
५५			५५	
५६			५६	
५७			५७	
५८			५८	
५९			५९	
६०			६०	
६१			६१	
६२			६२	
६३			६३	
६४			६४	
६५			६५	
६६			६६	
६७			६७	
६८			६८	
६९			६९	
७०			७०	
७१			७१	
७२			७२	
७३			७३	
७४			७४	
७५			७५	
७६			७६	
७७			७७	
७८			७८	
७९			७९	
८०			८०	

परिशिष्ट (ग)

प्रमुख प्राकृत शब्द-सूची

अआणन्ती २१५५, ५१३३
 अआणमाण ३१४३
 अइरा ७७३
 अइरिक्किम्मि २१८८
 अइमन्ते २१४४
 अइमन्तो ३१०४
 अकअण्णुअ ५१४५
 अकग्गण अ ६१२७
 अच्छट २१६८, ३११
 अच्छन्ति ४१४०
 अच्छमल्ल २१९
 अच्छिच्चइ २१८३
 अच्छेरे २१२५, ३१२०
 अच्छोद्धिअ २१६०
 अल्लअ २१८४
 अट्ठिअ ५१३
 अट्ठवणा ३१९४, ९७, ४१६५, ७१६२
 अणहा ३१७२
 अणिअसासु ३१४५
 अणुमरण ५१४९, ७१३३
 अणुसिक्खरी ४१७८
 अणोल्ल ३१४०
 अणोहन्ते ३१२०
 अण्णइ ४१३७
 अण्णा २१०३
 अण्णुअ ३१७५
 अषा २१८, ६१४०, ६९, ७१५२
 अस्थक ४१८६, ७१७१
 अथेया ५१६७
 अत्यमणम्मि ३१८४
 अन्तोहुत्त ४१७३

अपत्ति अत्ती ७१७८
 अवहत्थिअ ४१७३
 अपहुत्त ३१७७, ५१३६
 अपहुप्पन्त ५१२१
 अप्पाइइ ७१३०
 अप्पेइ २१२००
 अम्मुण्णअन्तीण ३१६४
 अम्मत्थिओ ५१२१
 अमअ ३१२३
 अम अमआ ३१३५
 अमिअ २१०
 अमुणिअ ४१४५, ६६
 अमाअन्त ३१७८
 अमाअन्ती २१८०
 अमाअन्ते ३१७९
 अम्भाण ४१९६
 अलब्बिरि ७१६१
 अलब्बिरि २१९०, ५१४५
 अलाहि २१२७
 अलिहिच्चइ ७१९०
 अवकहसु २१८४
 अवणिच्चइ ६१२०
 अवहत्थिकण २१५८
 अवहामिणी ७१००
 अवहीरण २१४६
 अवहो ७१८०
 अवहे २१८२
 अव्वो ३१७३, ४१६, ६१८०
 अमदत्तग ३१२०
 असन्दिआण ७१०७
 असामअ ३१४७

[illegible][illegible]

ण्ने ७६१
 ण्मेम १८१, ८२, १२१
 ण्हिह ११७, २३७
 ण्हिसि ४८८
 ओञ्चो ७५४
 ओञ्च ३५०
 ओङ्ग १६३
 ओगलिभ ३५
 ओङ्ग ७२१
 ओङ्ग ७३६
 ओमाग्नि २०४
 ओम्मा ६३८, ७११
 ओम् ३१९
 ओम् ५१७
 ओलिन्म ७२१
 ओलिन्मि ७४०
 ओने ६४०
 ओम् ७३७
 ओम् ७३८, ६३१
 ओम् ५५१
 ओम् ४४६
 ओम् ७३६
 ओम् ३६०
 ओम् ७३७
 ओम् १८५, १०४, ५६
 ओम् ३१२
 ओम् ११३
 ओम् १८१
 ओम् ११७ ४६
 ओम् ३३७, ५४
 ओम् ७८४
 ओम् ६४५, ७२०
 ओम् ५११
 ओम् ५३५
 ओम् ४०४
 ओम् ७८७
 ओम् ७३६

ओम् ५६०
 ओम् १८९, ११२, १४, ५४७
 ओम् १७७, ६४६, ७८८
 ओम् ४११
 ओम् ७२०
 ओम् ७५१
 ओम् ६१७
 ओम् ११४, ५७
 ओम् २५४, ८१
 ओम् २८७
 ओम् १८१, ७३२
 ओम् १३७, ६६५, ७३६
 ओम् ३१०, ४१३
 ओम् ६३२
 ओम् ७२८
 ओम् १३३
 ओम् ३१०
 ओम् ७१७
 ओम् ७८
 ओम् ७१०, ७८१
 ओम् १६७, ४६०
 ओम् १८०
 ओम् १९६
 ओम् १४०, २५७
 ओम् ३३७, ७६८
 ओम् ३३२
 ओम् ३६०, ४४६, ८४
 ओम् ६१७
 ओम् २३०, ३३२, ३९, ४६८, ५६१,
 ७४६
 ओम् ३८
 ओम् २५२
 ओम् २९८, ३४०, ५६३, ७१६
 ओम् १८८, ४६, ६२२
 ओम् १०६, ३६७
 ओम् ७५
 ओम् ३५०
 ओम् ५४३

चेभ ६।४०
 छन्द ३।६३
 छन ७।०४, १।६८, ७०, ६।२४, ३.
 छनान ५।६६
 छति २।१५
 छाति १।३४, ३८, ४९, २।३६
 छिन्न २।४१
 छिन्न ४।४७
 छिन्नमो ६।६
 छिन्नहिमि २।५२
 छिन्न ४।५०
 छित्त १।१३, १६
 छिप ४।९३
 छिपन्नो ५।४३
 छिव १।१६, ०१, २।६७, ०२, ५।१८,
 १।३०, ७।३१
 छिवन्नो ३।६०, ५।०१, ६।१९
 छिवि ७।४०
 छिविका ७.२
 छीगो १।८४, २।४१
 छी ६।६७
 छूदा ४।८३, ६।८१
 छेआ ४।१३
 छेक ३।७४
 छेक ४।१
 छेत् २।६८, ६९
 छेपाहिन्तो ३।४०
 छेप १।६०
 जभन्मि ४।६४
 जण ४।३
 जगिअ ४।८.
 जनेनि ४।२७
 जणवाट ३।०७
 जनुना ७।६०
 जण्ड ३।००, ०६, ५।१८
 जण्डि २।००
 जरिका ३।२७
 जमोत्रा २।१०, ७।५
 जहण ५।०९

जण्ड ३।३०
 जानु १।०१
 जानिका ३।१०
 जानिहिमि ६।२७
 जानिम ६।०४
 जाहे ७।०६
 जीअ ३।१०, ४७, ६।८६
 जावेज २।८७
 जाह ६।०१
 जुआ ३।०८
 जुआण ३।६६
 जुण २।२७, ५।०९, ६५, ६।३.
 जु-२ १।३८, ४।०४, ६।२०, ७।६
 जु-नु १।१६
 जुह ६।८८
 जेकार ४।३०
 जेतितो ६।८७
 जेणहा ४।००, ६।११
 जेसम ७।२०
 जेका २।७०
 जेटिम ३।३०
 जेसन ६।७६
 जति २।६८
 जिन्नन्मि ६।०७
 जिनिहिमि ७।०६
 ठवेर ३।०९
 ठट्ठेण ६।३४
 ठेगे २।९७, ७।५२
 ठेव ७।३०
 ठको ६।३१
 ठट्ठ २।४० ६।०७, १००
 ठज ६।७३
 ठजमि ५।१
 ठजिहिमि १।५
 ठह ४।०२
 ठिन् ३।११, ६।०.
 ठण्ड २।७०
 ठोर ३।११
 ठक ६। ६

तरणि ६।९९
 तार्ह ३।३०
 तार्वाण ३।३९
 तालूर १।३७
 तिअसेहि ६।९३
 तिक्क ६।४
 तिच्छिह ६।५६
 तीर १।७१, ३।५८, ४।४९
 तीरण २।९५
 तुण्डिह ७।४७
 तुप्प १।२०, ६।२८
 तुप्पाणणा ३।८९
 तुमाइ ५।१९
 तुमाहिचो ६।२३
 तुअ ७।७
 तुरिअ ३।९७
 तुवरो ४।५८
 तुम ५।७६
 तोगम ४।७५
 तोमिअ ६।७
 थड्ड ४।६६
 थइस्स ४।१४
 थएसु ७।१
 थणुआ ३।७६
 थणए ४।८०
 थगे ३।६०
 थणन्ती ३।६०
 थणुआ ५।२०
 थरहरेइ २।८७
 थरहगन्ति २।६५
 थाणुआ ३।१०
 थोअ १।४०, ६।१०
 थोर ६।०८
 थट्ठण ४।८०, ७।३४
 थट्ठ २।३४
 थावेइ ४।१५, ७।२०
 थावेन्ती ६।९६
 दामोअगे १।१२
 दिअर १।३५, ५९, ५।६९, ६।७०

तिअह १।३५, ३।४७
 दिअइ ३।२२, ९८
 दिअए ५।५०
 दिअन्तो २।२
 दिणवइ ७।५३
 दीओ ६।४७
 दीव ३।६४
 दीवेन्ति ४।२७
 दीमइ २।२८, २।६, ५१, ३।३३, ५।३४, ६।६९
 दीसमे ६।३०
 दीमिहइ ७।१७
 दीह ३।१२
 दीहर १।६६, ४।७८, ७।७४
 दुणिआण १।११, ७।४
 दुहोली १।४९
 दुम्मिअइ ५।२३
 दुम्मिअइ ४।००, ५।४३
 दुम्मेन्ति २।७७, ४।२५
 दुम्मेसि ४।४०, ५३, ५६
 दुइ ५।८०
 दूणिआण १।१००
 दूमेइ ६।६४
 दूमहे ३।८८
 दे १।१६, २०, ४८, ६।८७
 देसु १।७१
 देहली ६।२५
 दो १।०४, ३।३१, ५५
 दोअ १।८४
 दोग्ग १।७६
 दोह १।२७, २।६२, ७।२५
 दोनिणि ६।८६
 दोहग ३।१०
 दोह ३।९०
 धणिअ ६।८२
 धम्मिह ३।०१
 धारिहिआइ ७।६१
 धुअ २।३०, ३।८०, ४।६९, ५।३३
 धुअ १।४०

मेरी ३१७
मेरा ३१८
नोरान ३१९
मोनिज ४०५
मोनू ४६४
मोनू ४६०
माधु ४१०
मोन ३१४३
मोहामनिज ६१२
रमानिज ६१३
रनु ६१३८
रनु २१०, ३१४, ४१३, ५१०
रनु २१५
रनिज ११६१
राउ ३१८७
रनिज ४१०१
रनु ११३४
राजाद २१७१
राम ११३
रामि २१११
रहिमाप ११८०
रि ५१३
रिन्नीली ११७१, २१२०, ६१३, ७४, ८१८३
रिग २१२३
रिद्ध ६१२६
रमुद ३१२६
रमाविगा ४१८०
रमुद ११९, ४१३
रणा ११८, ३१३३
रहम्म ५१-७
रण ३१४१, ५१२, ६१३४
रम्प २१२०, २०
रवद २१४३, ६१२६, ६७
रसद ११२०, २१४१
रम्मद ६१२००
रुमेद ५१२६
रुमेउ २१०
रुसिजद ६१८
रेवा ६१७८, ९९

२५२ २१६, २१७, २१८, २१९
 २२० २२०
 २२१ २२१
 २२२ २२२, २२३
 २२३ २२३, २२४, २२५
 २२६ २२६
 २२७ २२७, २२८
 २२८ २२८
 २२९ २२९, २३०, २३१, २३२
 २३३ २३३
 २३४ २३४
 २३५ २३५
 २३६ २३६
 २३७ २३७, २३८, २३९, २४०
 २४१ २४१
 २४२ २४२
 २४३ २४३
 २४४ २४४
 २४५ २४५
 २४६ २४६
 २४७ २४७, २४८, २४९
 २५० २५०
 २५१ २५१
 २५२ २५२, २५३, २५४, २५५
 २५६ २५६
 २५७ २५७, २५८, २५९, २६०
 २६१ २६१
 २६२ २६२
 २६३ २६३, २६४, २६५, २६६
 २६७ २६७
 २६८ २६८, २६९, २७०, २७१
 २७२ २७२
 २७३ २७३, २७४, २७५, २७६
 २७७ २७७
 २७८ २७८, २७९, २८०, २८१
 २८२ २८२
 २८३ २८३, २८४, २८५, २८६
 २८७ २८७
 २८८ २८८, २८९, २९०, २९१
 २९२ २९२
 २९३ २९३, २९४, २९५, २९६
 २९७ २९७
 २९८ २९८, २९९, ३००, ३०१
 ३०२ ३०२
 ३०३ ३०३, ३०४, ३०५, ३०६
 ३०७ ३०७
 ३०८ ३०८, ३०९, ३१०, ३११
 ३१२ ३१२
 ३१३ ३१३, ३१४, ३१५, ३१६
 ३१७ ३१७
 ३१८ ३१८, ३१९, ३२०, ३२१
 ३२२ ३२२
 ३२३ ३२३, ३२४, ३२५, ३२६
 ३२७ ३२७
 ३२८ ३२८, ३२९, ३३०, ३३१
 ३३२ ३३२
 ३३३ ३३३, ३३४, ३३५, ३३६
 ३३७ ३३७
 ३३८ ३३८, ३३९, ३४०, ३४१
 ३४२ ३४२
 ३४३ ३४३, ३४४, ३४५, ३४६
 ३४७ ३४७
 ३४८ ३४८, ३४९, ३५०, ३५१
 ३५२ ३५२
 ३५३ ३५३, ३५४, ३५५, ३५६
 ३५७ ३५७
 ३५८ ३५८, ३५९, ३६०, ३६१
 ३६२ ३६२
 ३६३ ३६३, ३६४, ३६५, ३६६
 ३६७ ३६७
 ३६८ ३६८, ३६९, ३७०, ३७१
 ३७२ ३७२
 ३७३ ३७३, ३७४, ३७५, ३७६
 ३७७ ३७७
 ३७८ ३७८, ३७९, ३८०, ३८१
 ३८२ ३८२
 ३८३ ३८३, ३८४, ३८५, ३८६
 ३८७ ३८७
 ३८८ ३८८, ३८९, ३९०, ३९१
 ३९२ ३९२
 ३९३ ३९३, ३९४, ३९५, ३९६
 ३९७ ३९७
 ३९८ ३९८, ३९९, ४००, ४०१
 ४०२ ४०२
 ४०३ ४०३, ४०४, ४०५, ४०६
 ४०७ ४०७
 ४०८ ४०८, ४०९, ४१०, ४११
 ४१२ ४१२
 ४१३ ४१३, ४१४, ४१५, ४१६
 ४१७ ४१७
 ४१८ ४१८, ४१९, ४२०, ४२१
 ४२२ ४२२
 ४२३ ४२३, ४२४, ४२५, ४२६
 ४२७ ४२७
 ४२८ ४२८, ४२९, ४३०, ४३१
 ४३२ ४३२
 ४३३ ४३३, ४३४, ४३५, ४३६
 ४३७ ४३७
 ४३८ ४३८, ४३९, ४४०, ४४१
 ४४२ ४४२
 ४४३ ४४३, ४४४, ४४५, ४४६
 ४४७ ४४७
 ४४८ ४४८, ४४९, ४५०, ४५१
 ४५२ ४५२
 ४५३ ४५३, ४५४, ४५५, ४५६
 ४५७ ४५७
 ४५८ ४५८, ४५९, ४६०, ४६१
 ४६२ ४६२
 ४६३ ४६३, ४६४, ४६५, ४६६
 ४६७ ४६७
 ४६८ ४६८, ४६९, ४७०, ४७१
 ४७२ ४७२
 ४७३ ४७३, ४७४, ४७५, ४७६
 ४७७ ४७७
 ४७८ ४७८, ४७९, ४८०, ४८१
 ४८२ ४८२
 ४८३ ४८३, ४८४, ४८५, ४८६
 ४८७ ४८७
 ४८८ ४८८, ४८९, ४९०, ४९१
 ४९२ ४९२
 ४९३ ४९३, ४९४, ४९५, ४९६
 ४९७ ४९७
 ४९८ ४९८, ४९९, ५००, ५०१
 ५०२ ५०२
 ५०३ ५०३, ५०४, ५०५, ५०६
 ५०७ ५०७
 ५०८ ५०८, ५०९, ५१०, ५११
 ५१२ ५१२
 ५१३ ५१३, ५१४, ५१५, ५१६
 ५१७ ५१७
 ५१८ ५१८, ५१९, ५२०, ५२१
 ५२२ ५२२
 ५२३ ५२३, ५२४, ५२५, ५२६
 ५२७ ५२७
 ५२८ ५२८, ५२९, ५३०, ५३१
 ५३२ ५३२
 ५३३ ५३३, ५३४, ५३५, ५३६
 ५३७ ५३७
 ५३८ ५३८, ५३९, ५४०, ५४१
 ५४२ ५४२
 ५४३ ५४३, ५४४, ५४५, ५४६
 ५४७ ५४७

राष्ट्र और राष्ट्र भाषा के परमोपकारक ग्रन्थ—

प्राकृत साहित्य का इतिहास

प्रो० जगदीशचन्द्र जैन

प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रमुख विषय तो नाम से ही स्पष्ट है किन्तु उसके सन्दर्भ रूप में विश्वमर की सम्पूर्ण भाषाओं की जानकारी सक्षिप्त रूप में प्राप्त हो जाती है। तदनन्तर वेद से लेकर प्राचीनतम शिलालेख, प्राचीन नाटक, कथाग्रन्थ आदि तथा इस विषय पर खद्योत-प्रकाश डालने वाले आधुनिक ग्रन्थों के अध्ययन आदि के व्यापक समीक्षण और समालोचनपूर्वक अपने विषय का यह प्रथम ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में अवतरित हुआ है। ऐसा विश्वास है कि प्राकृत के उद्गम, स्थिति और प्रचार आदि के विषय में जो भ्रामक और सन्दिग्ध बुर्निर्णेत मत-भतान्तर प्रचलित हैं उन सबका एक साथ निर्णय हो जायगा और प्राकृत के वास्तविक एवं प्रामाणिक इतिहास से लोग परिचित हो सकेंगे।

हिन्दी साहित्य को लेखक की यह अनुपम देन है। प्रत्येक सस्कृत-साहित्य के अनुसन्धित्सु छात्र, अध्यापक एवं अनुरागी व्यक्ति को इस ग्रन्थ का अवलोकन एवं अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

मूल्य २०—००

हिन्दी-प्राकृत-व्याकरण

आचार्य मधुसूदनप्रसाद मिश्र

विश्वविद्यालयों में प्राकृत के अध्ययन की कुछ न कुछ स्वतन्त्र व्यवस्था की गई है। प्राकृत पढ़ने वाले छात्रों को या तो हेमचन्द्र, बररुचि आदि के सस्कृत सूत्रों को रटना आवश्यक होता था अथवा जर्मन विद्वान् पिगल आदि के अंग्रेजी अनुवादों से किसी प्रकार काम चलाना पड़ता था। अभी तक हिन्दी में प्राकृत के सभी अङ्गों पर प्रकाश डालने वाला कोई पूर्ण व्याकरण नहीं था। इसी कमी की पूर्ति के लिए विद्वान् लेखक ने इस व्याकरण का प्रणयन राष्ट्रभाषा हिन्दी में किया है। इसमें महाराष्ट्री, मागधी, शौरसेनी, पेशाची, अपभ्रंश आदि प्राकृत के जितने अङ्ग हैं, उन सब का व्याकरण हेमचन्द्र आदि की सहायता में बड़े सरल एवं सुबोध रूप में प्रतिपादित हुआ है। प्रत्येक नियम विषय को अच्छी तरह समझाते हैं। नियमों के साथ स्थान स्थान पर उनके मोदाहरण अपवाद स्थल भी बतलाये गये हैं। प्रत्येक नियम के साथ उदाहरणस्वरूप आये हुए प्राकृत शब्द के सस्कृत रूप भी सामने दे दिये गये हैं। पादटिप्पणी द्वारा उलझे हुए विषय को समझाने की पूरी चेष्टा कर साथ ही तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री भी प्रस्तुत की गई है और अन्त में अकारादि ग्रन्थ से ग्रन्थ में आये हुए उदाहरणों की सूची भी दी गई है। इस ग्रन्थ की आधुनिक विशेषताओं को देखकर विद्वान् राष्ट्र भाषा परिषद् ने इसकी पाण्डुलिपि पर ही ५००) रुपयों का अनुदान प्रदान किया है।

मूल्य ५—००

